बुद्धि-स्वातंत्र्य पुस्तक-मालाका प्रथम पुष्प।

यूरोपमें बुद्धि-स्वातंत्र्यका इतिहास।

लेकीकृत History of

RATIONALISM IN EUROPE

का

हिन्दी अनुवाद।

अनुवादकर्ता—

पण्डित शिवसहाय चतुर्वेदी।

प्रकाशक—

बुद्धि-स्वातंत्र्य-साहित्य भण्डार,

देवरी, सागर, म० प्र०।

बाबू विश्वम्भरनाथ भार्गवके प्रबन्धसे स्टैंडर्ड प्रेस,
प्रयागमें मुद्रित।

सं० १९७६ वि.

प्रथमावृत्ति } सन् १९२० ई० { मूल्य एक रुपया चार आना

समर्पण-पत्र।

यह पुस्तक
भारतकी आशालताको लहलही
और पल्लवित बनाये रखने-
वाले भारतमाताके सपूतों-
के कर-कमलोंमें सादर
समर्पित।

बुद्धिस्वातंत्र्य-पुस्तक-माला।

हिन्दीमें नये जीवनका स्फुरण कराने, तथा बुद्धिको स्वतंत्र और अन्वेषण प्रिय बनानेवाले उत्तमोत्तम ग्रन्थोंको प्रकाशित करनेके लिए यह पुस्तकमाला निकाली गई है। आशा है कि आप स्वत: इसके स्थायी ग्राहक बनकर तथा अपने मित्रोंको बनाकर इस मालाकी अपूर्व, रोचक, उपदेशप्रद तथा कौतूहल वर्द्धक पुस्तकोंको पढ़ेंगे और मेरे उत्साहको वृद्धिंगत करेंगे।

इस माला का प्रथम पुष्प है "यूरोपमें बुद्धिस्वतंत्र्यका इतिहास" प्रथम भाग। इस अपूर्व ग्रन्थको पढ़क रही आप इस मालामें निकलने वाली पुस्तकोंका अनुमान कर सकेंगे।

नाचे लिखी पुस्तकें भी इस मालाके लिए तैयार हो रही हैं

१—यूरोपमें बुद्धिस्वातंत्र्य (दूसरा भाग)।

२—यूरोपीयप्रजाके आचरणका इतिहास।

नियम।

१—आठ आना प्रवेश-फी भेजकर प्रत्येक व्यक्ति इस पुस्तक मालाका स्थायी ग्राहक बन सकता है। यह फीस लौटाई नहीं जायगी।

२—स्थायी ग्राहकोंको मालाकी प्रत्येक पुस्तक पौनी कीमत में दी जाती है। वह अपनी इच्छानुसार एकाधिक पुस्तक भी इसी पौनी कीमत से मँगा सकता है।

३—सालमें मालाकी कमसे कम ५) की पुस्तकें प्रत्येक ग्राहकको लेनी होंगी—इससे अधिक लेना या न लेना उसकी इच्छा पर निर्भर है।

४—पुस्तकें तैयार होते ही आठदिन पहले सूचना देकर वी० पी० द्वारा सेवामें भेजी जाँयगी।

मैनेजर, बुद्धि-स्वातंत्र्य साहित्य-भण्डार,

पो० देवरी—सागर, म० प्र०।

विषय सूची।

प्रथम भाग

द्वितीय भागमें ये विषय रहेंगे।

यूरोपमें बुद्धिस्वातंत्र्यका उदय और उसके कार्य्यका इतिहास।

5726
15017

उपोद्‌घात

रोपीय प्रजाओंके आधुनिक और मध्यका-लीन रीति-रिवाजों और विचारोंमें जमीन आसमानका फरक दिखाई देता है। इस फरकका कारण मि० लेकीके शब्दोंमें 'बुद्धि-स्वातंत्र्यकी पवनका विस्तार' है। पाश्चा-त्य सुधरी हुई प्रजाओं तथा लोगोंमें जिनकी गणनाकी जाती है उन सबमें यह हवा फैली हुई दिखाई देती है। 'बुद्धिस्वातंत्र्य' किन्हीं खास दलीलोंसे गढ़ा हुआ सिद्धान्त नहीं है, किन्तु वह एक प्रकारकी मानसिक प्रवृत्ति मात्र है। जादू, चमत्कारी घटनाओं, दैवीशक्ति तथा नजरबंदी प्रभृति विषयोंकी ओर अश्रद्धा पैदा करना उसका मुख्य लक्षण है। अभी कुछ वर्ष पहले लंदनमें स्थापित "बुद्धिस्वातंत्र्य साहित्य-प्रकाश" नामक मंडलने बहुत विचारके अनन्तर बुद्धिस्वातंत्र्यकी नीचे लिखे अनुसार व्याख्या की थी—"सब प्रकारकी स्वच्छन्द कल्पनाओं अथवा प्रमाणोंसे अबाध्य, अनुभवगम्य तत्त्वदर्शन तथा नीति-दर्शन स्थापित करनेके उद्देश्यको ग्रहण करनेवाली, और विवेक-शक्तिके पूर्ण साम्राज्यको स्वीकार करनेवाली मानसिक प्रवृत्ति-का नाम बुद्धि-स्वातंत्र्य है।" यूरोपमें भूगोल, भूस्तरविद्या, खगोलशास्त्र और शारीरिक प्रभृतिभौतिकशास्त्रोंके विकाशसे यह प्रवृत्ति विशेष वृद्धिको प्राप्त हुई है और एशिया महाद्वीपमें भी पाश्चात्य संसर्गके कारण इसका बीज सर्वत्र बोया जा

रहा है। यह बीज इस परम पावन वीर प्रसवनी भारतभूमिके हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तोंमें पोषण पाकर उन्हें शीघ्र फल सम्पन्न बनावे इसी उद्देश्यसे इस ग्रन्थ-रत्नका हिन्दी अनुवाद किया गया है।

ग्रन्थकारकी भाषा नारियलके फलके समान ऊपरसे कठिन प्रतीत होने पर भी भीतर अत्यन्त मधुर और सारपूर्ण है। उसकी विवेचना पद्धति गंभीर और शोधक होने पर भी इतनी अधिक मनोहर और लक्ष्यवेधी है कि अनेक युगोंसे जमे हुए वज्र-लेप संस्कारोंको भी वह अपने शान्त किन्तु प्रबल प्रवाहमें बहाकर निर्मूल कर देती है। जिस प्रकार सूर्योदय होनेपर अंधकारका नाश हो जाता है, उसी प्रकार इस पुस्तकके पढ़नेसे भूतप्रेत, दैवी-चमत्कार आदि वहमों और अन्ध-विश्वासोंका ख्याल मास्तिष्कसे बिलकुल निकल जाता है। ऐसा करनेके लिए उसने एक नवीन विवाद-शैलीका उपयोग किया है। अन्य विद्वानोंके समान किसी विषयके सत्यासत्यका निर्णय करनेके लिए दोनों पक्षोंकी दलीलें पेश करके उनमेंसे एक पक्षके समर्थन करनेका श्रम उसने नहीं उठाया है; परंतु जिस प्रकार सिकन्दर बादशाहने ईरान विजयके प्रसंगपर 'गार्डियनकी गूढ़ ग्रन्थि' उकेलनेके बदले काट डाली थी, उसी प्रकार वह भी हमको उपरिलिखित बातोंकी असंभाविताको इकदम प्रत्यक्ष कराता है। इस ग्रन्थका सार थोड़ेमें नीचेके एक ही वाक्यमें आजाता है—"चाहे जैसी सत्य और मजबूत दलीलोंसे भी मनुष्योंके विचार नहीं बदलते हैं, उनके आसपासकी परिस्थिति ही उनके विचार और आचरणोंके बदलनेका मुख्य कारण है।" इस समय भारतवर्षकी स्थिति अत्यन्त शीघ्रताके साथ बदल रही है, ऐसे समयमें इस सूत्रकी उपयोगिता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह सूत्र हमारे प्रत्येक उत्साही सुधारक और देशभक्त

के मनन करने योग्य है। हम लोग पाठशालाओंमें यूरोपका इतिहास पढ़ते हैं, परन्तु उससे यूरोप निवासियोंके विचार कालक्रमसे किस तरह और किन कारणोंसे बदल गये इसका हमें कुछ ज्ञान नहीं होता है,—यह ज्ञान इस पुस्तकसे मिलेगा। परन्तु इसमें वर्णन की हुई बातोंपर विशेष प्रकाश डालनेके लिए यूरोपीय इतिहासकी गत १६ शताब्दियोंकी मुख्य मुख्य घटनाओंका स्थूलरूप दरशाना बहुत जरूरी है।

ईसाकी पहली शताब्दीपर दृष्टि डालनेसे रोमन साम्राज्यकी जगत्-दिग्विजयके विचित्र परिणाम दृष्टिगोचर होते हैं। जो लोग बेड़ियाँ डालकर राजधानीमें लाये गये थे, अंतमें वही उनके स्वामी बन गये। युद्धोंमें अत्यन्त निर्दयताका व्यवहार करके उन्होंने अनेक प्रजाओंपर विजय प्राप्तकी, परंतु अंतमें इन अधीनता स्वीकार करनेवाले लोगोंकी संख्या इतनी अधिक बढ़ गई कि प्रजाके बड़े बड़े अधिकार भोगनेमें, राजकार्य्य चलानेवाली बड़ी बड़ी सभाओं और राज्यसिंहासन स्थापित करनेमें वे लोग सफल हुए। इस प्रकार अतिशय राज्यलोभ और दिग्विजयका फल बुरा निकला। जिन लोगोंने दुनियाँको वशीभूत करके अनेक प्रजाओंकी स्वतंत्रता हरणकी थी, उनके पुत्रोंकी शिक्षाका भार गुलामोंके हाथमें आगया और इस तरह वे हर तरहसे भ्रष्ट हो गये। ये लड़के जब वयस्क हुए तब उन्हें घोड़ा दौड़ाने और नाटक या गुलामोंके प्राणकी बाजी लगाकर कुश्ती लड़नेका तमाशा देखनेके सिवा और कुछ ज्ञान नहीं था। उनके माता पिता भी अनीतिमें डूबे हुए थे। दक्षिण इटलीका वातावरण अनीतिसे परिपूर्ण दिखाई देता था। रोमीय इतिहासके लेखक गिबनका कथन है कि उस समय रोम साम्राज्यमें ६ करोड़ गुलाम थे और उनके ऊपर इतना अधिक जुल्म होता था कि एक गृहस्थका खून होनेपर ४००चार सौ गुलाम

फाँसी पर लटका दिये जाते थे। परन्तु यह बात स्मरण रखने योग है कि यह सब होने पर भी उस समय रोममें धर्मसम्बन्धी जुल्म बिलकुल नहीं था।

परन्तु दूसरी शताब्दीमें जब यहूदी प्रजाने बलवा किया तब रोमसाम्राज्यकी धार्मिक शान्ति लुप्त हो गई। हेडियन बादशाहने तीन वर्ष तक महा भयंकर युद्ध चलाकर उनके ५ लाख लोगोंको काट डाला और अंतमें उनके विशाल धर्ममंदिरको जमीनदोस्त कराके उस जगह पर हल चलवाये, उस समय ऐसा जान पड़ता था कि अब पृथ्वीसे यहूदी लोगोंका नाम निशान मिट गया और रोमन साम्राज्यकी भारी जीत हुई ; परन्तु १८०० वर्षके बाद आज यहूदी लोग सारी दुनियाँमें फैले हुए और धन, बल सम्पन्न दिखाई देते हैं, और उनको नाश करने वाले रोमन साम्राज्यका आज कईसौ वर्षसे पता भी नहीं है !!

तीसरा शताब्दीके प्रारंभमें रोमराज्यकी प्रत्येक सीमापर गॉथ, फ्रैंक्, स्यूटन, वेन्डल, हूण प्रभृति अनेक जंगली जातियाँ गीधोंके झुन्डोंके समान शिकारके लिए तड़फड़ाती हुई दिखलाई देती थीं।

परन्तु छट्ठी शताब्दीमें पैर रखते ही समग्र यूरोप शून्यवत् दिखाई देने लगा। सीजरोंकी बनवाई हुई हवेलियोंमें लवा, कबूतर, महूका प्रभृति पक्षियोंके सिवा और कोई प्राणी दृष्टिगोचर नहीं होते थे, एक समय जिन सब कुओं तथा झरनोंमें परियों और हरिणोंके झुंडके झुंड सुखसे विचरते दिखाई देते थे उनमें अब पक्षियोंकी किलोल या जंगली जानवरोंकी गर्जनाके सिवा और कोई आवाज़ सुनाई नहीं देती।

इन तीनसौ वर्षोंमें जंगली लोगोंने रोमकी अत्यन्त

भङ्कर दुर्दशा कर डाली थी और इस पर भी वहाँ महामारीका भीषण युग प्रारंभ हुआ। इस समय कान्स्टेन्टिनोपलमें प्रतिदिन १० हजार मनुष्य कालके ग्रास हुआ करते थे। इस तरह अफ्रिकाके किनारे तथा यूरोपके भीतर सन् ५४२ से ५९४ अर्थात् ५२ वर्ष तक महामारी बनी रही।

इधर ब्रिटेनसे रोमन फौज बहुत समय पहले चली आने और वहाँके निवासी अपनी रक्षा करनेमें स्वतः समर्थन होनेके कारण ट्यूटन लुटेरे उनका अत्यन्त क्रूरताके साथ नाश करने लगे। उनमें दयाका अंश तो नाम मात्रको नहीं था; युद्ध और लूटमार करना उनका मुख्य काम था। इस तरह बेचारी ब्रिटिश प्रजा ट्यूटन लुटेरोंके अत्याचारसे नष्ट-प्राय हो गई।

ये जङ्गली जातियाँ बहुत समयसे भटकती रहनेके कारण अब स्थायी निवासके महत्वको समझने लगी थीं। जब उन्होंने सुना कि थोड़े युद्ध के परिणामसे करोड़ों एकड़ उपजाऊ भूमि हाथ लगती है तब उनके असंख्य समुदाय टिड्डी दलकी नाईं सारे यूरोप भरमें घूमने लगे। व्यक्ति स्वातंत्र्यकी ओर उनका अधिक ध्यान था, गुलामगिरी या दासता किसे कहते हैं इसे वे जानते ही नहीं थे। प्रत्येक कुटुम्ब दरजेमें समान समझा जाता था। जिन कुटुम्बोंके नेता विशेष बलवान् थे उनके नेतृत्व या सरदारीके नीचे सब दलोंके लोग लड़नेके लिए जाया करते थे। ये लोग प्रकृतिको पूजते और प्राकृतिक नियमोंके सिवा अन्य किन्हीं बंधनोंके अधीन नहीं थे। वे रोमन साम्राज्यमें रहना अधिक पसंद करते थे। वे उसके विशाल प्रदेशों पर आकाशी तूफानकी नाईं झुंडके झुंड घूमा करते और वहाँके निवासियों का नाश करते थे। आँधीके प्रवाहके समान उनके दल एकदम चारों ओर फैल जाते थे। इस तरह उस ऊजड़ साम्राज्यमें ये लोग उत्तम बीजकी नाईं

सर्वत्र फैल गये और इन्हींसे आधुनिक साहसी यूरोपीय जातियोंकी उत्पत्ति हुई।

इस समय यूरोपमें ईसाई धर्म्म बहुत अधम दशाको पहुंच चुका था। अनेक क्रूर जातियोंके आक्रमणसे भी उसने कुछ शिक्षा ग्रहण नहीं की थी, इसी लिए उसकी समस्त ऐहिक और पारलौकिक सत्ता पोपके हाथ चली गई कि जिसका परिणाम आगे बहुत बुरा निकला।

इस समय तक यूरोपमें शारीरिक बलका विरोध सर्वत्र फैला हुआ दिखाई देता था, परन्तु सातवीं सदीके मध्यमें अरबस्तानके सदैव भटकनेवाले लोगोंमें एक ऐसे धार्मिक बलका प्रादुर्भाव हुआ जिसने १०० वर्ष जैसी थोड़ी मुद्दतमें एशिया और आफ्रिका खंडके समस्त रोमन प्रान्तोंमें अपना प्रभाव जमा लिया, यही नहीं उसने फ्रान्स; स्पेन, मध्य समुद्रके तमाम द्वीपों और ईरानके बड़े भारी राज्य को भी अपने वशीभूत कर लिया और अंतमें अटलाण्टिक महासागरसे लेकर सिंधुनदीके किनारे तक उसका विजयघोष सुनाई देने लगा।

अब धर्मयुद्धोंका युग प्रारंभ हुआ। पूर्वसे विकराल सिंहों की नाईं मुसलमान लोग बाहर निकलने लगे। उनका सामना करना अशक्य था। जो ईरानी लोग सैकड़ों वर्षोंतक ग्रीक तथा रोमन राज्यको हराते रहे थे, वे ही नाहावेन्दके महा-युद्धमें हार गये और इसके परिणामसे ईरानमें इसलाम धर्म्मका प्रचार होने लगा। सन् ६३९ ई० में रोमन राज्यने कुछ समय तक उनका सामना किया, परन्तु वह व्यर्थ गया। एशिया माइनर, आफ्रिका और स्पेन ईसायोंके हाथसे निकल गये। सिकंदर बादशाहने अपने जोवन भरमें जितनी दुनियाँ जीती थी अथवा रोमसम्राज्यको जितना राज्य बढ़ानेमें

५०० वर्ष लगे थे, उतनी भूमि मुसलमानोंने पहले १०० वर्षके भीतर ही अपने अधिकारमें करली ।

इस तरह पूर्वमें जब एक नवीन धर्म्म अपना प्रकाश फैला रहा था, तब पश्चिममें ग्रेगरी और पानिलस इङ्गलेण्डके सात राज्योंमें ईसाई धर्म फैलानेका प्रयत्न कर रहे थे । जिस समय मुहम्मद साहबने कावाकी ३६५ मूर्त्तियोंको तोड़ा, उसी समय इङ्गलेण्डमें ईसाई पादरियोंने गाडमनहामके मन्दिरकी मूर्त्तियोंका विनाश किया ।

आठवीं सदीमें इङ्गलेण्डमें राजकीय अन्धाधुन्धी यहाँतक बढ़ी कि केवल एक नार्थम्ब्रीया प्रान्तमें १४ राजा बदले गये, जिनमें से ६ का खून हुआ, ५ देशसे निकाल दिये गये, २ साधू हो गये और केवल एक राज्य करता हुआ अपनी मौतसे मरा । ऐसी कठिन परिस्थितिमें इङ्गलेण्डमें भावी सुधारों और साहित्यकी नींव डालनेवालेकालम्ब, कथबर्क, बीड, केडमन प्रभृति धर्मगुरु थे । केडमन एक ग्वाला था, परन्तु कहा जाता है कि एकाएक ईश्वरीय प्रेरणासे उसने बाइबिलका इतिहास कवितामें लिखा था । वानीफेस राजघरानेमें जन्मलेकर जर्मनोमें धर्म प्रचार करनेके लिए गया था और जिस प्रकार लूथरने पापक्षमाकी चिट्ठियोंवाले प्रोटेस्टेण्ट धर्मको स्थापित किया था उसी प्रकार इसने हज़ारों वर्षसे पवित्र गिने जाने वाले ओक या मिज़लटो नामक वृक्षका जिसमें देवका अस्तित्व माना जाता था खंडन करके मूर्तिपूजकोंमें ईसाई धर्मका प्रचार किया ।

सन् ७१७ ई० में १,२०,००० मुसलमानोंने १८०० जहाजी काफलोंके द्वारा १३ मास तक कान्सटेन्टीनोपल पर घेरा डाला, परन्तु अंतमें लियो बादशाहने उन्हें हराकर पीछे हटा दिया । इसके १८ वर्ष पश्चात् उनके सरदार तारकने जिब्रा-

लूट लेकर सीरीसके युद्धमें स्पेनके गोथिक राजा रोडिकका पराभव किया। इस समयसे ६०० वर्षों तक उस देशमें इस्लाम धर्मकी ध्वजा फहराती रही। यहींसे उन्होंने फ्रान्स, अस्ट्रिया, इटली आदि देशोंपर कई बार हमला किया, परन्तु ड्यूक-चार्ल्समार्टेनने उन्हें ऐसी भारी शिकस्त दी कि जिससे पश्चिमी यूरोपमें मुसलमानोंका प्रभाव नहीं जम सका।

ईसाई जगत्पर ऐसी विपत्तियाँ पड़नेसे लियो बादशाह-ने सोचा कि समस्त ईसाई लोग मूर्त्तिपूजक हो गये हैं, इसी कारण परमेश्वर नाराज होकर उनपर ये सब विपत्तियां ढा रहा है; इस लिए उसने अपने राज्यमें सब जगह ईसा, मरियम और साधुओंकी तमाम प्रसिद्ध और चमत्कारी मूर्त्तियोंके तोड़नेकी आज्ञा जारी करदी। इस आज्ञासे पाद-रियोंको बड़ा दुःख हुआ, और इसी लिए उन्होंने लोगोंको उत्तेजित करके बलवा खड़ा कर दिया।

नवमी शताब्दीमें अब्दुल रहमानने कार्डोवामें स्वतंत्र राजसिंहासन स्थापित किया। उसके राज्यमें अकबरके समान धर्म विषयक खूब शान्ति रही और इसी कारण उसकी प्रजा कलाकौशल्यमें बहुत आगे निकल गई। उसकी बनवाई हुई कोर्डोवाकी मसजिदमें जब ४०० प्रदीप प्रज्वलित होते थे तब उसकी छटा एक अपूर्व रूप धारण करती थी।

इस समय पूर्वके बगदाद नगरमें हसन अलरशीद राज्य कर रहा था। उसका साहित्य विषयक प्रेम जगत् प्रसिद्ध है। उसने ग्रीक, फारसी और अरबी भाषाकी अनेक पुस्तकोंका अनुवाद कराया था और अपने आसपासके विद्वानोंको एक-त्रित करके एक विद्वानमण्डलभी स्थापित किया था।

इधर फ्रान्समें शार्लमेन अनेक देश जीतता फिरता था। उसने केवल एक ही दिनमें ४५०२ मनुष्योंका मस्तक-छेदन

करके सेक्सनी प्रान्तपर कब्जाकर लिया । सन् ७७३ ई० में लोम्बर्डके राजाके चढ़ आने पर पोपने इससे मदद माँगी, इस कारण उसने रोम पहुँच कर पोप और वहाँके निवासियों को भयसे मुक्त किया । इसके पश्चात् वह स्पेन जीतनेको गया, परन्तु वहाँ उसका मनोरथ सफल नहीं हुआ । पश्चिमी यूरोपमें उसे एक महान् ईसाई साम्राज्य स्थापित करने वाला कह सकते हैं ।

एक दिन शार्लमेन अपने महलकी खिड़कीसे समुद्रमें एक छोटी सी डोंगी आती हुई देख कर रोने लगा । उसके मंत्री वगैरह जब इसका मतलब नहीं समझे तब उसने कहा—'जब ये दलदस्यु हमारी मौजूदगीमें ही लूटमार करते हैं तब वे मेरे पश्चात् मेरे वंशजोंके समयमें क्या नहीं करेंगे ?'

दशवीं शताब्दीमें उसकी यह भविष्यवाणी अक्षरशः निकली । डेन्स और नार्थमेन (उत्तरके मनुष्य) ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनीके किनारे घूमते हुए दिखाई देते थे ; यही नहीं, उनकी नावें मध्य समुद्र तक धावा डालती थीं । इंगलेण्डके महान् आलफ्रेड को उन्होंने ऐसा तंग किया कि जिससे उसे विवश होकर उन्हें आधा राज्य सौंप देना पड़ा, शार्लमेनके वंशजों को भी नार्मण्डी नामक एक अत्यन्त उपजाऊ प्रान्त देना पड़ा अंत में इन लोगोंका त्रास इतना अधिक बढ़ गया कि फ्रान्सके राजा और प्रजा—दोनों प्रार्थना किया करते थे—"हे प्रभु ! हमें इन उत्तरीय मनुष्योंके भयसे मुक्त कीजिए ।"

पूर्वीय यूरोपमें कान्सटेन्टीनोपलपर रशियाके स्लैव लोगोंने हमला करना शुरू किया । सन् ६११ ई० में नव प्रतिष्ठित जर्मन साम्राज्य पर इससे भी अधिक विपत्ति आई । अलमोस नामक एक तुरेनियन सरदार दो लाख फौज लेकर हंगरी पर चढ़ आया और वहाँ पर उसने अपना राज्य

जमाया । इसके हमलों को हटाना जर्मनोंके लिए बहुत कठिन हो गया ।

इस समय यूरोपमें सर्वत्र पशुबल और तमोगुण प्रत्यक्ष दिखाई देता था । चारों ओर लूट खसोट और मार काट जारी थी । ट्यूटन लोगोंमें व्यक्ति स्वातंत्र्यका भाव प्रारंभसे ही दिखाई देता था, परन्तु इस समय उनकी यह स्वतंत्रता उल्टी शाप रूप हो गई थी, अब हजारों लोग स्वतंत्र रहनेकी अपेक्षा किसी बड़े सरदारकी अधीनताके नीचे रहना पसंद करने लगे थे । इस कारण सारे यूरोपमें जगह जगह सरदारों-के किले खड़े हो गये और लोग अपनी स्वतंत्रता को खो बैठे ।

इस समय अज्ञान की बहुत प्रबलता थी । शार्लमेन और आलफ्रेडके समयका प्रकाश लुप्त हो गया था और बड़े बड़े वहम तथा दुर्गुण फैल गये थे । धर्माध्यक्ष पोपकी भ्रष्टता भी पराकष्टाको पहुँच गई थी । नार्मण्डीके गरीब लोगोंने अमीरों-के अत्याचारोंसे पीड़ित होकर गुप्त सभायें करना प्रारम्भ किया, परन्तु अमीरों को इनका पता लग जानेसे उन्होंने इनके तमाम अगुओं को पकड़वा कर उनकी आँखें निकलवा लीं, जीतेजी जलवा दिया या उनके ऊपरसे गरम शीशा ढलवा कर उन्हें मरवा डाला ।

सन् १००० की साल में इतना अधिक अत्याचार बढ़ा कि लोग कहने लगे कि अब पृथ्वीके प्रलयका समय आ गया है । फ्रान्स, इंग्लेण्ड, इटली, ग्रीस और पूर्वमें सर्वत्र और धनवान् लोग निस्तेज और फीके पड़ गये । गरीब लोगोंमें दुष्काल फैल गया । वृक्षोंके पत्ते या जड़ें खाकर रहने लगे । कई जगहोंसे गरीब तथा निर्बल मनुष्योंको जीवित दशामें काट कर खाजानेकी बातें सुनाई देने लगीं । एक मनुष्य बाजारमें मनुष्यका मांस

बेचता था और दूसरा एक कबरसे मुर्दा निकालता था—वे दोनों पकड़कर जला दिये गये। एक तो ऐसा भयंकर दुष्काल पड़ा हुआ था, और इस पर प्लेग इतने ज़ोरसे फूट निकला कि मुर्दोंके ढेर लग गये। उनको कोई गाड़ने वाला नहीं था, जहाँ तक दृष्टि जाती थी वहां तक मुर्दे ही मुर्दे पड़े दिखाई देते थे; इस कारण जङ्गली जानवरोंका उत्पात बढ़ गया और वे बस्तीमें आकर मुर्दों तथा जीवित मनुष्यों को पकड़ कर खाने लगे।

परन्तु इस समय मुसलमान देशोंमें खेती, व्यापार और कला कुशलता बढ़ रही थी। बड़े बड़े शहर बसाये जाते थे। तीसरे अब्दुल रहमानके ५० वर्षके शासनमें स्पेनकी समृद्धि खूब चमकने लगी। वहाँ चाँवल, अंजीर तथा गन्नेकी खेती शुरूकी गई और नहरें खुदवाईं गईं। सीरिया, मिसर और कान्स्टेन्टीनोपलके भवन स्पेनकी कारीगरीसे बनाये जाने लगे। इस समय कोर्डावामें २ लाख घर, ६०० मसजिदें, ९०० हमाम खाने ५० औषधालय, और ८० पाठशालायें थीं। सेविल और ग्रेनेडामें इससे भी अधिक कालेज और लाइब्रेरी थीं। जिस समय पश्चिममें मुसलमान लोग इस तरह सुख-शान्तिसे दिन बिता रहें थे, उस समय पूर्वमें मुहम्मद गजनी हिन्दुस्तानमें लूटमार मचा रहा था।

दक्षिणके मुसलमान दशवीं सदीके ईसाइयों से बुद्धिबल-में प्रबल थे, लड़ाईमें वे बहुत क्रूर थे, परन्तु जीते हुए लोगोंके पास जो नवीनता होती थी उसे सीखनेमें उन्हें देरी नहीं लगती थी। इस तरह वे उत्तम सुधारोंके योग्य सिद्ध हुए थे। २०० वर्ष तक नार्मण्डीमें रहनेसे वे बहुत सुधर गये थे। सन् १०४२ ई० में इटलीमें उन्होंने नेपल्स और सिसली वगैरहमें राज्य स्थापित किया, और सन् १०६६ में प्रसिद्ध

विलियम दि कॉंकररने इंग्लेण्डमें राज्य स्थापित करके उस देशकी राज्य व्यवस्था और अर्वाचीन सुधारोंका बीज बोया।

इस प्रकार जब एक नार्मन चमारका पुत्र इंग्लेण्डका सिंहासन प्राप्त करनेकी तैयारी कर रहा था, उसी समय टस्कनीके एक बढ़ई का पुत्र अनेक शताब्दियोंकी भ्रष्टतासे रोमके मंदिरका जीर्णोद्धार करनेका मनोरथ बाँध रहा था। अंतमें वह अपने प्रयत्नके फलसे रोमका पोप बन गया। उसने पोपके सिंहासनको केवल राज्यसत्तासे ही मुक्त नहीं कर दिया, वरन समस्त राजाओंको पोपकी सत्ताके नीचे मस्तक झुकानेको बाध्य करके, आप सब राजाओंका राजा बन गया।

पूर्वमें मुसलमानोंकी सत्ता फिर बढ़ने लगी। सिनलकके युद्धके बाद तुर्क लोगोंने पेलेस्टाइन जीत लिया और इसके कुछ वर्षोंके उपरान्त एक ग्रीक सरदारने तुर्कोंको एशिया माइनर बेंच दिया। इस तरह तुर्क राज्य काले सागरसे सीरिया तक और कान्स्टेन्टीनोपलसे युफतीस तक फैल गया।

इस समयसे पश्चिममें ईसाई लोग मुसलमानोंका सामना करने लगे और उन्होंने ५०० वर्षोंके बाद स्पेनमें फिर ईसाई राज्य स्थापित किया।

१२वीं सदीमें उत्तरीय यूरोपमें अमीरोंका राज्य था। इंग्लेण्डमें स्टीवन जैसा निर्बल राजा होने पर भी छोटे छोटे हजारों अमीरोंको दुःख देता था। दक्षिण यूरोपमें शहरके लोग इकट्ठे मिलकर शत्रुओंका सामना करना सीख गये थे, परन्तु फ्रांस, जर्मनी और इंग्लेण्डके लोग अनेक छोटे छोटे सरदारों या राजाओंकी अधीनतामें रहकर बहुत दरिद्रतामें दिन बिताया करते थे।

१३वीं सदीके प्रारम्भमें यूरोपके नक्शेमें बहुत अदल बदल

दिखाई देती थी । वर्तमान समयके समान उसमें भिन्न भाषा, भिन्न सीमा और भिन्न इतिहास वाली स्वतंत्र प्रजायें दृष्टिगोचर नहीं होती थी । इंग्लेण्डमें फ्रेंच भाषा और फ्रेञ्च संबन्ध वाले लोग राज्य करते थे । इटलीमें जर्मनोंका राज्य था । जर्मनी में परस्पर विरुद्ध स्वार्थ वाले लोग सदैव लड़ा झगड़ा करते थे । इन सब व्यग्रताओंके मध्य ऐहिक और पारलौकिक सत्ता प्राप्त करनेके लिये तीसरे इनोसेण्ट (११९८) से लेकर आठवें बानिफेस (१३०३) के समय तक सतत प्रयत्न किया जाता था । तेरहवीं शताब्दीमें पोपकी सत्ता पराकाष्टाको पहुंच गई थी । उनकी इस सत्ताके अतिशय लोभके कारण प्रत्येक देशमें जो विरोध उत्पन्न हुआ, उसके द्वारा प्रजाकीय ऐक्य और ऐहिक तथा धार्मिक स्वतंत्रताका बीजारोपण हुआ । फ्रान्स, केस्टिल पोर्टगाल, जवार, और अंतमें इंग्लेण्डके राजा जॉन प्लेन्टेजीटको पोपकी सत्ता मान्य करना पड़ी । इस राजाकी कमज़ोरी देखकर इंग्लेण्डके लोगोंने प्रजा स्वातंत्र्य की सनद पर उससे दस्तखत करा लिये । इसी समयसे इंग्लेण्डके लोगोंमें स्वतंत्रताका उदय हुआ । और इस देशकी लोकसत्ता कैसी प्रबल थी इस बातका कड़वा अनुभव पोपको भी हो गया ।

इस समय दक्षिण फ्रांस में पोप भयङ्कर खून खराबी मचा रहा था । इसका कारण यह था कि यहाँ ग्रीक, रोमन, फीनीस, बास्क, गाल, गाथ, फ्रेंक, मूर आदि अनेक जाति के लोग निवास करते थे । इस कारण यहाँ धार्मिक विचारोंमें अधिक स्वतंत्रता दिखलाई देती थी और पादरियोंकी महान्धताको कम अवकाश मिलता था । भला ऐसी स्थिति पोप कब सहन कर सकता था ? इससे उसने टूलूझके हाकिम छट्टे रेमंडको बहिस्कृत कर दिया । इसी समय दुर्भाग्यसे उसके एक नागरिकने पोपके एक अधिकारीको मार डाला ।

इस कारण पोपके क्रोधका ठिकाना नहीं रहा। उसने सब देशोंके राजाओंको आदेश दिया कि इस दुष्ट प्रजाको कुचल डालो। इस आज्ञाके अनुसार करीब ५० हजार क्रूर योद्धा सुन्दर भूमिपर चढ़ आये और १० वर्षोंतक निर्दयताके साथ सब नगरोंका नाश करते रहे। इन लोगोंने पहले शहरहीमें २० हज़ार मनुष्य काट डाले। स्त्री तथा बच्चोंको भी उन्होंने जीता नहीं छोड़ा। दश वर्षोंतक निरंतर होने वाली आल्बी जेन्सिसकी इस कतलमें कितने मनुष्योंका संहार हुआ यह कहना कठिन है। वे अभागे इस तरह निर्मूल कर दिये गये थे कि अब उनकी जाति तथा धर्मका पता लगना भी असंभव है।

इस पोप (बानिफेस) का तीसरा दुष्कृत्य चौथा क्रूश युद्ध† खड़ा करना था। इसके तात्कालिक फलसे अनेक लोगोंका वध हुआ, परन्तु उसके अंतिम परिणामसे पूर्व देशोंके साथ व्यापार की वृद्धि हुई। ये योद्धागण कान्स्टेन्टोल नोपिल जीतकर वहाँसे अगणित द्रव्य लूट ले आये।

इस समय यूरोपमें डाँमिनिक और फ्रान्सिसका नया पंथ प्रचलित हुआ और १४वीं सदीमें इन दोनों पंथोंके अनेक उपदेशोंने जन्मग्रहण किया।

अब स्वतः अपने खोदे हुए गड्ढेमें पोपके गिरनेका समय आ गया। जिन प्रान्तोंके लिए उसने आल्बी जेन्सिसकी कतल कराई थी। उन्हींके लिए फ्रान्सके राजा फिलिपके साथ

† ईसाकी जन्म भूमि जेरूसेलम पर मुसलमानों ने अधिकार लिया था। इस कारण इन लोगोंके हाथसे इस पवित्र तीर्थको छुड़ानेके लिये सब इसाई राजाओंने बीड़ा उठाया था। इसी उद्देश्यसे ग्यारहवीं शताब्दी के बाद अनेकबार लड़ाइयां हुईं। इन्हींका नाम क्रूश युद्ध धर्मयुद्ध पड़ा।

उसका विरोध हो गया और उसके (अष्टम बानिफेस) वधके साथ इस झगड़ेकी शान्ति हुई ;

अंगरेज अमीर प्रथम एडवर्ड जैसे बलवान् राजाके सामने अपनी धृष्टता दिखलाते थे। फराडर्सके नागरिक अपने अमीर मालकोंसे लड़ते थे और स्विटजरलैंडके पहाड़ी लोग भी अपना सिर उठा रहे थे।

इस समय से धर्मक्षेत्र में स्वतंत्रता झलकने लगी फ्रांस नॉगरेट और फ्लारेन्सका महाकवि डेन्टी इसके उत्तम उदाहरण हैं। अब वालेस, ब्रूस, और विलियमटेल जैसे वीरपुरुष कार्य क्षेत्रमें अवतीर्ण हुए। पहले द.के पराक्रमसे स्काटलैंड स्वतंत्र हुआ। और विलियमटेलकी बहादुरी तथा कुशलतासे स्विस प्रजा जर्मन राज्यकी गुलामीसे मुक्त हुई।

१५वीं सदीमें राजाओं, व्यापारियों, खलासियों, और कारीगरोंमें नई शोध-खोजकी वृत्ति जागृति हुई। अब पुराना जमाना बदल कर नया जमाना आया। सन् १४७६ ई० में छापनेकी कलाका प्रचार कष्टनसे विलायतमें किया।

इस कलाका पहला प्रभाव प्राचीन साहित्यके विस्तार पर पड़ा और सन् १४५३ ई० में कान्स्टेन्टीनोपल तुर्कोंके हाथमें आजानेसे उसे पुष्टि मिली; क्योंकि वहाँके अनेक विद्वान् बहुत प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें लेकर यूरोपके प्रत्येक देश और विशेष करके इटलीको गये थे और उन्होंने ही यूरोपमें प्राचीन ग्रीक-साहित्यके पुनरुज्जीवनका युग प्रारम्भ किया था।

इस शताब्दीमें पोपका सिंहासन प्रत्येक प्रकारके दोषोंसे भ्रष्ट हो गया था। फ्लारेन्स मानों वेश्याओंकी नगरी बन रही थी, और पोपका महल पृथ्वी पर प्रत्यक्ष नरकके समान दिखाई देता था। आठवें इनोसेण्टके बीमार पड़ने पर

उसके भ्रष्ट जर्जरित गात्रोंमें ताकत आनेकी कामनासे तीन जवान लड़कोंका बलिदान किया गया! परन्तु वह सब निष्फल गया!

इस समय इटलीके प्रसिद्ध भविष्यवेत्ता सेवोनेरोलाका जन्म हुआ। आसपासके दुराचारोंसे उसे अत्यन्त दुःख प्राप्त हुआ और उसने इसे दूर करनेके लिए बहुत वर्षों तक अगाध श्रम किया। परन्तु अन्तमें वह पोपके आदेशसे पकड़ा गया और जीवित दशामें जला दिया गया।

सन् १४८६ ई० में बार्थो लोम्युडियाज़ आफ्रिकाके दक्षिण किनारे पर जा पहुँचा। इसके १२ वर्षके पश्चात् वास्को-डिगामाने भारतवर्षका मार्ग खोज कर यूरोपीय व्यापारियोंकी समृद्धिका द्वार खोल दिया और इसी समय अर्थात् सन् १४९२ ई० के अक्टूबर महीनेकी ११वीं तारीखको कोलम्बसका पश्चिमी दुनियाँ सम्बन्धी स्वप्न फलीभूत हुआ।

१६वीं सदीको धर्म्मक्रान्तिका युग कह सकते हैं। मार्टिन लूथरके अनुयायी उससे भी अधिक बुद्धिमान थे; इनमें इरास्मस, ब्यूसर, ज़िवंगल, टिन्डल, कालविन आदिका नाम अधिक प्रसिद्ध है।

टिन्डलने पहिले पहल अँगरेजीमें बाइबिलका अनुवाद किया। धर्माचार्य्योंने उसके विरोधमें हर प्रकारकी युक्तियोंसे काम लिया, उसकी छपाई हुई पुस्तकोंको जला डाला और अन्तमें उसे फाँसी पर चढ़वा दिया!

ऐसा होने पर भी मुद्रित बाइबिलका प्रचार यूरोपमें इतनी शीघ्रताके साथ हुआ कि अब तमाम लोग बाइबिलकी ही भाषा बोलने लगे, साधारण बात चीतमें भी उसके शब्द आते थे। लूथरने यह पुस्तक २० वर्षकी उम्र होने तक भी नजरसे नहीं देखी थी। अब प्रत्येक मनुष्य अपने लिए विचार करना

सीख गया और इसका परिणाम यह हुआ कि बाइबिलकी शिक्षा और पादरियोंके काम-काजोंमें जमीन आसमानका फरक हो गया। अब समस्त प्रजा अपने आप विचार करना सीख गई। जब लूथरने रोममें जाकर अपनी आखोंसे देखा कि पोप स्वतः ही धर्मको एक प्रकारका व्यापार समझ रहा है, तब उसने हर एक प्रकारसे उसकी सत्ताको नष्ट करनेका निश्चय किया। सन् १५१७ ई० के एक त्योहारके दिन विटनबर्गके मन्दिरके द्वार पर उसने पाप-क्षमाकी चिट्ठियोंके विरुद्ध ९५ प्रश्नोंकी एक पत्रिका लगाई। जर्मनीमें जगह जगह उसका प्रतिघोष हुआ। लूथरको सेक्सनीके राजाका आश्रय मिलनेसे उसके विरुद्ध किये जाने वाले पोपके सब प्रयत्न निष्फल गये।

वर्म्सकी राजसभामें अनेक राजाओं और धर्म्माध्यक्षोंके समक्ष उसने विनय, किन्तु अत्यन्त दृढ़ताके साथ अपने शब्द वापस लेनेसे इन्कार कर दिया! इस तरह एक ही व्यक्तिने मध्ययुगके ईसाई धर्म्मको भारी धक्का पहुँचाया और नवीन प्रोटेस्टेएट मत स्थापित किया।

अब इस समयसे पोपके साम्राज्यकी चारों ओरसे अवनति होने लगी, परन्तु इसके पहले पोपने 'योशु-मंडल' स्थापित करने वाले इग्नेश्यस लायोन, मेक्सिकोका राज्य जीत कर खून-खराबी करनेवाले हर्नन कोर्टिस, और पेरू देश पर भारी जुल्म करनेवाले पिजेरो जैसे उद्दंड शागिर्द खड़े करके, तथा स्पेनमें 'धर्मनिरीक्षक-सभा' स्थापित करके यूरोपमें सैकड़ों वर्षों तक त्राहि त्राहिकी पुकार मचवाई थी।

सन् १५२६ ई० में इटलीकी स्थिति करुणा-जनक हो गई। एक तरफसे जर्मनीसे लूथरकी अनुयायी फौज, और दूसरी तरफसे स्पेनसे सनातन पक्षवालोंकी फौज—दोनोंने रोमको

जीत कर पोपको कैद कर लिया, और भीषण लूटमार करके फ्लारेन्समें सेवोनेरोलाकी भविष्य-वाणी अक्षरशः सत्य कर दिखलाई। पोपने स्पेनकी सेनासे मिलकर फ्लारेन्सके मेडिसवंशका नाश कराया और इस तरह इटलीकी प्रजाकीय स्वतन्त्रता लुप्त हो गई।

इस शताब्दीके मध्यमें अमीरों और पादरियोंके जुल्मसे पीड़ित स्वीडनकी प्रजाका उद्धार गस्टेवस वासा नामक उस देशके राजाने किया और वहाँ नव-जीवनका संचार करके धर्मक्रान्तिके प्रथम फलका आस्वादन उसने अपनी प्रजाको कराया।

कुछ समयके उपरान्त लूथरकी अपेक्षा अधिक बलवान आवाज जिनोवासे निकली। उसने पोपकी सत्ताकी जड़ें काट डालीं। यह आवाज कालविनकी थी। उसने जाहिर किया कि ईश्वरकी क्षमा प्राप्त करनेके लिए पादरियोंकी बिलकुल जरूरत नहीं है। लूथर-सम्प्रदायके साथ वहम और राजाओंकी सत्ताका निर्वाह कुछ अंशमें हो सकता था, परन्तु कालविनके सिद्धान्तोंके आगे उनकी ज़रा गुजर नहीं थी। इसी कारण फ्रेंच उत्क्रान्तिके पहले कालविनका सिद्धान्त माननेवाले देशोंके सिवा अन्य कोई देश स्वतंत्र नहीं हो सके। उसके सिद्धान्त परसे कोलिग्नि, विलियम आफ ओरेञ्ज तथा जान नाक्स जैसे कार्य्यदक्ष पुरुष उत्पन्न हुए और जिनोवा लोक-स्वातंत्र्यका केन्द्र बन गया।

फ्रान्स और इटलीमें डामिनिक, मेकियावेली और इग्नेश्यस लायोलाका धर्मोन्मादी पक्ष प्रबल हो रहा था। इनके अनुयायिओंकी मददसे पाँचवें पायस नामका पोप नये सुधारकोंको नष्ट भ्रष्ट करनेके लिए राज-कुटुम्बमें जहरीले विचार फैलाया करता था। स्पेनका राजा भी इन्हींमें शामिल

था। फ्रान्सका राजा नवम चार्ल्स बहुत कमज़ोर था, इस कारण वह कभी कैथोलिकोंके हाथमें और कभी प्रोटेस्टेण्टोंकी सत्तामें रहा करता था। अन्तमें जब उसकी माँ कैथोराइनने देखा कि कोलग्नि नामक प्रोटेस्टेण्ट-नौकापतिकी सत्ता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है, तब उसने समस्त प्रोटेस्टेण्टोंको फंसानेके लिए नवारके हेनरीको अपनी लड़की देना स्वीकार करके विवाहके मिससे उनको पेरिस बुलाया और सन् १५७२ ई० के अगस्त महीनेकी २४वीं तारीखको मध्यरात्रिके समय उन सब बरातियोंको राजाज्ञासे कतल करवा डाला!

उस रविवारकी कालरात्रिका दृश्य ऐसा भयंकर था कि कई शताब्दियों तक सारे यूरोपमें फिर कहीं ऐसा हृदय-विदारक दृश्य दृष्टिगोचर नहीं हुआ। मध्यरात्रिके गंभीर और भयंकर अंधकारके समय सारे शहर भरमें भयंकर आवाजें सुनाई देने लगीं। खूनी लोग हाथमें मसालें और खंजर लिए हुए अपनी पैशाचिक-लीला करने लगे। बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष जो कोई उनके सामने पड़ गया उनमेंसे उन्होंने किसीको भी जीता नहीं छोड़ा। सारी रात बन्दूकोंकी आवाजें, हृदयवेधी चीखें और तलवारों तथा खंजरोंकी खड़खड़ाहटके सिवा और कुछ सुनाई नहीं दिया। जिस समय पेरिसमें सूर्योदय हुआ, उस समय सारा शहर मुर्दोंसे भर गया था—उस रात्रिमें कमसे कम ५० हजार प्रोटेस्टेण्ट हताहत हुए। इस हत्याकाण्डकी हवा अन्य प्रान्तोंमें पहुँच गई और वहाँ भी मारकाट शुरू हो गई।

जो मनुष्य इस दुष्ट समाचारको लेकर पोपके पास गया था, उसे पोपने १,००० क्राउनका पारितोषिक दिया और इस घटनासे ईश्वरका भारी उपकार माना। परन्तु जिनोवा,

इंग्लेण्ड और जर्मनीमें फ्रेंच दरबारके इस दुष्ट कृत्यके कारण हाहाकार मच गया।

हालेंडके नवीन जोशको कुचल डालनेके लिए स्पेनके राजा द्वितीय फिलिपने आल्वा नामक एक अत्यन्त क्रूर सरदारको नियुक्त किया। इस सरदारने एक मंत्री-सभा स्थापित करके उसकी सहायतासे नवीन मतके उच्छेद करनेका निश्चय किया। यह सभा रुधिर-सभाके नामसे प्रख्यात थी। इसके द्वारा अगणित निर्दोष मनुष्योंका रक्त बहाया गया। जिन लोगोंकी प्रवृत्ति सुधारोंकी ओर बिलकुल नहीं थी परन्तु जो सुधारकोंके प्रति कुछ दया दरशाते थे, वे भी पाखंडी गिने जाते थे। उस समय फाँसी देना एक बिलकुल मामूली बात हो गई थी। हालेंडसे बिदा होते समय आल्वाने अपनी शाबासी दिखलाते हुए कहा था—"मैंने अपने शासन-समयमें १८००० मनुष्योंको फाँसी पर लटकाया है!"

बेचारे शान्त हालेंड निवासी कई वर्षों तक यह सब अत्याचार चुपचाप सहन करते रहे, परन्तु अन्तमें सौभाग्यसे ओरेञ्जके राजकुमार विलियमने असंख्य संकटोंको सहन करके विजय प्राप्त की। हालेंडकी प्रजाने उसे अपना ईश्वर प्रेरित रक्षक समझा। उसके तीन भाई लड़ाईमें मारे जा चुके थे, तथापि उसने बड़ी बहादुरीके साथ लेडन जीत लिया। यह देखकर स्पेनकी फौजने उस शहर पर घेरा डाल दिया। दुर्भाग्यवश शहरमें अधिक दिनोंके लिए खुराक इकट्ठी नहीं की गई थी। फ्रांसके स्वार्थी राजा तृतीय हेनरीसे कुछ सहायता मिलनेकी आशा नहीं थी, इङ्गलंडकी रानी इलिजाबेथ क्रोधी और क्षुद्र-हृदय की थी; इस कारण उसने अपने आत्मबल पर ही भरोसा रखकर १६ जगहसे समुद्रके बाँधको काटकर

लेडन शहरको जलमय कर दिया और नौकापति वाइस्फोटकी सहायतासे भूखे नगरनिवासियोंकी रक्षा की। तब स्पेनके राजाको लाचार होकर घेरा उठा लेना पड़ा। पोप सम्प्रदाय और स्पेनके जुल्मी राज्यके विरुद्ध लोक-स्वातंत्र्यका यह सबसे भारी झगड़ा था और कुछ ही वर्षोंके उपरान्त अर्थात् सन् १५७६ ई० में हालैंडमें प्रजासत्ताक राज्य की स्थापना हो गई।

इस शताब्दीमें इङ्गलेंडमें प्रोटेस्टेन्ट मत बहुत बलवान् और लोकप्रिय हो गया था। इसी समय साहित्य-क्षेत्रमें स्पेन्सर, शेक्सपियर, बेन, प्रभृति अद्वितीय नररत्न उत्पन्न हुए। समुद्र-पर्यटन और व्यापारमें भी इसी समयसे पूर्णोन्नतिका द्वार खुला। प्रत्येक देशके किनारे अङ्गरेजी जहाजें दिखाई देने लगीं। प्रसिद्ध जहाजी अफसर ड्रेकने—जिसे रानी एलीजबेथने 'नाइट' की पदवी दी थी—स्पेन देशकी जहाजें लूटकर सारी दुनियाँकी यात्रा की।

इस तरह यूरोपके इतिहासमें प्रकाशकी अनेक किरणें फैलानेवाली सोलहवीं शताब्दीका दिग्दर्शन समाप्त हुआ। सत्रहवीं शताब्दीके प्रारंभमें 'जेसुएट' पंथकी सहायतासे पोपने फिर अपनी सत्ता जमानेका प्रयत्न किया। सुधारोंके प्रथम आवेशमें जिन लोगोंने नये धर्मको स्वीकार किया था उनमेंसे अधिकांश लोग फिर कैथोलिकपंथमें सम्मिलित हो गये। जर्मनीके प्रोटेस्टेन्टोंने इनके साथ झगड़ा किया, परन्तु वे सन् १६२० में वेसवर्गकी लड़ाईमें हार गये। बोहीमियाका राज्य बवेरियाके मैक्समिलनने छीन लिया और उसने जगह जगह जेसुएट लोगोंको नियुक्त किया। इस तरह फ्रांस, हालेंड, स्विट्ज़रलेंड और दूसरे देशोंमें भी पोपकी सत्ता फिर जमने लगी।

रोमके पोप आठवें अर्बनने अपने पुराने मित्र गेलेलियोको बाइबिलके विरुद्ध पाखंडी सिद्धान्त फैलानेकी कैफियत तलब करनेके लिए रोममें बुलाया। गेलेलियोके नवीन सिद्धान्त यूरोपमें प्रचलित सिद्धान्तोंके विरुद्ध थे। उसका सिद्धान्त था—'विश्वका मध्यबिन्दु पृथ्वी नहीं, सूर्य है; सूर्य स्थिर है और पृथ्वीकी दैनिक तथा वार्षिक दो गतियाँ हैं। इस सत्यान्वेषी प्रवृत्तिके कारण उसे जेल जाना पड़ा! जेसुएटलोग पोपसे कहते थे कि लूथर और कालविनके लेखें तथा भाषणोंकी अपेक्षा गेलेलियोके सिद्धान्त कैथोलिक पंथके लिए विशेष भयप्रद हैं।

इस शताब्दीमें विज्ञानशास्त्रमें ऐसे अनेक नये आविष्कार हुए कि जिनके कारण यूरोप वर्तमान समृद्ध दशा तक पहुँचनेमें समर्थ हुआ। जर्मनीके केपलर नामके एक खगोल-शास्त्रीने ज्योतिष विषयक तीन प्रसिद्ध सिद्धान्त स्थापित किये। लन्दनके एक विलियम गिलबर्ट नामक वैद्यने सिद्ध किया कि पार्थिव चुम्बकाकर्षण और बिजली दोनें एक ही बलके रूपान्तर हैं। विलियम हार्वी नामके एक डाक्टरने रुधिराभिसरणकी शोध की, जेन्सन नामक हालेंडनिवासीने सूक्ष्मदर्शक यंत्र बनाया और कहा जाता है कि दूरबीनकी खोज भी इसी देशमें हुई थी। उष्णता मापनेका यंत्र, हवाका दबाव मापनेका यंत्र और गणितशास्त्रकी अनेक नई शोधोंका जन्म भी यूरोप ही में हुआ।

परन्तु विज्ञानशास्त्रके दिग्गज पंडित बेकन और डेकार्डसको ही समझना चाहिए। बेकन कहता था—'सत्यज्ञान प्राप्त करना हो तो समस्त प्राचीन विश्वासोंको हटाकर उसकी जगह प्रयोग और अनुभवको स्थापित करो।' डेकार्डसने जेसुएट शिक्षा प्राप्तकर चुकनेके बाद उन सब पुस्तकोंके

रद्दीके टोकने में फेंकते हुए कहा था—'मेरे कच्चे मगज़में—बचपनमें जो कुछ ठंस ठूंसकर भर दिया गया है उसे बिलकुल भूलकर मैं अपनी बुद्धिसे विचार और विश्वास करके जो सत्य ठहरेगा केवल उसीको मानूँगा।'

पोपको फ्रान्सकी सहायतासे गद्दी मिली थी; इसीलिए वह फ्रान्सके प्रधान मंत्री रिशलियेके पक्षमें था। और रिशलियेका विचार स्पेन तथा आस्ट्रियाके रोमनकैथोलिक राज्योंको कमज़ोर बनाकर फ्रान्सकी सत्ता बढ़ानेका था। इस तरह स्वतः पोपही रोमन कैथोलिकोंका शत्रु बन गया। सन् १६२६ से १६४२ तक रिशलिये ही फ्रान्सका वास्तविक राजा था—लुई उसके हाथकी कठपुतली मात्र था। रिशलिये बड़ा भारी राजनीतिज्ञ और योग्य शासनकर्ता था। वह जर्मनीके प्रोटेस्टेएटोंको वहाँके राजा फर्डिनेंडके विरुद्ध उत्साहित करके सहायता दिया करता था। फर्डिनेंडने प्रोटेस्टेएटोंसे लड़नेके लिए अपने प्रसिद्ध सरदार वालेन्सटीनको नियुक्त किया। इसकी यह सेना केवल प्रोटेस्टेएटोंके ही विरुद्ध न थी, किन्तु समस्त जर्मनीमें बड़ा उपद्रव मचा रही थी। कैथोलिक लोगोंके जर्मनराजसे प्रार्थना करने पर यह सेना तोड़दी गई। अभी तक प्रोटेस्टेएट दल हारता आया था। अब स्वीडन नरेश गस्टेवशने जर्मन प्रोटेस्टेएटोंका नेतृत्व स्वीकार किया। इसकी गणना विलियम आफ ओरेन्ज और कोलिग्नीकी पंक्तिमें की जा सकती है। वह सन् १६३० ई० के जून महीनेमें डेढ़ लाख फौज लेकर जर्मनीमें पहुंचा। उसका सामना करनेके लिए फर्डिनेंडने ३०००० फौज देकर टिलीको भेजा। इस सरदारने रास्तेमें मागडीवर्ग शहर लूटकर उसमें चार दिन तक सख़ कतल करके तीस हजार स्त्रियों और बच्चोंको मार डाला। सन् १६३१ ई० के सितम्बर महीनेकी ७ तारीखको लीपज़ीकके समीप

दोनों फौजोंकी भेंट हुई और भयंकर युद्धके पश्चात् राजसेनापति टिलीकी भारी हार हुई। इसके पश्चात् गस्टेवश सारे यूरोपमें फिरा और जगह जगह कैथोलिकोंको पराजित किया। इसका सामना करनेका किसीको साहस नहीं होता था। परन्तु वह टिलीके समान कभी नगर निवासियोंको कतल नहीं करता था। इसके बाद दूसरे युद्धमें टिली मारा गया।

अब फर्डिनेंडने वालेन्सटीनको फिर नियुक्त किया। सन् १६३२ ई० के नवम्बर मासकी ६ तारीखको फिर युद्ध प्रारम्भ हुआ। इस युद्धमें स्वीडन-नरेशकी मृत्यु हो जाने पर भी उसका साहसी सेनापति शत्रुओंसे लड़ता रहा और उसने वालेन्सटीनकी सेनाके छक्के छुटा दिये। अंतमें प्रोटेस्टेंट विजयी हुए। कपटी होनेके कारण वालेन्सटीनको भी उसीके सैनिकोंने मार डाला।

कैथोलिक लोग प्रोटेस्टेण्टोंको नास्तिक कहते और उन्हें सदा लूटने मारनेके लिए तैयार रहते थे, और प्रोटेस्टेण्ट लोग भी कैथोलिकों को पाखंडी कहते और उन्हें मार डालनेके लिए कमर कसे रहते थे। इस तरह विरोध बढ़ता गया और इसके परिणामसे दोनों पक्षोंमें ३० वर्षों तक युद्ध चला। इस युद्धमें यूरोपकी सभी शक्तियाँ शामिल थीं। इसके प्रभावसे इङ्गलैण्डमें राजसत्ता और लोकसत्ताके बीचमें भारी विरोध उत्पन्न होगया। पहला जेम्स कहता था—"राजाओंके शासन करनेका सत्त्व ईश्वरदत्त है, इसलिए सर्वधारणको राजकार्य्यमें चूं तक नहीं करना चाहिए।" चार्ल्सके समयमें राजा और प्रजाके बीचका कलह कैसा बढ़ता गया और उसके परिणामसे राजाको फाँसीपर लटकना पड़ा, यह सब हाल इंगलैण्डके इतिहास पढ़ने वालोंको विदित ही है।

फ्रान्सका राजा १४वाँ लुई भी इन्हीं विचारोंका था। एक

बार जब वह बीमार पड़ा तब उसने सोचा कि यदि मैं ह्यूजी-नाट लोगोंको तंग करूं तो प्रभु मेरे ऊपर प्रसन्न होगा। इसके परिणामसे बेचारे ह्यूजीनाट लोगों पर अनेक वर्षों तक जो जो भीषण अत्याचार होते रहे उनका मानवी कलमसे लिखा जाना अशक्य है। सन् १६६० ई० में उसने जेसुयेट नामक विवादशील कट्टर ईसाई दलका नाश किया। सन् १६८५ई० में नांतका आज्ञापत्र रद्द कर दिया गया, जिसके परिणामसे प्रोटे-स्टेण्टोंके सब अधिकार छीन लिए गये और उनके स्कूल, गिरजे भी गिरा दिये गये। करीब २ लाख मनुष्य देश छोड़कर भाग गये। ९००० खलासी, १२००० सिपाही, ६०० अफसर अगणितद्रव्य और उद्योग धन्दा छोड़कर फ्रान्ससे चले गये। इस कारण वहांका व्यापार नष्टप्राय होगया और देशका चौथाई भाग ऊजड़ होगया।

फ्रान्समें जो काम रिशलिये, मेजेरिन और लुईने किया, इङ्गलैण्डमें वही काम जेम्स, चार्ल्स प्रथम और स्टेफर्डने बजाया। महान् कोन्डकी उपमा क्रेमवेलसे दी जाती है, परन्तु क्रेमवेलकी जीत हुई थी और कोन्ड हार गया था। इस हारके परिणाम से फ्राँसमें प्रजापक्षकी जड़ उखड़ गई और अगले दो सौ वर्षों तक राज्यसत्ता निरंकुश बनी रही।

इङ्गलैण्डमें प्रसिद्ध तत्ववेत्ता लाक और हाब्सके सिद्धान्त प्रचलित हुए। यद्यपि हाब्सके सिद्धान्त अंतमें राज्यसत्ताकी ओर झुकते थे, ता भी वे दोनों हा कहते थे कि समस्त राज्य-सत्ताकी मूल प्रजा ही है। दूसरे चार्ल्सके समयमें इङ्गलैण्डकी राज-कचहरियोंमें अनीतिका खूब ज़ोर था और उसके भाई दूसरे जेम्सके समयमें दोनों धर्मोंकी द्वेषाग्नि फिर पूरे तेजके साथ भड़क उठी थी। अब लोग स्पष्ट रीतिसे समझने लगे कि यदि हम लोग इस राजाकी अधीनतामें रहेंगे तो इसके बाद

अनेक कैथोलिक राजा सिंहासन पर बैठेंगे और इस कारण सुधारोंकाकाम बिलकुल रुक जायगा। इसलिए उन लोगोंने राजा-के विरुद्ध झंडा खड़ा कर दिया। इस विद्रोहके फलसे राजा देश छोड़कर भाग गया और प्रोटेस्टेण्ट राजकुमार विलियम सिंहासन पर बिठाया गया। यह पहला ही समय था जब ग्रेटब्रिटेनके बाहर विदेशसे अंगरेजोंने शासनकर्त्ताको बुलाया। इस तरह प्रजापक्षकी पूर्ण जीत हुई।

इस समय जर्मन बादशाह और आस्ट्रियन प्रजाके मध्य झगड़ा हो रहा था। इस अवसरसे लाभ उठाकर तुर्क लोगों-ने वियेना पर घेरा डाल दिया। इस कारण बादशाह अपने कुटुम्बी जनोंको साथ लेकर भाग गया और उसने पोलेंडके राजा सोबीएस्कीसे सहायता माँगी। सोबीएस्कीके आने पर एक दिनके युद्धके पश्चात् तुर्क-सेना भाग गई और वियेना शहर-की रक्षाका यश पोलेंडके राजाको प्राप्त हुआ।

जिस वर्ष गेलेलियोकी मृत्यु हुई उसी वर्ष गणितशास्त्री न्यूटनका जन्म हुआ। इसके सिवा सत्रहवीं सदीके अंतमें हूक, वाइल, हेली, रे, विलकिन्स, हेरिसन प्रभृति अनेक वैज्ञा-निकोंने जन्म ग्रहण किया। जर्मनीमें न्यूटनकी बराबरी करने वाला लेब्निज़ हुआ। फ्रांसमें स्टीम एञ्जिनकी शोध करनेवाला पपिन और हालेंडमें वैद्यक विषयमें आगे पैर बढ़ानेवाला बीरहव हुआ। सन् १६६२ ई० में इंग्लण्डमें रायल सोसाइटी स्थापित हुई।

१८ वीं शताब्दीमें यूरोपमें साहित्यकी विशेष उन्नति हुई। विज्ञानशास्त्र भी आगे बढ़ा और विद्युत वाष्प, ज्योतिष, छापाखाना आदिके विषयमें छोटे मोटे कई आविष्कार हुए।

इसी शताब्दीके मध्यभागमें प्रशियाके राजा द्वितीय फ्रेडरिकने स्वार्थवश अपना वचन भंग करके आस्ट्रियाकी

महारानी मैरिया थैरेसाका हक छीननेकेलिए उससे लड़ाई छेड़ दी। यह रानी बड़ी शिष्ट और चतुर थी। इसके सहायता मांगने पर अनेक राजा जर्मन लोगोंके विरुद्ध आ डटे। इङ्गलेण्डने भी उसे सहायता देनेका वचन दिया। घोर युद्धके पश्चात् अपना निस्तार न देखकर फ्रेडरिकने मेरियासे संधि करली। कार्लाइलका कथन है कि इस युद्धमें कुल ८ लाख ५३ हजार मनुष्य मरे; जिनमेंसे १ लाख १० हजार मनुष्य फ्रेडरिककी ओर के मरे थे। इस युद्धके कारण प्रशियाकी जनसंख्यामें ५ लाखकी कमी हो गई और प्रत्येक ६ आदमी पीछे १ आदमी मारा गया। इस समय सारे यूरोप में दुराचार फैला हुआ था; इससे तंग आकर सन् १७३० ई० में जान वेस्ली और उसके मित्रोंने धर्मको शुद्ध रूपमें लानेके लिए एक मंडल की स्थापना की। व्हीट फील्ड अशिक्षित और मूर्खों को उपदेश देने लगा। इस समय लोगों को जानवरोंकी लड़ाई देखनेका बड़ा शौक था, इस शौकको दूर करनेके लिए उसने बहुत परिश्रम किया।

इन सब बातोंके परिणामसे मज़दूर वर्ग की स्थिति सुधरने और उदारता बढ़ने लगी। जिस समय मनुष्यको यह ख्याल हो जाता है कि हमारे भाइयोंकी जिम्मेदारी हमारे सिर पर है, उस समय सचमुच उसका आत्मगौरव और सदाचरण बढ़ जाता है। सिलंस, टोल्ड, जान हावर्ड, फ्रेडरिक, ओवरलीन और जान हीनरिच पेस्टेलोजी—ये सब अठारहवीं सदीके परमार्थी और परादुःखापहारक पुरुष थे। हावर्डने यूरोपके प्रत्येक देशमें घूम घूम कर कैदियोंकी भयंकर स्थितिमें बहुत सुधारण की—यह बात यूरोपके इतिहासमें प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि हावर्ड की यह परमार्थवृत्ति लिस्बनके भयंकर विनाशसे विशेष जागरित हुई थी। यह

घटना सन् १७५५ ई० की पहली नवम्बर को हुई थी। भूकम्प-के तीन प्रबल धक्कों से लिस्बनके सब मकान गिर गये, हजारों आदमी दबकर मर गये। जो लोग घरों से निकलकर मैदान में इकट्ठे हुए थे उनपर एकाएक समुद्रकी पर्वताकार लहरें उमड़ पड़ी और हजारों आदमियोंको बहा ले गईं। रात्रि होते ही एक साथ सैकड़ों जगह आग लगी, जिसकी प्रचंड लपटें ६ दिनतक चलती रहीं। इस घटनासे कुल मिलकर ६० हजार मनुष्योंकी मृत्यु हुई! गरीब और अमीर सब एक समान हो गये। जो लोग गत रात्रिको मौज-शौककी बहार लूट रहे थे वही सबेरा होते ही अन्न वस्त्रके लिए मुहताज बन गये!

१८ वीं सदीकी अन्तिम २५ वर्षोंमें यूरोप तथा सारी दुनियाँके इतिहासमें दो अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनायें हुई। एक तो अमेरिकाके ४४ संयुक्तराज्य इङ्गलैन्डकी सत्तासे निकलकर स्वाधीन होगये और दूसरे, सैकड़ों वर्षकी त्रस्त फ्रेञ्चप्रजा राजा, अमीरों और धर्माचार्योंके भयसे मुक्त हो गई।

सोलहवें लुईकी फ़जूलख़र्चीके कारण फ्रांसका खजाना खाली होगया। इस कारण प्रजासे बहुत कड़ा टेक्स वसूल किया जाता था और प्रजा त्राहि त्राहि पुकारती थी। देशका व्यापार चौपट होगया था और लोग भूखों मरते थे। सभी जगह अधिकारीगण निरंकुश राजाकी शिक्षा बहुत शीघ्र ग्रहण कर लेते हैं। फ्रांसमें भी यही हुआ। जुल्मी अधिकारी अपना स्वार्थ साधनेके लिए प्रजापर बड़े बड़े अन्याय किया करते थे। निम्नश्रेणीके लोगोंकी दशा बहुत शोचनीय होगई थी। बेचारी ३० वर्षकी युवतियाँ ६० वर्ष जैसी बुड्ढी प्रतीत होती थीं। इस कारण सन् १७८९ में फ्रेञ्चप्रजाने बलवा खड़ा कर दिया। इस समयसे प्रजाके लोग अपने पुराने दुश्मनों—राजा,

अमीर और उच्चवर्गके समस्त लोगोंका नाश करने लगे। इन ४ वर्षोंमें वहाँ जितना जुल्म हुआ उसे स्मरण करते ही हृदय काँप उठता है।

इङ्गलैण्डकी राजक्रान्तिसे उत्तेजना मिलनेके सिवाय फ्रांसकी इस क्रान्तिका मुख्य कारण अमेरिकाके संयुक्त राज्यों-की स्वाधीनताके युद्ध और उनमें मिलनेवाली सफलताका प्रभाव था। तीसरे जार्जके दुराग्रहके कारण अमेरिका संयुक्त राज्य जैसा उपजाऊ और विस्तीर्ण राज्य अङ्गरेजोंके हाथसे निकल गया। ३० अप्रैल सन् १७८९ ई० को जार्ज वाशिङ्गटन संयुक्तराज्योंका प्रथम प्रेसीडेंट नियुक्त हुआ। इस विग्रहमें इङ्गलंडसे द्वेष होनेके कारण फ्रेंच लोगोंने अमेरिकावालोंको बहुत मदद दी थी।

इन क्रान्तियोंका प्रभाव सारे यूरोप पर पड़ा। सब देशोंके कायदोंमें लोकमतको आदर देनेके लिए बहुत सुधार किये गये। इङ्गलेण्डमें तो पहलेसे ही स्वतंत्रता पोषित थी, इस कारण लोकसमूहमें बहुत खलबली नहीं मची; परन्तु पार्लियामेण्टमें जो अनेक तरहकी अव्यवस्थायें प्रचलित थीं, उनको दूर करनेके लिए बहुत प्रयत्नके पश्चात् अन्त में सन् १८३२ ई० में सुधारोंका एक बहुत बड़ा बिल पास हुआ।

लेकीकृत "यूरोपीय बुद्धि-स्वातंत्र्यका-इतिहास" लगभग यहीं पूरा होता है, इसलिए हम यूरोपकी मुख्य मुख्य ऐति-हासिक घटनाओंका स्थूल दर्शन समाप्त करके अब ग्रन्थके विषयोंका स्वल्प दिग्दर्शन कराते हैं।

ग्रन्थकर्त्ताने पहले प्रकरणमें भूत-प्रेतादि वहमोंका सूक्ष्म निरूपण किया है। आजसे लगभग ३०० वर्ष पहले समस्त लोग इस वहमको सत्य मानते थे और इसके परिणामसे वे हजारों निर्दोष स्त्रियोंको डाकिनी कहकर धर्माचार्योंकी

आज्ञासे जीते जी जला दिया करते थे। क्योंकि ईसाई धर्मके अनुसार शैतान ईश्वरका शत्रु होनेके कारण वह लोगोंको सदैव बुरे मार्गपर ले जाता है, इसलिए जिस तरह हो सके उसके कार्यको रोकना, प्रत्येक धर्मनिष्ठ पुरुष अपना कर्तव्य समझता है—यही लोगोंका साधारण विश्वास था।

रोमन राज्यमें जंत्र-मंत्र जाननेवाले गुनियों आदिकी स्थिति भारतवर्ष जैसी ही थी। परन्तु ईसाईधर्म प्रचलित होनेके पश्चात् वहाँ लोगोंकी दशा बहुत बिगड़ गई। यूरोपमें यह वहम १५०० वर्षों तक जारी रहा। लूथरकी धर्मसुधारणासे इस वहमने उस समय उल्टा जोर पकड़ा। भ्रान्तिके मार्गसे निकलनेमें लोगोंको कितना अधिक समय लगता है, इसका उदाहरण हमें लूथरके आत्मचरितसे भलीभांति विदित होता है।

इस भ्रान्तिकी उत्पत्ति किन्हीं आकस्मिक संयोगों अथवा शास्त्रीय अज्ञानसे नहीं, किन्तु जीवनके समस्त व्यवहारोंमें शैतानके कामोंके देखनेकी पहलेसे बंधी हुई धार्मिक धारणाके कारण हुई थी। इसलिए जब उक्त धारणा शिथिल हो गई तब तज्जन्य भ्रान्ति (वहम) भी मिट गई और पोप तथा धर्मनिरीक्षकोंके त्रासदायक कानून भी बिलकुल निर्वीर्य होगये।

इस नवीन बुद्धि-स्वातंत्र्यके प्रवर्त्तकोंमें मुख्यतः मोन्टेन, ग्लेनविल, बेल, डेकार्डस, वाल्टर, होब्स और बेकनका नाम अग्रगण्य है।

दूसरे प्रकरणमें धर्मसंस्थानोंके पवित्र माने जानेवाले चमत्कारोंका वर्णन किया गया है। न्यूटन जैसा बुद्धिमान् पुरुष भी इस विषयको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता था। जो ईसाई-धर्मगुरु अन्य धर्मोंके चमत्कारोंकी हँसी उड़ाते थे,

वे ही अपने धर्ममें वर्णित वैसे ही चमत्कारोंको पूर्ण सत्य मानते थे।

इसके सिवा जो लोग समकालीन (अपने समयके) चमत्कारोंको नहीं मानते थे, वे भी पौराणिक चमत्कारों पर पूर्ण श्रद्धा दरशाते थे। क्योंकि उनके बचपनके संस्कारोंमें ऐसी बातें ओतप्रोत भरी हुई होनेके कारण वे तद्विषयक दृढ़ और निष्पक्ष विचार नहीं करते थे। इस अंधश्रद्धाको निर्मूल करनेवाले लाक और मिडिलटन थे। इस प्रकरणमें ग्रंथकारने "बुद्धिस्वातंत्र्यवाद" का वर्णन बहुत उत्तम शब्दोंमें किया है।

तीसरे प्रकरणमें बुद्धि-स्वातंत्र्यवादके तीन स्वरूप बतलाये गये हैं। (१) कला-शास्त्र सम्बधी, (२) विज्ञान-शास्त्र सम्बधी और (३) नीति-शास्त्र सम्बधी।

(१) सुसभ्य मनुष्योंमें बुद्धिबल, अविरत और शान्त विचार करनेकी शक्ति, अदृश्य विषयों पर मन एकाग्र करनेकी दृढ़ता, इन्द्रियोंकी काल्पनिक सृष्टिसे विचारोंको मुक्त करनेका बल, प्रभृति जो बातें दिखलाई देती हैं, वे जंगली मनुष्योंमें बिलकुल नहीं पाई जातीं। उनके मस्तिष्कमें बाह्यमूर्त्तिकी सहायताके बिना कोई आध्यात्मिक खयाल नहीं उतरता है, इस कारण जब तक उनकी मानसिक स्थिति नहीं बदलती है तब तक उनमें हर तरहसे मूर्त्तिपूजाका प्रचार बना रहता है। ऐसा होनेके कारण ही धर्मका (अथवा धर्मके कल्पनामय और साक्षात्कार होनेवाले अंगोंको) सच्चा इतिहास कला-शास्त्रके इतिहास परसे जाना जाता है। ईसाईधर्म्म प्रवेश होनेके पश्चात् रोमन और ग्रीक लोगोंमें लगभग एक हज़ार वर्ष तक शोक, वैर अथवा दुःख प्रदर्शित करनेवाले चित्रोंका बनाना पहलेके समान निषिद्ध बना रहा। धर्मगुरु इसके

विरुद्ध पक्षमें थे, परन्तु चित्रकला लोकप्रिय हुनर होनेके कारण जब तक लोगोंकी प्रवृत्ति नहीं बदली तब तक पादरियोंका कुछ वश नहीं चला। पीछेसे धीरे धीरे ईसा मरियम और १४वीं सदीसे परमेश्वरके चित्रोंकी पूजा होने लगी—साधुओंको भी ऐसा ही सन्मान मिलने लगा। सारांश यह है कि इस समय ईसाई धर्म्ममें मूर्त्तिपूजाका प्रचार हो चुका था; क्योंकि उस समय यूरोपकी मानसिक स्थितिके लिए वह आवश्यक थी। इससे कलाशास्त्रकी अवनति हुई; क्योंकि मूर्त्तिपूजासे रसवृत्तिको पोषण नहीं मिलता है; और शारीरिक सौन्दर्य्यके विषयमें ईसाई धर्ममें बहुत हलके विचार प्रचलित थे। यही कारण है कि ईसाई जगतमें ग्रीस देशके समान चित्रकलाकी उन्नति नहीं हो सकी।

परन्तु साहित्यकी उन्नति होने पर कलाशास्त्र परसे धर्मका अधिकार उठ गया और अब चित्रकार लोग उसमें सब तरहसे सौन्दर्य्य लानेकी चेष्टा करने लगे; अर्थात् अब उनका काम शुद्ध सांसारिक समझा जाने लगा और उसकी परीक्षा भी उसी दृष्टिसे होने लगी। अब शिक्षित लोग चित्रोंमें धर्मभावोंका स्वरूप देखनेकी आशा नहीं रखते थे, यही कारण है कि इस समय टिशीयन और माइकेल ऐंजेलो जैसे महान् चित्रकार उत्पन्न हुए थे।

इसके पश्चात् वेनिस शहरमें कामोद्दीपक सूक्ष्म रंगमूर्त्ति निर्माण करनेवाली चित्रशाला स्थापित होने, और प्राचीन समयके मूर्त्तिपूजकोंके शिल्पकार्य्यके नमूने मिलनेसे कलाशास्त्र पूर्णताको प्राप्त हुआ।

(२) बुद्धिस्वातंत्र्यका पोषक दूसरा कारण भौतिकशास्त्रकी प्रगति है। इसके द्वारा लोगोंके सृष्टितंत्र सम्बन्धी विचार बिलकुल बदल गये। पहले तो धर्माधिकारियोंने सच्चे वैज्ञा-

निक विचारोंसे विरुद्ध प्रकारके विचार फैलानेका प्रयत्न किया और गेलेलियो तथा रोजर बेकन जैसे सत्यान्वेषी लोगोंको जेलमें डलवाया । परंतु अंतमें विद्याका प्रकाश बढ़ने पर शीघ्र ही भौतिकशास्त्रकी उन्नति हुई और उसके प्रभावसे मनुष्योंके विचारोंमें बहुत बड़े बड़े महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए । इनमें पहला परिवर्त्तन सृष्टिमें मनुष्योंका स्थान सम्बन्धी था । जंगली लोग पूर्ण विश्वासके साथ मानते थे कि विश्वमें यह हमारी दुनियाँ ही श्रेष्ठ है, उसके आसपास सूर्य-चन्द्र दौड़ते हैं, तारागण अपने आकाशके शृङ्गारके लिए ईश्वरके बनाये हुए अगणित प्रदीप हैं; ग्रहण, धूमकेतु, उल्कापात और आकाशी तूफान—ये सब मनुष्योंके उद्देश्यसे ही हुआ करते हैं और इसी लिए उनमें ईश्वरीय क्रोधकी झलक दिखाई पड़ती है । खगोलशास्त्रके साथ ज्योतिषशास्त्रकी मिलावट हो जानेके कारण वह उल्टा उस वहमका पोषक बन गया । प्रत्येक मनुष्य यही समझता था कि हमारा जीवन अन्य ग्रहों-की गतिके साथ आबद्ध है । यह कैसी अहंमान्यता थी ? परंतु अंतमें खगोल-शास्त्रकी जीत हुई और उसने सिद्ध करके दिखा दिया कि अनन्त विश्वमें हमारी दुनियाँके आकार और स्थितिकी कुछ गणना नहीं है ।

यह दुनियाँ आदमसे ही शुरू हुई है—यह खयाल भूस्तर-विद्याकी शोधोंसे दूर हो गया । इसी तरह दुनियाँके समस्त पाप, ताप और मृत्यु आदम-कृत ईश्वरीय आज्ञा भंगका परिणाम है, यह खयाल भी निकल गया । अब प्रत्येक शिक्षित पुरुष समझने लगा कि मृत्यु एक प्राकृतिक नियम है, जो आदमके अपराधसे नहीं किन्तु अनादि-कालसे चला आ रहा है । दैवी अंतरायोंकी जगह अब प्राकृतिक नियमोंके ज्ञानने

छीन ली। कहनेका अभिप्राय यह है कि एक ही समय अनेक पृथक् पृथक् शास्त्रोंके अध्ययनसे प्रकृतिके भिन्न भिन्न अंग वहमके जालसे मुक्त हो गये।

(३) बुद्धि-विकाशसे नीतिका विकाश किस तरह हुआ, इस प्रकरण खण्डमें केवल यही दरशाया गया है। साँढ़, रीछ और मेढ़ोंकी लड़ाई, तथा इसी प्रकारके और भी अनेक क्रूर खेल एक समय यूरोपमें बहुत लोकप्रिय थे ; बड़े बड़े प्रसिद्ध विद्वान् भी इन खेलों द्वारा जी बहलाते और आनन्द मनाया करते थे। अपराधियोंको दी जानेवाली सजाओं, युद्धमें पकड़े हुए शत्रुओंके साथ किये जानेवाले व्यवहार और गुलाम-गिरीके वृतान्तों परसे जाना जाता है कि नीतिके सिद्धान्तोंमें कितने बड़े बड़े महत्वपूर्ण सुधार हुए हैं। ईसाई जगतमें अब सदाचरणकी रक्षाके लिए नारकीय यातनाओं का भय नहीं दिखाया जाता है, क्योंकि उन्हें अब दया और न्याय अन्याय-का भान हो गया है।

प्रस्तुत पुस्तक यहीं समाप्त होती है, आगेके प्रकरण उसके द्वितीय भागमें सम्मिलित होंगे। मूल अंग्रेजी पुस्तक भी दो भागोंमें विभक्त है, परंतु अंतर केवल इतना ही है कि उसमें चौथे प्रकरणका पूर्वार्ध प्रथम भागमें और उत्तरार्ध द्वितीय भागमें रक्खा गया है, और हमने दोनों भागोंकी समानताके खयालसे चौथे प्रकरणका पूर्वार्ध इस प्रथम भागमें सम्मिलित नहीं किया है।

चौथे प्रकरणके पूर्वार्धमें 'ईश्वर-प्रेम और मानव-प्रेम' से भरे हुए ईसाके दयालु धर्ममें जुल्मको कैसे अवकाश मिला, इसका कारण खोज निकालनेका प्रयत्न किया गया है। लोगों को जीतेजी जला देनेवाले, भयंकर यातनाओंकी नई नई रीतें खोजनेवाले, बड़े बड़े विग्रह और धर्मयुद्धोंको खड़ा करनेवाले

मुख्यतः धर्मगुरु ही थे। जो पादरी अपना जीवन निरंतर भक्तिमें व्यतीत किया करते थे और जिनकी चालचलनके विषयमें उनके शत्रु भी निष्कलंकताका सर्टीफिकेट देते थे, उन पादरियोंके हाथसे ऐसे भीषणकार्य कैसे हुए? इसे समझानेके लिए इस प्रकरणमें बतलाया गया है कि जब अमुक प्रकारका सिद्धान्त उनके मनमें रम जाता है। तब स्वधर्म्मबाह्य लोगोंके विषयमें उनके हृदयमें निस्नेहिता उत्पन्न हो जाती है। यह सिद्धान्त ख्रिस्ति-मोक्षके विषयमें था, अर्थात् ख्रिस्ति संस्कार पाये बिना प्रत्येक मनुष्यको निरन्तर प्रज्वलित रहनेवाली नरकाग्नि में जलना पड़ता है, इस लिए उन्हें इस अवधिरहित भीषण यातना से बचानेके लिए ईसाई बनानेमें जितनी यातनायें दी जाती है उनसब को उनके पारलौकिक कल्याणके लिए समझना चाहिए।

इस सिद्धान्तके तीन पृथक परिणाम हुए ;--(१) धर्म्माचार्य्यगण बिना किसी संकोचके स्वधर्मकी बृद्धिके लिए 'पवित्र-कपट' करना सीख गये, (२) एक प्रकारके मृषावादकी-जिसमें विरुद्ध पक्षकी सत्य बातें दबा दी जाती थी-बृद्धि हुई, और (३) सत्यान्वेषणकी जिज्ञासा विलुप्त हो गई।

इस अनिष्टकारी सिद्धान्तको निर्मूल करनेवाले प्रसिद्ध तत्त्वशोधक बेकन, डेकार्ड स और लाक थे। इन्होंने प्राकृतिक शास्त्र और आध्यात्मिक-दर्शनमें समदृष्टि और स्वतंत्र खोजके विषयमें जो प्रेम उत्पन्न किया था, वह धर्मसाहित्यमें भी शीघ्र ही प्रवेश कर गया। इसके फलसे धर्मभ्रान्ति स्वीकार करनेवाले आचार्य्य पैदा होने लगे और नास्तिकोंको जीवित जला देनेका कानून रद्द कर दिया गया।

चौथे प्रकरणके उत्तरार्थमें ऊपरके सिद्धान्तसे उत्पन्न होनेवाले धर्मसम्बन्धी जोर-जुल्मोंका वर्णन किया गया है। पोपकृत

आल्बी जेन्सिसकी कतल, दूसरी पोपानुमोदित बार्थोलो-म्यूसकी कतल, सीरियाको रुधिरक्षेत्र बना देनेवाले धर्म-युद्ध, और यूरोपके अत्यन्त मनोरम प्रदेशोंको ऊजड़ स्मशान-तुल्य बना देनेवाले धर्मविग्रह प्रभृति सभी धर्मके ही परिमाण थे। कहनेको अभिप्राय यह है कि रोमनकेथोलिक धर्मने निर्दोष मनुष्योंका जितना रक्त बहाया है उतना संसारमें आज तक किसी धर्मने नहीं बहाया।

हम यह नहीं कहते हैं कि प्रोटेस्टेण्ट पन्थवाले जुल्म नहीं करते थे, किन्तु प्रोस्टेटेण्ट देशोंमें पादरियोंका ज़ोर कम होने-के कारण वहाँ होनेवाले अत्यचारोंका स्वरूप भी कम था; परंतु सिद्धान्त तो दोनोंके एकहीसे थे।

प्रथम चार्ल्सके समय होनेवाले भयंकर बलवे तक इंग्लेण्ड-में धर्मस्वातंत्र्यके लिए कोई प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती थी। इसके पश्चात् हेरिंग्टन, मिल्टन और जेरेमी टेलर ये तीनों धर्मशान्ति स्थापित करनेवाले हुए। फ्रान्समें १६ वीं सदीके अंतमें मोन्टेन, डेकार्डस और बेलने जन्म ग्रहण किया। इन सब विद्वानोंके प्रयत्नसे यूरोपीय लोगोंमें शुद्ध सत्यप्रेमकी प्रवृत्ति जाग्रत हुई।

पाँचवें प्रकरणमें बुद्धिस्वातंत्र्यके कारण राजकीय सिद्धान्त पर पड़नेवाले प्रभावोंका वर्णन किया गया है। यूरोपमें ईसाई-धर्म प्रचलित होनेके पहले अनेक शताब्दियों तक स्वदेशाभि-मान एक मुख्य नैतिक प्रोत्साहन समझा जाता था, परन्तु ईसाई धर्मके प्रचार होनेपर सब कामोंका प्रवाह धर्मद्वारा होने लगा—अन्य सब लाभ धर्मलाभमें डूब गये और राजनीति भी उसकी दासी बन गई।

अंतमें जब धर्मभावोंसे बिलकुल पृथक् रहनेवाले कारी-गरोंकी वृद्धि हुई, तथा निर्भय और बे-रोक-टोक खोज-शोधकी

प्रवृत्ति बढ़ने लगी, और जब नीतिभ्रष्ट मठोंसे धर्मका अंकुश लोगोंके मन परसे उठने लगा, तब नृपतिगण भी इस अंकुश-से मुक्त हो गये और स्वदेशभक्त लोगोंने विदेशी सत्ताके सम्मुख बलवा खड़ा कर दिया। इसके सिवा धर्मनिरीक्षक-सभाके अत्याचारोंसे पीड़ित होकर इटली और स्पेनमें भी जगह जगह बलवेकी धूम मच गई और सब लोग पोपकी सत्ताकी जगह मुल्की शासनको पसंद करने लगे। ये सब परिवर्तन बुद्धि-स्वातंत्र्यकी वृद्धिके परिणाम थे।

परन्तु इसके पहले लोगोंके हृदयमें स्वतंत्रताके लिए क्षेत्र तैयार करने वाले कुछ अन्य कारण थे, जिनमें से मध्यमवर्गके धनकी वृद्धि को पहला कारण कह सकते हैं। कागज तथा छापाखानेकी कलाके शोधसे होनेवाली ज्ञानाभिवृद्धि दूसरा कारण हो सकती है। तीसरा कारण बंदूककी बारूदकी खोज है; कारण कि इसके पहले घोड़ेका सवार पैदल आदमीसे अधिक बलवान था और घोड़ा रखनेका खर्च केवल अमीर लोग ही उठा सकते थे। परन्तु आग्नेय अस्त्रोंके शोधसे अमीरोंका बल घटने लगा और अंतमें बेयोनेटकी खोजसे युद्ध-कला में बहुत बड़े बड़े परिवर्तन हुए।

प्रजाओंकी राजकीय स्वतंत्रताको पुष्ट करने वाला अर्थ-शास्त्रका विकाश है। इसके द्वारा लोगोंको दृढ़ निश्चय हो गया कि व्यापार करनेवाली जातियोंसे मेलजोल रखनेसे बड़ा लाभ है, तथा व्यापारके विषयमें राज्यकी ओरसे हस्तक्षेप रहने से प्रजाको बहुत नुकसान पहुँचता है।

इस प्रकार राज्यमें लोकसत्ताका बल बढ़नेसे प्रजाओंमें परस्पर मेल जोल बढ़ गया और देशके भीतर मजदूर तथा गरीब लोगोंके लाभके लिए भी कई कानून बनाये गये। इस

तरह उच्चवर्ग और निम्नवर्णका अंतर घटता गया और अंतमें सबको राजकीय समानता प्राप्त हो गई।

छट्ठे प्रकरणमें ग्रन्थकारने बतलाया है कि परिश्रमके इतिहासका महत्व, ज्ञानके इतिहाससे दूसरे दरजेका है। जिस प्रमाणमें उद्योगकी कीमत जाँची जाती है उसी प्रमाणमें देशकी नैतिक समृद्धि होती है।

रोममें दासत्वकी प्रथा होनेके कारण शारीरिक श्रमके विषयमें उच्चवर्गके मनमें एक प्रकारका तिरस्कार उत्पन्न हो गया था। ऐसी प्रजामें मध्यमवर्ग नहीं रहता है और उसकी लड़ायकवृत्ति श्रेष्ठ हो जाती है। ऐसी प्रजाका जीवन कदाचित तेजस्वी हो, परन्तु यह अल्प होता है। समस्त उच्चवर्गके लोगोंमें विलासिता और शौकीनी आ जाती है और अनाथ गुलामोंके दुखोंका पार नहीं रहता है। इस वर्गके उद्धारका काम सबसे पहिले ईसाई धर्म्मने उठाया। फिर धर्मगुरुओंके स्वतः खेती करने तथा अन्य प्रकारके शारीरिक श्रमके कार्यों में भाग लेनेसे शारीरिक परिश्रमके विषयका पहला तिरस्कार कम होता गया और धर्मयुद्धोंके पश्चात् कारीगरोंकी उन्नतिका द्वार खुल गया।

परन्तु केवल ईसाईधर्म्मसे औद्योगिकउन्नति होना अशक्य थी; क्योंकि उस धर्म्मका लक्ष्य गरीबोंकी दशाकी ओर झुका हुआ था। इस लिए जब यूरोपके बड़े बड़े शहरोंको राजकीय कारणोंसे स्वतन्त्रता मिल गई तभीसे उद्योग-धंधोंको पूर्ण उत्तेजन मिला। फिर गांव गांवमें व्यापारी-मंडल स्थापित हुए, जिससे व्यापारकी सत्ता बहुत बढ़ गई और उसने धर्म्म सत्ताको तोड़कर अपनी असीम समृद्धि कर ली।

धर्म और व्यापारके बीच झगड़ा बढ़नेका पहला कारण व्याज खाना उचित है या नहीं, इस प्रश्नसे उत्पन्न हुआ था।

व्याज खानेवाले मुख्यतः यहूदी थे, इस कारण उन बेचारोंको अनेक शताब्ददियों तक जो जो आपत्तियाँ सहन करना पड़ीं उनका वर्णन इस ग्रन्थमें विस्तार पूर्वक लिखा गया है। इन लोगोंने ऐसे कष्टोंको सहन करते हुए यूरोपीय व्यापारको जीवित रक्खा और अज्ञानग्रस्त यूरोपमें ज्ञानका प्रसार किया।

इस तरह मनुष्य जातिकी आवश्यकताओंके बढ़नेसे कारीगरोंके उत्साहमें वृद्धि होने लगी और दिन पर दिन नई नई कलाओं और आविष्कारोंका प्रादुर्भाव होने लगा। द्रव्यके बढ़नेसे प्रजाका शौक कैसे बढ़ जाता है और उससे अंतमें बुद्धि पर कैसा प्रभाव पढ़ता है, यह बात नाटकोंका इतिहास देखनेसे जानी जाती है। वह बतलाता है कि द्रव्यके बढ़नेके साथ-ही-साथ मनुष्यका मन प्राचीन, ग्राम्य, साधारण, फलहीन और जङ्गली-रसवृत्तिसे विरक्त होकर अर्वाचीन सुधारोंके वैभवयुक्त और कलापूर्ण-रसवृत्तिमें प्रवेश करता है। १७ और १८वीं सदीमें धर्माचार्य्यगण नाटकके लिखाड़ियों पर जो तिरस्कार प्रदर्शित करते थे वह १९ वीं शताब्दीमें बिलकुल अदृश्य हो गया।

औद्योगिक-साम्राज्य और धार्मिक-साम्राज्य ये दोनों एक दूसरेके कट्टर विरोधी हैं; यह बात स्पेनकी १६वीं सदीके इतिहास परसे साफ जानी जाती है—जिस देशमें धार्मिक-सत्ता कम होती है उस देशके उद्योग-धंधे अवश्य ही वृद्धि पाते हैं।

अब कच्चे आर्थिकसिद्धान्त सर्वत्र फैल जानेसे लोग समझने लगे हैं कि सोना, चाँदी सच्चा द्रव्य नहीं है, किन्तु वह लेन देनका केवल एक साधन है। इस तरह उद्योग धंधों-

के मार्गकी बहुतसी बाधायें दूर हो गई हैं। ग्रन्थकारने बतलाया है कि विश्वके साथ सम्बन्ध जोड़नेवाला सच्चा साधन धर्म नहीं, किन्तु उद्योग है। अर्थशास्त्र भी बतलाता है कि प्रत्येक जातिका लाभ दूसरी जातियोंके समृद्ध होनेमें है।

अंतमें ग्रन्थकार भौतिक सुधारोंकी एकदेशीय वृद्धिसे होनेवाले कुछ अनिष्ट फलोंकी ओर अपना खेद प्रकाशित करके ग्रन्थको समाप्त करता है।

सन् १८६५ ई० के जनवरी मासमें इंगलेण्डके प्रसिद्ध इतिहास लेखक विलियम हार्टपोल लेकी कृत "यूरोपीय बुद्धिस्वातंत्र्यका इतिहास" प्रकाशित हुआ था। तबसे आज तक यह ग्रन्थ १८ बार छप चुका है और यूरोपकी प्रायः सभी भाषाओंमें उसका अनुवाद हो गया है। इसके पश्चात् आज लगभग ५६ वर्षोंमें इसका यह हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होनेका अवसर आया है। इन ५६ वर्षोंमें यूरोपीय सुधारोंमें जो वृद्धि हुई है वह किसीसे छिपी नहीं है।

अभी कुछ वर्ष पहले मराठी और गुजराती भाषाओंमें भी इसका अनुवाद निकल चुका है। इस पुस्तकके लिखनेमें हमने श्रीयुत दुर्गाशंकर प्राणजीवन रावल कृत गुजराती अनुवादका पूर्ण अनुकरण किया है,—यह उपोद्घात भी उन्हींके अनुकरण पर लिखा गया है, अतएव हम उनका हृदयसे आभार मानते हैं। इसके सिवा मूल अंगरेजी पुस्तकसे इसका मिलान करते समय हमें कुछ दिन तक श्रीयुत बाबू दशरथलाल श्रीवास्तवने सहायता दी थी, इसलिए हम उनको भी धन्यवाद देना नहीं भूल सकते हैं।

यह अनुवाद मूलग्रन्थसे कुछ संक्षेपरूपमें लिखा गया है, तथापि उसकी कोई कामकी बात छूटने नहीं पाई है। उसकी अधिकांश टिप्पणियाँ छोड़ दी गई हैं और जिनकी

आवश्यकता समझी गई है वे पुस्तकमें शामिल कर ली गई हैं। यह अनुवाद जल्दीमें लिखा गया और जल्दीमें छपाया गया है, इससे इसमें भाषा, भाव और प्रूफ संशोधन सम्बन्धी अनेक गलतियोंका रह जाना संभव है, आशा है कि उदार पाठक इसके लिए मुझे क्षमा प्रदान करेंगे।

(देवरी-सागर)
माघ कृष्ण ११ सं० ७६ वि.

शिवसहाय चतुर्वेदी।
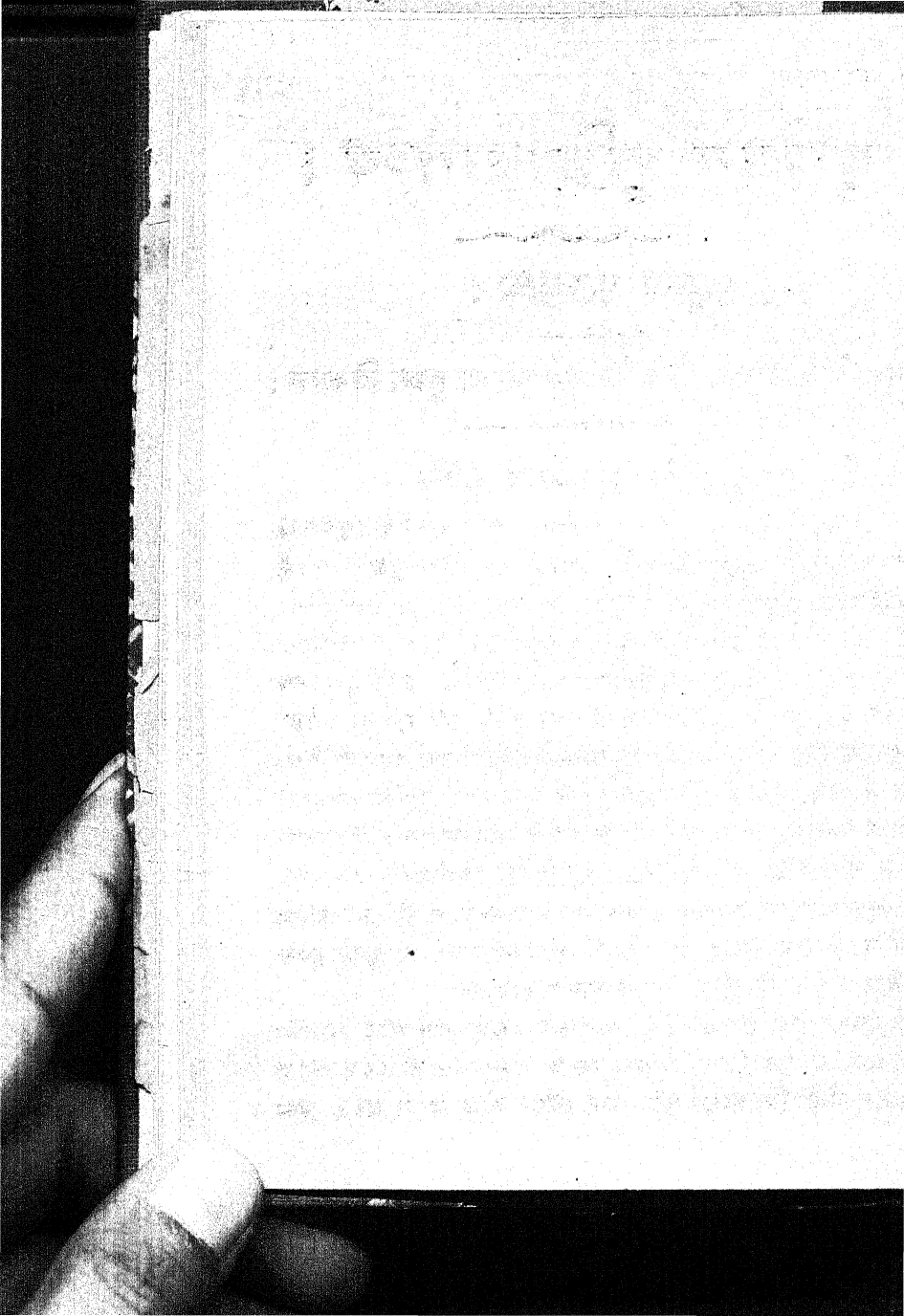
यूरोपमें बुद्धिस्वातंत्र्य।

पहला अध्याय।

अलौकिक चमत्कारोंके विषयमें घटता हुआ विश्वास।

जादू और डाकिनी वृत्ति।

यूरोप में गत ३०० वर्षों में दैवी चमत्कारों के विषय में लोकमत में जो भारी फेरफार—महान् परिवर्त्तन हुआ, उससे अधिक कौतूहलमय और आश्चर्य्यजनक दूसरा कोई परिवर्त्तन उस समय के इतिहास में दृष्टिगोचर नहीं होता। वर्तमान समय के प्रायः समस्त सुशिक्षित लोग अपने रहते हुए जब किसी अद्‌भुत घटना की हकीकत सुनते हैं, तब सर्वथा संदेह-युक्त चित्त से उसे नितान्त अश्रद्धेय और हास्यास्पद गिन-कर उसके प्रमाणों की जांच करना भी निरर्थक समझते हैं। वे किसी बात या घटना का स्वतः संतोषदायक समाधान करने में भले ही असमर्थ हों, पर किसी दैवीशक्ति को उस घटना का कारण स्वरूप मानना उनके खयाल में ही नहीं आता; क्योंकि वे समझते हैं कि ऐसी कल्पना करने से युक्तिपूर्वक विवाद करने की सीमा का उल्लंघन होता है।

इतना होने पर भी कुछ शताब्दी पहले जब कोई भ्रान्ति या बहम उत्पन्न होता था तब उसके समाधान के लिए लोगों का मन ऐसे विश्वासों की ओर शीघ्र दौड़ जाता था। उस

समय सब मनुष्य चमत्कारी वृत्तान्तों को एक साधारण और संभव बात समझ कर उन पर पूर्ण विश्वास किया करते थे। शायद ही ऐसा कोई ग्राम या देवालय निकले, जहाँ किसी समय कोई दैवीचमत्कार प्रकट न हुआ हो। लोगों को विश्वास था कि प्रकाश और अंधकार—दैवी और आसुरी शक्तियाँ बिजय प्राप्ति के लिए निरंतर खुली तौर पर झगड़ा किया करती हैं। औलियों तथा सिद्धों के चमत्कार, अमानुषी सत्ता से प्राप्त होनेवाली निरोगता, आश्चर्य्यजनक निर्णय, स्वप्न के दृश्य, भविष्य कथन और हरएक प्रकार के अद्भुत कामों से दैवीशक्ति की, तथा तांत्रिक प्रयोगों, मंत्रविद्या और उससे सम्बन्ध रखनेवाले सब प्रकार के घोर कृत्यों से आसुरी शक्ति की प्रत्यक्षता सिद्ध होती थी।

इस प्रकरण का उद्देश्य पिशाचविद्या, मंत्रविद्या और इन्द्रजाल प्रभृति अनेक नामों से पुकारे जानेवाले अगणित अद्भुत चमत्कारों की परीक्षा करना है। मैं समझता हूँ कि भिन्न भिन्न विचारों के इतिहास में इस विषय को योग्य स्थान दिया ही नहीं गया; कारण लोग समझते हैं कि यह प्राचीन बातों की खोज करनेवाले—पुरातत्त्ववेत्ताओं का ही विषय है और इसी लिए मानो उसका सम्बन्ध केवल भूतकाल से ही है, —वर्त्तमान वाद-युद्धों से उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है, तो भी १५०० से अधिक वर्षों तक सभी लोग यह मानते थे कि बाइबिल में इस अपराध का प्रतिपादन बहुत स्पष्ट रीति से किया गया है; और ऐसे नानाप्रकार के अनेक प्रमाणों से-जिन-से शंकाको तिलमात्र भी स्थान नहीं रहता-इसका अविच्छिन्न प्रचार सिद्ध होता है। धर्म्माचार्य्य अपने दृढ़ प्रमाणभूत आप्त-वाक्यों से उनका तिरस्कार करते और उनको दंड देने के लिए प्रत्येक देश के कानूनी पंडित कानून बनाते थे। जिन

न्यायाधीशों का जीवन सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रमाणों के खोजने में व्यतीत होता था ऐसे निपुण विचारक अगणित प्रसंगों पर इस विषय की खोज करके अपराधियों को सजा देते थे। हजारों अपराधी अत्यन्त क्रूर दंड से तड़फ तड़फ कर बहुत देर में प्राण छोड़ते थे, परन्तु इनसे किसी को ज़रा भी सहानुभूति नहीं रहती थी। प्रायः अज्ञान और दरिद्रता में डूबे रहने के कारण सम्प्रदाय अथवा धन कुछ भी उनका सहायक नहीं हो सकता था। जो प्रजा स्थिति, स्वार्थ और आचरण में बिलकुल भिन्न पड़ गई थीं वह भी इस अनन्य प्रश्न के सम्बन्ध में उनसे एक मत थी। जर्मनी के प्रायः सब प्रदेशों में और विशेष करके जिनमें धर्म्मगुरुओं की सत्ता प्रबल थी, ज़ुल्म की बाढ़ बहुत भयंकर हुई थी। कहा जाता है कि ट्रिन्ज में ७००० हतभाग्य मनुष्य जलाकर भस्म कर दिये गये थे। बम्बग में एक पादरी ने ६०० मनुष्यों को, तथा बुट्ज़बग के एक धर्म्माधिकारी ने केवल एक वर्ष के भीतर ९०० लोगों को जलाकर भस्म के रूप में परिणत कर दिया था! फ्रान्स देश की अनेक प्रतिनिधि सभाओं ने इस अपराध के दमन के लिए कानून बनाये थे और उसके परिणाम में वहाँ रक्त की नदियाँ बही थीं। धर्म्मविचारक-सभा के केन्द्रस्थान टूलूज़ में भूत-प्रयोग करने के कारण एक सपाटे में ४०० मनुष्यों की जानें ली गई, और डुए में एक वर्ष के भीतर ५० मनुष्य यमसदन को भेज दिये गये। रेमे नामक नेन्सीका एक न्यायाधीश गर्व से फूलकर कहता था कि मैंने १६ वर्ष के भीतर ८००० डाकिनों के प्राण लिये हैं। एक प्राचीन लेखक का मत है कि पेरिस में कुछ ही महीनों के भीतर जो हत्यायें हुई थीं वे प्रायः अगणित थीं। जो लोग स्पेन में भागकर गये उनको वहाँ की धर्म्म-विचारक सभा ने पकड़ कर जलवा डाला। यह ज़ुल्म इस

देश के छोटे छोटे गांवों तक में जा पहुँचा था और वह इतना लोकरूढ़ हो गया था कि अभी सन् १७८० में भी एक तांत्रिक प्रयोग करनेवाला जीते जी जला दिया गया था। पाखंड मत के उच्छेद करने में टोर्कोमेडा ने जैसा उत्साह दिखलाया था पिशाच विद्या को निर्मूल करने में भी उसने वैसी ही दृढ़ता से काम लिया। उसने इस अपराध की भीषणता पर एक ग्रन्थ लिखा था। समस्त सोलहवीं सदी और सत्रहवीं सदी के अधिकांश भाग में फ्लांडर्स में तांत्रिकों पर भयंकर अत्याचार होता था, और अपराधियों को खोज निकालने में नानाप्रकार की दारुण यातनाएँ उपयोग में लाई जाती थीं। इटली के कोमो प्रान्त में एक वर्ष के भीतर १००० मनुष्यों का वध हुआ, और अन्यप्रान्तों में धर्माधिकारियों के त्रास से अंत में बलवा हुआ। स्विटज़रलैंड और सेवाय की देहात में भी यही हुआ। उस समय जिनोवा में धर्म्माध्यक्ष का राज्य था। कहा जाता है कि उसने तीन महीने में ५०० डाकिनों को जलती हुई चिता में डालकर भस्म किया था। इस प्रकार कोन्सटेन्स अर्थात् रेवन्सबर्ग में ४८ और सेवाय के छोटे ग्राम बेलरी में ८० वध हुए। १६७० ई० में स्वीडन में ७० मनुष्य अपराधी ठहराये गये, जिनमें से अधिकांश जला दिये गये। यूरोप के प्रायः प्रत्येक देश में कई शताब्दियों तक जो दारुण जुल्म पूरे जोश के साथ फैला रहा उसका यह एक स्वल्प दिग्दर्शनमात्र है। उक्त अपराधों की सत्यता और उसके अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए रोम सम्प्रदाय अहर्निशि अपनी पूर्णसत्ताका उपयोग करके सिंहघोष किया करता था। उसने उसके दमन के लिए कोई प्रयत्न बाकी नहीं छोड़ा; वह अपने प्रत्येक साधन द्वारा लोगों को यह ज़ाहिर करता था कि डाकिनों को बचाना या उन्हें किसी प्रकार

का प्रश्रय देना प्रभु का दारुण अपराध करना है। इस प्रकार हज़ारों निरपराध लोगों के प्राण-नाश का उत्तरदायित्व इन्हीं लोगों के सिर पर है—उनकी हत्या का सारा दोष इन्हीं के पल्ले आता है। सन् १४८४ ई० में आठवें इनोसेण्ट नामक एक निष्ठुर-हृदय पोपने आज्ञापत्र निकाल कर इस हत्याकाण्ड को अपूर्व उत्तेजन दिया। उसने इस विषय पर एक प्रमाण-ग्रंथ लिखने वाले तथा प्रति वर्ष सैकड़ों मनुष्यों के प्राण लेने वाले स्पेञ्जर नामक व्यक्ति को धर्माधिकारी के पद पर नियुक्त किया। इसके बाद छठे अलेकज़ेन्डर ने पोप के सिंहासन पर बैठ कर पूर्वोक्त आज्ञापत्र के समर्थन में एक और नई आज्ञा प्रचारित की, और सन् १५०४ ई० में द्वितीय जूलियस, सन् १५२१ में दसवें लियो, तथा १५२३ में छठे एड्रियान ने पूर्वोक्त आज्ञापत्रों का पालन अधिक दृढ़ता के साथ करने का आदेश जारी किया। अनेक प्रान्तिक सभायें तन्त्र-विद्या का अस्तित्व बतला कर उसमें भाग लेने वालों को शाप देकर बहिष्कृत करती थीं। धर्म्म-संस्थाओं ने भी जादूगरों और डाकिनों को बहिष्कृत करके अपने रचित ग्रन्थों में भूत भगाने के मन्त्र सम्मिलित किये थे। कहने का मतलब यह है कि डाकिनों के जला देने के लिए जो जो ग्रन्थ लिखे जाते थे, धर्म-मन्दिरों और न्यायालयों में उनको जो दंड दिये जाते थे, उनके दमन के लिए जिन जिन उपायों का अवलम्बन किया जाता था और डाइनों के सम्बन्ध में जो शिक्षा दी जाती थी, उन सब में धर्माधिकारियों का मुख्य हाथ रहता था। एक ओर तो धर्म-विचारक सभाओं या धर्म गुरुओं के न्यायालयों से हजारों मनुष्यों को मृत्यु दण्ड मिलता था और दूसरी ओर अगणित धर्माचार्य अपराधियों की संख्या बढ़ाने में अपनी सारी शक्ति व्यय किया करते थे।

रोम सम्प्रदाय वाले तथा लूथर के अनुयायी, दोनों परस्पर कट्टर विरोधी होने पर भी इस विषय में एक मत थे। भूत प्रेतादि के कृत्यों के विषय में लूथर ने जो अतिशय श्रद्धा प्रकट की थी, वह उस जमाने का विचार करने से कुछ नवीन और विचित्र मालूम होती है। परन्तु डाइनों से वह बहुत ही चिढ़ा हुआ था, वह स्पष्ट रीति से कहता था कि मुझे इन पर तनिक भी दया नहीं है, मैं इन सब को जलाकर भस्म कर देना चाहता हूँ। इङ्गलैण्ड में धर्मसुधार की हवा बहते ही वहाँ भी यह वहम खूब तेजी के साथ फैल गया और अन्त में धीरे धीरे कम होता गया। इसका कारण (पादरियों के मतानुसार) लोगों की दिन पर दिन घटती हुई धर्म्म-सम्बन्धी आस्था के सिवा और कुछ नहीं था। अन्य बड़े बड़े देशों की अपेक्षा स्काटलेण्ड में सुधारक धर्माचार्य्य अधिक प्रबल होने के कारण डाकिनों की खोज का काम उन्हीं के हाथ में था और इसी लिए अन्य देशों की अपेक्षा यहाँ पर होने वाले अत्याचार भी बहुत भीषण और अमानुषिक थे। इस अत्याचार का बड़ा पक्षपाती इङ्गलैण्ड की धर्मशाखा का पादरी ग्लेनविल, तथा सब से अधिक प्रभावशाली सुधारक-शाखा (Puritanism) का अग्रगण्य पुरुष बेक्सटर था। नई दुनियाँ (अमेरिका) में इस शाखा की जड़ जमते ही वहाँ भी यह वहम जा पहुँचा और उसके परिणाम से मसेचुसेट्स में जो क्रूर सजाएँ दी गईं, वे अमेरिका के इतिहास में काले-कर्म्मों में गिनी जाती हैं।

यदि कोई पूछे कि एक समय जो बातें दुनियाँमें सर्वमान्य और सुदृढ़ समझी जाती थीं—जैसे, एक बुढ़िया जो झाड़ू पर सवारी करती थी, अथवा जिसके लिए यह सिद्ध हो चुका था कि वह भेड़िये का रूप धारण करके पड़ौस के मुर्गे

बकरी आदि पालतू जानवर खा जाती है—वे अब बिलकुल अविश्वासनीय—नितान्त अश्रद्धेय क्यों मानी जाती हैं, तो अधिकांश मनुष्य इसका निर्णयात्मक उत्तर नहीं दे सकेंगे। इन बातों के न मानने का कारण यह नहीं है कि हम कभी इनके प्रमाण खोजने बैठे हों और वे हमें लचर या असमर्थ सिद्ध हुए हों, क्योंकि किसी विषय पर पहले से अनास्था होने पर भी कभी कभी हम उसकी गहरी खोज करने के लिए उतर पड़ते हैं। इसका असली कारण यह है कि ऐसी बातें सुनते ही वे हमको इतनी असंगत और हास्यास्पद जान पड़ती है कि उनपर गम्भीर विचार करने की प्रवृत्ति ही नहीं होती। ऐसा होने पर भी एक समय ऐसा था कि जब इन सब बातों में हँसने योग्य या असम्भवित कुछ भी नहीं जान पड़ता था और ऊपर बतलाये हुए कुछ कारणों से सहस्रों मनुष्यों के प्राण लिये जाते थे।

लोकमत में इतने बड़े फेर फार—महान् महान् परिवर्त्तन होने का कारण नीचे लिखे हुए दो कारणों में से एक अवश्य होना चाहिए। प्रथमतः किसी विवादग्रस्त विषय का निर्णय करने के लिए कभी कोई प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ हो और उसमें अकाट्य युक्तियों तथा सबल प्रमाणों द्वारा सब पक्षों को सन्तोष प्रदान करने वाला सर्वमान्य निर्णय हो चुका हो, जिससे उस विषय की यथार्थता इतने स्पष्टरूप से सिद्ध हो चुकी हो कि उसके आधारभूत प्रमाणों को खोजे बिना ही समस्त शिष्टपुरुष उसे बिना किसी संकोच के मानते हों। उदाहरणार्थ—साधारण शिक्षा पाए हुए लोगों की मंडली में यदि कोई व्यक्ति पृथ्वी की गति या रुधिराभिसरण के सिद्धान्त को अस्वीकार करे तो उसकी बात सब को हास्यास्पद प्रतीत होगा। यद्यपि उन हँसने वालों में से अधिकांश पुरुष पहले

सिद्धान्त के प्रतिपादन करने या दूसरे के लिए यथेष्ट कारण बतलाने में भले ही असमर्थ हों, तथापि उनको विश्वास है कि अमुक अमुक ऐतिहासिक प्रसंगों पर उस प्रश्न पर भारी वाद-विवाद हो चुका है, और अमुक अमुक लेखकों ने सबल प्रमाणों के द्वारा उसकी इतनी सत्यता सिद्ध कर दी है कि समस्त शिक्षित समाज उसे एक निर्णीत सिद्धान्त के तौर पर मानती है।

'समय का प्रवाह' या 'जमाने का रुख' दूसरा कारण हो सकता है। किसी गत शताब्दी के साहित्य में व्याप्त रहने वाले सामान्य विचार अवसर पाकर लोकमत में भारी फेर-फार कर सकते हैं। इस परिवर्त्तन के फल से लोगों के विचारों का लक्ष्य तथा ढंग एक नया रूप धारण करता है और इसी कारण अमुक बात की शक्याशक्यता के माप का प्रमाण ही बदल जाता है। उसमें से नवीन आकर्षण और पराकर्षण जन्म पाता है अर्थात् लोग कई नई नई बातें स्वीकार करने और कई प्राचीन बातें छोड़ने लगते हैं। अन्त में बहुत प्रबल दलीलों से जितना प्रभाव पड़ता है उतना ही प्रभाव उक्त प्रकार के मानसिक झुकाव से भी पड़ता है और इसी कारण लोग किसी प्राचीन मत को सर्वथा त्याग देते हैं।

जो लोग इस प्रश्न की जाँच निष्पक्षभाव से करेंगे उन्हें ज्ञात होगा कि भूत प्रेतादि में अश्रद्धा होने का मूल कारण यह दूसरे प्रकार का ही असर है। यह अविश्वास—यह अश्रद्धा किसी नवीन शोध या तर्क का परिणाम नहीं, किन्तु यूरोप के मैदान में फैली हुई नवीन विचार-सारणी के धीमे और दुर्लक्ष्य, किन्तु सतत और गम्भीर प्रवाह का परिणाम है। अतएव ऐसी अनास्था की जड़ सुधारों की प्रगति अर्थात्

सभ्यता की उन्नति और उसके द्वारा लोकमत में होने वाले परिवर्त्तनों में रहती है। यदि हम पूछें कि उक्त प्रकार के विश्वास को निर्मूल करने में कैसी कैसी दलीलें काम करती हैं, तो हमको स्वीकार करना होगा कि वे ऐसे ऐसे महान् परिवर्त्तनों के कारणस्वरूप होने के सर्वथा अयोग्य हैं। रुला रुला कर कराई हुई असन्तोष-कारक कबूलतें, समय समय पर सुनाई देने वाली झूठी फरियादें और फरियादियों का द्वेषभाव आदि तो मध्ययुग के घोर अन्धकार के समय में भी था। पुस्तकों तथा ज्ञान के प्रसार से इन प्रत्यक्ष प्रमाणों पर कुछ असर नहीं पड़ता। यदि यह बात केवल प्रमाणों के ऊपर ही निर्भर होती तो कहा जा सकता है कि उस समय के लोग भी—जिस समय तन्त्र-विद्या और डाकिनों आदि के विषय में असंख्य प्रमाण मौजूद थे, और जिस समय सब जातियों और सब प्रकार की शिक्षा पाए हुए शिक्षितों का ध्यान इस ओर आकृष्ट था,—वैसे ही योग्य विचारक रहे होंगे जैसे कि आज कल हम अपने को समझते हैं। ऐसे आरोपों का बन्द होना धार्मिक अनास्था का कारण नहीं, किन्तु कार्य्य था। सत्रहवीं शताब्दी में भूत प्रेतादिकों को झूठ कहना या उनके अस्तित्व के विषय में संदेह प्रकट करना धार्मिक अनास्था का मुख्य लक्षण समझा जाता था। पहले जो लोग खुल्लम-खुल्ला अनीश्वरवादी थे. केवल उन्हीं में इस प्रकार की अनास्था ने प्रवेश किया और फिर उसने धीरे धीरे सब श्रेणी के लोगों पर अपना प्रभाव डाला और अन्त में वह पादरियों के बड़े समुदाय को छोड़ कर शेष सब श्रेणी के शिक्षितों में फैल गई। यह प्रसार न तो किसी व्यवसायी प्रवर्त्तकों द्वारा ही हुआ था और न वह किसी बड़े ग्रन्थकार का ही काम था। वाद-युद्ध में एक पक्ष की हार अथवा दूसरे पक्ष

की जीत के साथ भी उसका सम्बन्ध नहीं था, बरन् यह एक शान्त, चर्चा रहित और अज्ञात प्रवाह का कार्य्य था। इन बातों की निस्सारता देख कर उनपर से लोगों का धीरे धीरे विश्वास हटता गया। पहले जिन पर धर्म्म का प्रभाव कम था उनमें, फिर समस्त शिक्षित पुरुषों में और अन्त में धर्म्माचार्य्यों में भी इन नये विचारों ने प्रवेश किया।

जो धर्म बहुधा उग्र धमकियों से परिपूर्ण रहता है और जिसमें मानवी संसार के दुःख तथा पिशाचवर्ग की शक्तियों के भयानक चित्र चित्रित रहते हैं, उसके अत्यन्त बोध अथवा साक्षात्कार के समय उसमें से भूतविद्या अथवा जादू के विषय में विश्वास उत्पन्न होता है। उसकी शिक्षा से उत्पन्न होने वाले भयङ्कर त्रास के कारण अनेक मनुष्यों की बुद्धि भ्रमित हो जाती है—उनके मस्तिष्क में अमानुषी शक्ति तथा असीम ईर्ष्या-सम्पन्न आसुरी प्राणियों के भयंकर चित्र घूमा करते हैं। यही चित्र अवसर पाकर वृद्धावस्था, शोक अथवा बीमारी के कारण उत्पन्न हुए चित्तभ्रम के साथ जुड़ जाते हैं और प्रकृति के त्रासजनक अव्यक्त उत्पातों में गिने जाने लगते हैं।

जिस अवस्था में श्रद्धा केवल कल्पनाजन्य होती है उस समय आसुरीविद्या के विचारों की उत्पत्ति कैसे होती है, इसका हाल ऊपर लिखे हुए विवरण से भली भांति जाना जाता है। कुछ समय के उपरान्त ज्यों ज्यों ऐसे मलिन प्राणियों के अस्तित्व के विषय में लोगों के हृदय में भान बढ़ता जाता है त्यों त्यों तर्कशक्ति पर उसका गहरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में जिन विचारों का साम्राज्य था, वर्तमान समय में हम उनसे बहुत आगे निकल गये हैं, और जादू या पिशाचविद्या के ढोंग

अथवा पाखण्ड पर हमको इतना अधिक विश्वास हो गया है कि यदि हम उसके मूलप्रतिपादकों की स्थिति में उतरना चाहें तो हमको अपनी कल्पनाशक्ति को बहुत जोर देना पड़ेगा। जब हम इसका समदृष्टि से अन्वेषण करते हैं तब हमें पिशाच-विद्या को सत्य ठहराने वाले अनेक ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं; इतना ही नहीं, यदि उसकी सम्भाविता के विषय में पहले से हमारी श्रद्धा उठ न गई हो, तथा हम यह भी न जानते हों कि वर्तमान प्रगति या सभ्यता के प्रभाव से वह किस प्रकार धीरे धीरे निर्मूल हो रही है तो हमको उसके प्रति तिरस्कार या घृणा प्रदर्शित करने का कोई उचित कारण न मिलेगा। इसके समर्थकों में अनेक प्रसिद्ध और विद्वान् पुरुष थे। उनका विश्वास था कि समग्र इतिहास में इससे अधिक प्रमाणयुक्त और कोई बात नहीं है, उसे अस्वीकार करना मानों दैवीघटनाओं के समस्त ऐतिहासिक प्रमाणों की जड़ पर कुठाराघात करना है। इस विश्वास में बहुत से ऐसे असाधारण और हृदयबेधक काम भी शामिल थे कि जिनके विषय में लोगों के मन में कभी तिलमात्र भी शंका नहीं उठती थी। यूरोप के प्रायः प्रत्येक देश में तत्कालीन प्रवीण न्यायाधीशों और धर्माधिकारियों की कचहरी में ऐसे हजारों अभियोगों की सूक्ष्म जाँच होती थी और जिस समय जिस स्थान पर ऐसे अपराध होते थे, उस समय उसी स्थान पर बहुसंख्यक शपथपूर्वक ली हुई गवाहियों के आधार पर अभियोग चलाये जाते थे। अपराधियों को दंड देने में विचारकों का कोई निजी स्वार्थ नहीं रहता था, इस कारण वे अभियुक्तों पर दोषारोपण करने में बहुत सावधानी और विवेक से काम लेते थे। क्योंकि वे जानते थे कि अपराध प्रमाणित हो जाने पर उन्हें भयङ्कर मौत की सजा देनी पड़ेगी। लगातार कई शताब्दियों

तक लोकमत अंतःकरणपूर्वक इसी विश्वास की ओर झुका रहा। यह सच है कि तंत्रविद्या के अंगों के विषय में बहुत कुछ मत भेद था, परन्तु उसके अस्तित्व के विषय में एक सुदीर्घ समय तक तनिक भी सन्देह नहीं रहा। कोई कोई कहेंगे कि ये बातें एक विषयोन्माद, धूर्त्तता, काकतालीय न्याय अथवा नेत्रभ्रान्ति से उत्पन्न होनेवाले कुछ उदाहरण थे, परन्तु जब हम सरकारी कागज़-पत्रों में शपथपूर्वक लिखे गये बहुसंख्यक बयानों की ओर दृष्टि डालते हैं, तब उन्हें असत्य ठहराना कठिन हो जाता है। वर्तमान समय में ऐसी अशक्य बातों के विषय में इतने अधिक ज़ोरदार प्रमाण इकट्ठे ही नहीं हो सकते हैं, परन्तु उस समय जब कि तंत्रविद्या और जादू का खूब दौरदौरा था, लोग बहुत भोले थे, और इसी कारण उस समय अंधश्रद्धा ने जन्म पाया था। तो भी केवल इसी कारण से समस्त व्यावहारिक बातों में हम उन लोगों की साक्ष्य को भ्रममूलक नहीं कह सकते हैं। यदि हम उक्त विद्या को संभवित मानते हों तो इस समय उसके विषय में हमारे पास जो प्रमाण हैं उनका शतांश भी हमको उनकी सत्यता के विषय में विश्वास उत्पन्न करा सकता है।

जंगली अवस्था में रहनेवाले मनुष्यों में भूतविद्या की सत्यता सर्वमान्य होती है। अनेक समय उनमें एक विशेष प्रकार की क्रूरता भी देखी जाती है। इसका कारण स्पष्ट है। धर्म की उत्पत्ति सर्वत्र भय से होती है। जंगली लोगों के मस्तिष्क पर प्रकृति की साधारण और सुखकारक घटनाओं की अपेक्षा विलक्षण और त्रासजनक घटनाओं का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। मानवहृदय में उपकारवृत्ति की अपेक्षा भय की प्रवृत्ति अधिक प्रबल होने के कारण, उन पर प्रकृति के उत्कृष्ट नित्यकार्यों का उतना प्रभाव नहीं पड़ता,

जितना कि उनके थोड़े व्यतिक्रम से पड़ता है। अतएव जब उनके मस्तिष्क के सामने प्रकृति की कोई भयप्रद घटना उपस्थित होती है, या जब कोई भयंकर रोग या उत्पात उनके देश को वीरान करने लगता है, तब वे इन सब कामों में किसी अलौकिकशक्ति का हाथ देखते हैं। रात्रि के अंधकार, पर्वत की कन्दराओं में होनेवाली भीषण प्रतिध्वनि, धूमकेतु के दमकते हुए प्रकाश अथवा ग्रहणकाल की विषादमय छाया में, अकाल के भीषण सपाटे, भूकम्प अथवा संक्रामक रोगों से होनेवाले अगणित नरसंहार और मनुष्य की विचारशक्ति में विकार उत्पन्न करनेवाले समस्त कारणों—संक्षिप्त में समस्त विलक्षण, अनिष्टसूचक और भयप्रद कार्य्यों में दिखाई देने वाली अमानुषी शक्ति के आगे वे थर थर कांपते और भय से माथा झुकाते हैं। उन पर प्रकृति की प्रत्येक विलक्षण घटना का गहरा प्रभाव पड़ने, तथा प्रकृति के पृथक् पृथक् भागों को जोड़नेवाले क्रम की रचना से अनभिज्ञ होने के कारण, जिन कृत्यों को वे आसुरी जीवों या शैतान के भिन्न भिन्न कार्य्य समझते हैं, उनसे वे बहुत डरते हैं। भूत-प्रेतादि निरन्तर हमारे आसपास भ्रमण किया करते हैं, उक्त विश्वास के वशीभूत होकर वे लोग बलिदान आदि के द्वारा उनको सदैव संतुष्ट रखने का प्रयत्न किया करते हैं। जब जब उन पर कोई भारी विपत्ति आ पड़ती है या किसी प्रबल वैर के आवेश से उनकी विचारशक्ति बेकार हो जाती है तब तब भूत-प्रेतादि आसुरीजीवों की सत्ता प्राप्त करने की चेष्टा किया करते हैं; ऐसी दशा में उनकी उत्तेजित कल्पनाशक्ति शीघ्र ही स्वीकार कर लेती है कि मेरी इच्छा सफल हो गई। यदि उनमें अन्य मनुष्यों की अपेक्षा आकांक्षा और सामर्थ्य अधिक हो तो उनके लिए उक्त विश्वास आसुरीसत्ता प्राप्त करने का बहुत

सुगम कारण बन जाता है। इसके पश्चात् जब वे लोगों पर यह प्रकट करने लगते हैं कि मैं आसुरीजीवों के साथ बात चीत करने तथा उनको अपने इशारे पर नचाने में समर्थ हूँ, तब उनका समीपवर्त्ती लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ने लगता है; और यदि उनका संसर्ग ऐसे लोगों के साथ हो कि जो अलौकिक बातों पर सहज ही विश्वास कर लेते हैं तो उनकी स्वल्प कुशलता अथवा स्वाभाविक नियमों का किञ्चित् ज्ञान ही उनकी धूर्त्तता का समर्थन कर देता है। जब किसी प्राकृतिक उत्पात या बीमारी आदि के कारण लोगों में स्वाभाविक भय या त्रास का संचार होता है तब वे उसे अपनी अप्रसन्नता का प्रतिफल बतला कर अपने प्रतिपक्षियों को डरवाते और उनसे बदला लेते हैं। इस प्रकार उनकी धाक जम जाती है और सब लोग उनका लोहा मानने लगते हैं। जो व्यक्ति अपने अभ्यास, स्वभाव या ज्ञान के कारण साधारण लोकसमुदाय से भिन्न हो जाते हैं उन पर पैशाचिक सम्बन्ध रखने की सहज ही आशंका की जाती है, और यदि ऐसे संदिग्ध व्यक्तियों में से कोई मानसिक व्याधि से पीड़ित हो तो फिर उस पर पूर्ण विश्वास हो जाता है, अर्थात् उसके अपराधी होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहता। इस प्रकार अज्ञान, कल्पना और मूर्खता के संयोग से भूत-विद्या के प्रति विश्वास उत्पन्न होता है और उन लोगों के विरुद्ध जो इस विद्या के द्वारा त्रास फैलाते हैं, भय के साथ ही साथ घृणाभाव भी उदित होता है।

अधिक सुधरी हुई स्थिति में भूत प्रेतादिका भय स्वाभाविक रीति से कम हो जाता है; कारण कि रहन सहन के कृत्रिम अभ्यासों से कल्पना शक्ति को जागरित करने वाले साधन कम हो जाते हैं। इसके सिवा ज्ञानाभिवृद्धि होने से प्रकृति

की कई एक भयप्रद घटनायें और रहस्य उनकी समझ में आने लगते हैं। प्राचीन ग्रीस और रोम में लोगों को साधारणतः ऐसा विश्वास था कि आसुरी शक्तियोंके द्वारा मनुष्यों पर विपत्ति ढाई जासकती है। महात्मा आगस्टाइन विश्वास दिलाते थे कि सुखवादियों (Epicuriens) के सिवा समस्त तत्त्वान्वेषी भूतों के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। रोम और ग्रीस में जादूगरों को जला डालने का कानून था और डिमास्थगीज़ के समय में एक लेमिया नाम की डाइन मार डाली गई थी। प्लेटो के तत्त्वदर्शन में आध्यात्मिकतत्त्वों की विशेष चर्चा रहने के कारण उससे तत्कालीन भूत-प्रेतादि के विश्वास को अधिक प्रश्रय मिला। सन् ईस्वी के पहिले या पश्चात् जब जब हम उसके तत्त्वदर्शन को उच्चस्थान पर आरूढ़ देखते हैं, तब तब उसके परिणाम से तांत्रिकविद्याका भी विकाश दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त प्राचीन सभ्यता में प्राकृतिक घटनाओं के रहस्य समझने या उनके कारणों की खोज़ करने का उत्साह दिखाई नहीं देता—यही कारण है कि इस विषय में बहुत कम शोध हुआ था। परन्तु यह सब होने पर भी इन देशों में केवल धार्मिक उन्मत्तता से उत्पन्न होने वाला त्रास प्रायः नहीं था। जब कभी कुछ जादूगरों को दण्ड दिया जाता था तो इसलिए कि वे मनुष्य जाति को हानि पहुंचाते हैं—ईश्वर के अपराधी समझ कर नहीं।

कहा जाता है कि रोम में ईसाईधर्म प्रवेश होने के पहले जादू के दमन के लिए जो कानून बनाये गये थे वे धार्मिक आन्दोलन के फल स्वरूप नहीं थे,—राजनैतिक आवश्यकता के कारण ही उनकी सृष्टि की गई थी। कभी कभी भविष्य बतलाने के कारण वहाँ ज्योतिष विद्यापर भी जादू का आक्षेप

होता था, क्योंकि राजाओं के विरुद्ध षड़यंत्र रचने वालों को उससे उत्तेजना मिलती थी। बहुधा द्रव्यलोलुपी चापलूस व्यक्ति कई लोगों को यह विश्वास दिला कर कि तुम्हारे भाग्य में राज्याधिकार लिखा है, बलवा करने पर उद्यत करते थे। यही नहीं, वे तत्कालीन राजाओं की जन्मकुण्डली पर से बलवाइयों को बलवा करने का मुहूर्त्त भी बतलाते थे। इस प्रकार ये ज्योतिषी लोग ही राजनैतिक हलचलके विधाता गिने जाते थे। जादू के कुछ लटके ग्रीस से लाये गये थे। परन्तु तत्कालीन आत्माभिमानी लोगों को वे असह्य हुए और इसी लिए उनका प्रतिबंध किया गया। इसी कारण कई बादशाहों ने जादू के विरुद्ध आज्ञायें प्रचारित की और जादूगरों को न्यूनाधिक उग्रता के साथ दण्ड दिया। उक्त कारणों से ही ज्योतिर्षविद्या के सम्बन्ध में भी कानून रचे गये, परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि उक्त विद्या में किसी प्रकार का नैतिक दोष गिना जाता था, किन्तु इसके विपरीत देव-पूजा प्रभृति अनेक विधियों में वह विशेष आवश्यक थी। कोई कोई बादशाह और राजा तो जादूगरों तथा ज्योतिषियों के प्रधान आश्रयदाता थे। कहने का मतलब यह है कि इन बातों में किसी प्रकार का धार्मिक अपराध नहीं गिना जाता था।

रोम में ईसाईधर्म प्रचलित होने के पूर्व जादूगरों की ऐसी ही स्थिति थी। अतः ईसाई बादशाहों की राजनीति पर उसका कैसा प्रभाव पड़ा इसका इस जगह किञ्चित् दिग्दर्शन कराना आवश्यक है।

जब पहिले पहल रोममें ईसाईधर्मका संचार हुआ तब वे लोग मूर्तिपूजकों की अपेक्षा इस प्रश्न को एक दूसरी ही दृष्टि से देखते थे। वे अपनी रग रगमें समाई हुई धर्मान्धताके कारण जादू के सांसारिक पापों की अपेक्षा धार्मिक पापों को कहीं

अधिक भयंकर समझते थे, और इसीलिए उनके विचारसे राजद्रोह प्रभृति राजकीय अपराधोंसे भी धार्मिक पापोंकी गुरुता अधिक थी। चारों ओर मूर्तिपूजकोंसे घिरे रहनेके कारण वे अपने आसपास सदैव शैतानका अस्तित्व देखते और उनके प्रत्येक कामोंमें जादूका अनुभव करते थे। उनको विश्वास था कि ईसाई धर्मावलम्बियोंके अतिरिक्त अन्य समस्त सम्प्रदायवाले एक विशेष प्रकारकी अनन्तकालव्यापी यातनाके भागी होंगे। इसीलिए वे लोग ईसाई धर्मको स्वीकार न करनेवालोंके लिए अपने मनमें सदैव भयंकर २ दण्डोंकी योजना किया करते थे। उनके मतसे सारी दुनियाँ दो भागोंमें बँटी थी, एक ईश्वरका राज्य और दूसरा शैतानका। दुःख सहन करनेवाले क्षुद्र ईसाई सम्प्रदायके भाग्यमें ईश्वरका राज्य और दुःख देनेवाले अन्यान्य समस्त सम्प्रदायोंके भाग्यमें शैतानका राज्य लिखा था। उनके धर्मकी जब कुछ हँसी उड़ाई जाती या धर्मको हानि पहुँचानेवाला कोई कानून बनाया जाता अथवा उसकी वृद्धि रोकनेके लिए जो जो का किये जाते—उन सब कामोंके भीतर वे शैतानका कर्तृत्व देखते थे। उनके आसपास एक महान् प्राचीन धर्म फैला था। उसकी भव्य क्रियाओं, परंपरागत कथाओं, उसके आचार्यों और उनके चमत्कारों की जनसमाजमें गहरी जड़ थी। ये बातें ही उनके धर्म्म-प्रचारके कार्य्यमें महान् विघ्न स्वरूप थीं; इस धर्ममें उन्हें सर्वत्र शैतानका उद्योग दृष्टिगोचर होता था। उनको विश्वास था कि प्रत्येक घटना किसी न किसी चमत्कारसे ही उत्पन्न होती है, इस कारण उस धर्म्मकी अनेक अद्भुत बातें भी सत्य प्रतीत होती थीं। ऐसा माननेमें उन्हें इसीलिए कुछ कठिनाई नहीं पड़ती थी कि उनको विश्वास था कि सारी दुनियाँ नर-

पीड़क राक्षसोंसे भरी पड़ी है। मिश्रदेशके जादूगरोंसे लेकर बाइबिलके नूतन खंडमें वर्णित भूताविष्ट लोगों पर भी उनकी सत्ता निरंतर दर्शाई जाती थी। प्रभुके पसंद किये हुए देश (पैलेस्टाइन) में वे मनुष्योंको केवल तंग कर सकते थे, परन्तु मूर्तिपूजक रोममें तो उन्हींका राज्य था और दैव-ज्ञानसे उनकी पूजा की जाती थी।

प्लेटोके प्रबल सिद्धान्तोंका ईसाई धर्मकी प्रारम्भिक शिक्षाओं पर बहुत गंभीर प्रभाव पड़ा। मूर्तिपूजकोंको विश्वास था कि संसारके धर्म्मराज्यको सुचारुरूपसे परिचालित करनेके लिए ईश्वरने कनिष्ठ देवोंकी सृष्टिकी है, और इनके द्वारा भी ईश्वरकी प्रसन्नता प्राप्त की जा सकती है। इसी विश्वास के कारण एकेश्वरवाद और अनेकेश्वरवाद-का झगड़ा शान्त होगया था। यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है कि ईसाई लोग एकेश्वरवादी और रोमीय मूर्तिपूजक अनेकेश्वरवादी थे। अनेक देवोंकी पूजा करनेवाला राज-धर्म्म सच्चा और न्याययुक्त समझा जाने पर भी वह शुद्ध एके-श्वरवाद का विरोधी नहीं था। कनिष्ठ देवोंके विषयमें ईसाई लोगोंका भी यही खयाल था, परन्तु वे कहते थे कि ये देव ईश्वरके दूत नहीं—शत्रु हैं; और इसीलिए (ईसाई धर्म्मके) अविश्वासियोंमें जिस डेमन शब्दका अर्थ कनिष्ठ देव होता था, उसका अर्थ उन्होंने बदल कर दानव कर दिया था।

मालूम होता है कि ईसाई लोगोंमें उक्त धारणा प्राचीन कालसे थी। द्वितीय शताब्दीके लेखक टरट्यूलियनको विश्वास था कि सारी दुनियाँ भूत-प्रेतादि मलिन प्राणियोंसे भरी पड़ी है और उनका अस्तित्व अपवित्र लोगों के प्रत्येक कार्य्यमें दिखाई देता है। शैतानने जब ईश्वरके सामने सिर

उठाया तब कुछ देवोंने उसकी मदद की, इसीलिए ईश्वरने उन्हें सदैवके लिए नरककी नाली या दोजख़के गड्ढेमें पटक दिया। कुछ देवदूत प्रलयकालके पहले मनुष्योंकी स्त्रियों पर अनुरक्त हो गये थे और उन्होंने उन स्त्रियोंको ऊन रंगने तथा इससे भी अधिक पापपूर्ण मुंह रँगनेका काम सिखलाया था, इसलिए ईश्वरने उन्हें चिरकालके लिए स्वर्गसे निर्वासित कर दिया। यही कारण है कि ये लोग शत्रुतावश प्रत्येक ईश्वरीय कार्य्यको निष्फल करनेकी चेष्टा किया करते हैं और जो पूजा केवल ईश्वरहीके लिए उचित है उसे स्वतः प्राप्त करनेमें आनंद मानते हैं। इस प्रकार ईसाई लोग मूर्ति-पूजकोंके अनीतिमान् देवताओं—यथा वीनस, मर्क्यूरी, मार्स और प्लूटो (नरकाधिप) प्रभृतिको तो राक्षस मानतेही थे, परन्तु उनके पवित्रसे पवित्र नीतिवान् देवताओंको भी वे दानवोंकी श्रेणीमें रखते थे। उनकी समझमें ज्ञानकीदेवी मिनर्वा, ब्रह्मचारिणी डियाना और देवाधिदेव जुपिटर सब दैत्य-दानव ही थे। प्राचीन वीरपुरुषजो अपनी निस्वार्थ वीरताके उत्तमोत्तम कामोंके सबब पूजनीय समझे जाते थे वे भी इस समयसे मृतनामधारी पिशाचोंकी श्रेणीमें आगये। इसी प्रकार कवि-कल्पनासृष्टिके मनोहर चित्र, जैसे मध्ययुगकी परियें या अप्सरायें तथा प्रत्येक कुंज और झरनेको पवित्र करने वाली वन-देवी प्रभृति भी तिरस्कारपात्र समझी जाने लगीं। उन्हें ऐसा भास होता था कि सारा वायुमण्डल मलिन प्राणियोंसे खचाखच भरा हुआ है और उनके कृत्योंसे कोई जगह खाली नहीं है। वे वीनसके मंदिरमें प्रज्वलित होनेवाली अमरज्योति, अदृश्य हाथोंपर लाये जानेवाले कुलदेव, कुमारियोंके विषयमें फैलनेवाले आश्चर्य्य जनक समाचार, सिद्धोंके स्थान और रोमीय शक्तिके अड्डे प्रभृति सभी कामोंमें उनका कर्तृत्व

देखते थे। उनको विश्वास था कि वे भिन्न भिन्न नाम और रूप धारण करके मानव जगतमें घूमते और अधिकतः स्त्रियोंको अपनी लंपटताका पात्र बनाते हैं। इन बातोंके इतने अधिक प्रमाण थे कि उनको अस्वीकार करनेसे केवल एक हठ ही समझा जाता था। डाकिनोंकी खोजके समय ऐसा कहना कि उसने अमुक भूतके साथ शादी करली है, एक मामूली बात हो गई थी। लूथर इन बातोंका बड़ा विश्वासी था। दानवोंपर विश्वास करनेके अपराधमें हजारों स्त्रियाँ जलादी गईं थीं। दानवगण प्रायः सुन्दर केशवाली स्त्रियों पर ही अधिक रीझा करते थे।

ईसाई*गुनियाँ ऐसे भूताविष्ट लोगोंको बारंबार भूतोंके फंदेसे छुड़ाते थे। प्राचीन कब्रस्थानोंमें इन गुनियोंकी बहु-संख्यक समाधियाँ मिलती हैं। जो ईसाई अपने धर्ममें जरा भी भूल करते, उन्हें भूत प्रत्यक्षरूप धारण करके डरवाते थे। एक दिन एक ईसाई महिला मूर्खताकी तरंगमें आकर नाटक देखने गई। उसे वहाँ भूत लग गया। ईसाई गुनियोंने उस भूतको उसकी इस धृष्टता पर बहुत डाँट लगाई। उसने अपनी सफाईमें कहा—'मैंने इस बाईको अपने घरही (नाटक शाला) में पकड़ा है।' नाटक शाला सभामंडप, बाजार और समस्त सार्वजनिक उत्सवोंमें शैतानकी उपस्थितिका कुछ न कुछ चिन्ह अवश्य पाया जाता था। एक बार एक ईसाई सिपाही मेला देखने गया। वहाँ उससे उत्सवका मुकुट पहनने के लिए कहा गया। परन्तु उसने ऐसा करनेसे साफ इन्कार कर दिया, क्योंकि वह मुकुट उत्सवके देव बेकस और वीनस को अर्पित किया हुआ था। इस अपराधके बदले उसे जो दंड

* लोगोंको भूतावेशसे मुक्त करनेवाले तथा भूत उतारनेका मन्त्र जाननेवाले।

दिया गया वह उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया, परन्तु वह अपने धर्म्मसे ज़रा भी न डिगा। इस घटनाकी बहुत चर्चा हुई और टरट्यूलियनने एक पुस्तक लिखकर साबित कर दिया कि उसने अपने कठिन धर्म्मका पूर्ण पालन किया। उक्त लेखक लिखता है कि एक ईसाई रमणी अपने पहिचानके एक नाटक-के खिलाड़ीसे मिलने गई, इससे सारी रात उसे कफनकी चादरका स्वप्न आया और उसके कानोंमें उस खिलाड़ीके नामकी ध्वनि सुनाई दी। इस कामके लिए उसे सख़ धमकी दी गई। छट्ठीं शताब्दीके महात्मा ग्रेगरीका कथन है कि एक मठवासिनी स्त्री बगीचेमें जाकर क्रूशका चिन्ह किये बिना ही फल-फूल खाने लगी। इस उतावलीके कारण पीछे उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ, क्योंकि वह फलके साथ ही साथ उसमें छिपे हुए एक भूतको भी निगल गई थी।

ऐसे विश्वासोंके कारण तत्कालीन ईसाइयोंमें कैसा त्रास फैला होगा, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। वे अपनेको चारों ओरसे एक अद्भुत वातावरणसे घिरा हुआ समझते थे। प्रत्येक तालाब या जलाशयके किनारे चौकी-दार भूत खड़े रहते थे। वे जीवनके समस्त व्यवहारोंमें बाधक होते और बेचारे ईसाई ही उनके द्वेषपात्र हुआ करते थे। ये सब बातें सर्वमान्य होनेके उपरान्त इतने अधिक विश्वासके साथ मानी जाती थीं कि उनका आज कलकी ऐहिक प्रगतिके समयमें पूरा पूरा खयाल आना भी कठिन है। जिन लोगोंने अपने समग्र जीवनका सारा उत्साह धर्म्म कार्य्योंमें व्यय किया हो और विशेष करके धार्मिक जुल्मोंके अग्निकुंडमें पड़कर जिनकी श्रद्धा अत्यन्त बलवती बनगई हो, उन्हें धार्मिक आज्ञायें जैसे अभ्रान्त सत्य और दृढ़ विश्वासनीय प्रतीति होती हैं, वैसे ही तत्कालीन पुरुषोंको जादूके विषयमें भी अटल

विश्वास था। इस विश्वाससे जादू पर क्या प्रभाव पड़ा, यह जानने योग्य है। सुधरे हुए मूर्त्तिपूजकोंमें जादू एक सांसारिक अपराध मात्र समझा जाता था, परन्तु रोम साम्राज्यके अंतिम समयमें उसकी गणना प्रायः राजकीय अपराधोंमें होने लगी थी। अन्य समयोंकी अपेक्षा यह अपराध राजनैतिक आशंकाओं के समय बहुत भयानक समझा जाता था। प्रचलित धर्मके साथ उसका संबंध बहुत अनिश्चित था और उसमें जादूकी अनेक क्रियायें सम्मिलित होजाने पर भी वे दोषावह नहीं गिनी जाती थीं।

परन्तु इसके विपरीत ईसाई धर्म्मके प्रारंभिक कालमें जादूकी गणना शैतान प्रेरित भीषण धर्म्म-घातक कार्य्योंमें की जाती थी और उसमें मूर्त्तिपूजकोंकी समस्त धर्मक्रियाओं और आख्यानों की भयंकर विवेचना भी शामिल थी। इसके परिणामसे ईसाई आचार्य्य इस विषय पर विशेष ध्यान रख कर उपदेश देने लगे और उन्होंने लोगोंके मनको एक बहुत भारी भ्रममें डाल दिया।

पीछे जब इन ईसाई आचार्य्योंके हाथमें राजसत्ता आई तब उन्होंने अपने पूर्व उपदेशित सहिष्णुताके सूत्रोंको या तो बिलकुल बदल डाला या उन्हें सर्वथा ही त्याग दिया। यही नहीं, उन्होंने थोड़े ही वर्षोंके भीतर यहूदियों और पाखंडियोंके दमनके लिए एक कानून पास किया। कान्स्टेनटाइन बादशाहने ईसाई धर्म स्वीकार करनेके पश्चात् तुरंत ही गुप्त जादूके विषयमें एक सख़्त कानून बनाया। उसका अभिप्राय यह था कि जो जादूगर किसी गृहस्थके घर जादू संबंधी क्रियायें करते पकड़ा जायगा वह प्रज्वलित अग्निमें जीतेजी जला दिया जावेगा और उसके यजमानकी समस्त जायदाद जप्त करली जायगी। उसने ऐसे अपराधोंका पता लगाने वालोंको खूब

पुरस्कार देनेकी व्यवस्था भी की थी। दो वर्षके बाद एक राजाज्ञा द्वारा यह घोषित किया गया कि उक्त कानूनकी नियत उस जादूके दमन करनेकी नहीं है जो रोगियोंकी चिकित्सा करने अथवा फसलको ओला, वर्फ और तूफान आदिसे बचानेके लिए व्यवहारमें लाया जाता है। इस बादशाहको अधिक ज़ुल्म करना पसंद नहीं था, इस कारण उसके समयमें इस कानूनका व्यवहार बहुत नरमीके साथ हुआ। किन्तु उसके पुत्र कोन्स्टेनियसने बहुत सख़्तीसे काम लिया। उसके समयमें जादूको जो जो क्रियायें मूर्त्तिपूजकों की क्रियाओंसे मिलती जुलती थी उनके लिए भी धारायें रची गईं। इन धाराओंकी रचना करते समय उसने कहा था कि अनेक मनुष्य आकाशमें तूफान उठाते और आसुरी सहायताके बलसे अपने शत्रुओंको विनष्ट करते हैं; इसलिए हरएक प्रकारकी सख़्तीके द्वारा जादूको निर्मूल करना हमारा कर्त्तव्य है। भविष्य बतलाने वाले ज्योतिषियों आदिकी गणना भी इसी श्रेणीमें की गई और इसके फलसे वे अत्यन्त तिरस्कार पात्र हो गये। रोममें पकड़े जानेवाले जादूगर या मंत्र-शास्त्री जंगली हिंस्र जानवरोंके सामने फेंक दिये जाते थे, तथा अन्यान्य प्रान्तोंमें पकड़े जाने-वाले अपराधी सूली पर लटकाये जाते थे। इसके अतिरिक्त जो दुराग्रही अपना अपराध अस्वीकार करनेका हठ करते थे उनके शरीरका माँस हड्डियोंसे लोहेके नुकीले काँटों द्वारा नुचवा लिया जाता था। जो क्रियायें कुछ दिन पूर्व सर्वत्र प्रचलित थीं उन्हींके लिए अब कठिनसे कठिन दण्डोंकी योजना की जाने लगी। वे क्रियायें जो ईसाईयोंकी दृष्टिमें बहम या आपत्तिजनक नहीं समझी जाती थीं उनके करनेकी स्वतंत्रताका मिलना भी मूर्तिपूजकोंके लिए एक बड़ेसे बड़ा सुख था। कहा जाता है कि प्राचीनकालमें लोगोंको भड़कानेके

कारण ईसाईयोंका उपनाम 'मानवजातिके शत्रु' पड़ गया था; परन्तु अब इन लोगांके राजत्वकालमें यही उपनाम जादूगरोंके लिए व्यवहारमें लाया जाने लगा।

जादूको निर्मूल करनेके लिए ईसाई बादशाहोंने बहुत प्रयत्न किया। उस समय रोममें जितनी क्रूरता थी उस सबको उपयोगमें लाकर जितने कड़ेसे कड़े कानून बनाये गये वे सब जादूको निर्मूल करनेमें असमर्थ सिद्ध हुए। जनसाधारणका भोलापन ही इस बहमका मूल कारण था। कारण दूर हुए बिना कार्य्यका विनाश होना कब संभव है? जब तक लोगोंमें ऐसा विश्वास रहेगा कि हम थोड़े ही श्रमसे अपने जीवनकी कई महत्त्वपूर्ण बातोंका भविष्य जान सकते हैं तब तक वे बड़ेसे बड़े भयको भी तुच्छ गिन कर किसी न किसी उपायसे अपनी इच्छा तृप्त किये बिना न रहेंगे; इसी प्रकार जब तक उनके मनमें यह बात जमी रहेगी कि हम कुछ सुगम क्रियाओंके द्वारा अपने प्रबल शत्रुओंको पराजित करके अपनी मनोकामना सिद्ध कर सकते हैं तब तक वे उन क्रियाओंको उपयोगमें लाना न छोडेंगे। कठिन दंड या अभिशापके भयसे उनका यह विश्वास सहसा दूर नहीं हो सकता है। कहनेका मतलब यह है कि इस रोगकी सच्ची औषध त्रास या दंड नहीं, किन्तु अश्रद्धा है। जब तक प्रचलित विश्वासके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न नहीं होती तब तक वह अन्य किन्हीं उपायोंसे दूर नहीं किया जा सकता है। यह अश्रद्धा उस समय कहीं ढूँढ़े नहीं मिलती थी। उस समय जादूके विषयमें तिरस्कार उत्पन्न होना तो दूर की बात है, किन्तु जनसाधारणके हृदयमें उसके प्रति शंकाके लिए तिलभर स्थान मिलना भी कठिन था। प्राचीन धर्म्मके समस्त दार्शनिक पंडित नवीन प्लेटोवाद पर का[ ]भूाकरती मुग्ध हे धर्म्मांधियत्नता' 'मानवसृष्टिके' साथ

भूतोंका संबंध' और 'मिश्रदेशकी रहस्यमय बातें' प्रभृति विषयों पर बड़े बड़े ग्रन्थ लिखते थे। अलबत्तह ईसाई पादरी जादूका सख़ विरोध करते थे, परन्तु जनताको इस बातका ज़रा भी विश्वास नहीं होता था कि हम कुछ भी भ्रान्तिमें हैं। इन क्रियाओंका प्रतिबंध हो जाने पर यदि वैसी ही कुछ मनोमोहक बातें ईसाई धर्म्ममें सम्मिलित न हो जाती तो समस्त साधारण लोग एक दम इस नये धर्म्मको छोड़कर प्राचीन धर्म्म स्वीकार करने लगते; इसीलिए ईसाई धर्म्ममें भी स्वाभाविक रीतिसे वर्जनीय और जादूसे टक्कर लेनेवाले कुछ नवीन तत्त्व,—जैसे कि मंत्रित जलके अद्भुत गुण और इसी प्रकारके अनेक कृत्य—शामिल हो गये।

संत हिलेरियनके जीवन-चरित में लिखा है कि एक बार इटेलिकस नामक एक ईसाई उक्त महात्माके पास आया। उसने प्रार्थना की कि मैं जब जब गज़ाके विधर्मी न्यायाधीशके साथ घुड़दौड़की बाजी लगाता हूँ तब तब वह जादूके बलसे मुझे पराजित कर देता है और मेरा घोड़ा बातग्रस्त की नाईं खड़ा रह जाता है। अतएव अनुग्रह करके आप मेरेलिए एक कटोरा जल मंत्रित कर दीजिए। साधुने पहले तो शर्तों जैसी सांसारिक बातोंमें पड़नेसे साफ इन्कार कर दिया परन्तु पीछे उसके बहुत अनुनय विनय करने पर उसने उसकी बात मान ली और जल मंत्रित कर दिया। धीरे धीरे बाजीका दिन आपहुँचा। परीक्षास्थल दर्शकोंसे परिपूर्ण हो गया। दोनों घोड़े पास पास खड़े किये गये। दौड़ शुरू करनेका संकेत पाते ही इटेलिकसने झट अपने घोड़े पर मंत्रित जल छिड़का। जलके छींटे पड़ते ही उसका घोड़ा वायुवेगसे दौड़ने लगा और कुछ ही क्षणके उपरान्त निशाने पर जा पहुँचा। परन्तु उसके प्रतिद्वन्दीका घोड़ा ठोकरें खाकर गिरने लगा—

मानों कोई अदृश्य हाथ उसे पग पग पर रोक रहा हो। परीक्षा-स्थल आश्चर्य, हर्ष और क्रोधकी ध्वनियोंसे गूंज उठा। कई लोग कहने लगे—इस ईसाई जादूगरको मार डालो, परन्तु बहुतेरे लोग इस घटनासे इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने अपना प्राचीन धर्म छोड़कर शीघ्र ही उसका नया धर्म्म स्वीकार कर लिया। कोन्स्टन्टेनियसके पश्चात् दो राजाओं अर्थात् जुलियन और जो वियसके समयमें जादूगरोंका त्रास बहुत कम गया था, परन्तु वेलेन्शीयनके राजत्वकालमें वह फिर जागरित हो उठा और उसने अभी तक चली आनेवाली विधर्मी प्रार्थनाओं और मध्यरात्रिके हवनोंको बिलकुल बंद कर दिया। इस कानूनसे ग्रीस देशमें इतना असंतोष फैला कि अन्तमें वहांसे उसे उठा देना पड़ा, परन्तु रोमन राज्यके अन्य प्रान्तोंमें उसका व्यवहार बहुत सख़्तीसे किया गया और उसके परिणामसे वहाँ दुःख और क्रूरताके भयंकर दृश्य दिखाई देने लगे। पूर्वदेशोंमें जो लोग येरियसके मतको अस्वीकार करते थे, वेलेन्शीयन उन सबको सख़्त दण्ड देता था। कहा जाता है कि 'तत्वज्ञानी' इतना नाम ही किसी व्यक्तिके देश निकालेके लिए यथेष्ठ कारण था। मृत्यु दण्डकी आज्ञा तो ज़रा ज़रासे अपराधों परसे दी जाती थी। एकबार एक विद्वान पुरुषने अपनी स्त्रीको निजी पत्रमें लिखा कि 'तू दरवाजेकी कमानी पर मुकुट बनाने (तोरण बाँधने)में कभी भूल मत करना' बस, इसीलिए वह फांसी पर लटका दिया गया। एक बुढ़ियाको ज्वर आता था, उसने ज्वरकी वेदना शान्त करनेके लिए एक जादू भरा गीत गाया, इसीलिए उसे अपनी जानसे हाथ धोना पड़ा। एक नवयुवक उच्च स्वरसे कुछ स्वरों, का आलाप करता हुआ घूम घूमकर एकबार अपना शरीर और एकबार संगमरमरके खंभेका स्पर्श करता था। इसलिए

कि उसे विश्वास था कि ऐसा करनेसे उसके पेटकी मरोड़ मिट जायगी। इस अल्प वहमके कारण उसके प्राण ले लिये गये।

इन जुल्मी बातोंका निरूपण करते समय हमको उसका सारा दोष धर्म्माचार्यों के सिर मढ़ना उचित नहीं है, क्योंकि अनेक राजा और राजकर्मचारी स्वभावसे ही निर्दय थे। ईसाई धर्मके पहले भी राजकीय अपराधोंके लिए ऐसी सजायें दी जाती थीं। कानूनके शब्द पढ़ते हो हमें एकदम ऐसा विश्वास नहीं कर लेना चाहिए कि उसमें लिखी हुई प्रत्येक बात अक्षरशः पाली जाती थीं, क्योंकि कायदोंको व्यवहारमें लानेकी शिथि-लता रोम राज्यके प्रत्येक विभागमें दिखाई देती थी। इन सब बातों पर विचार करनेसे जाना जाता है कि प्राचीन धर्म्मको निर्मूल करनेके लिए सर्वत्र प्रचलित, तथा उनके अंगस्वरूप गिनी जानेवाली समस्त निर्दोष क्रियायें बन्द कर दी गई थीं और उनके दमनके लिए अनेक कानून बनाये गये थे। इसके साथ साथ यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि समस्त धर्म्म-गुरु जादूको सत्य मानते थे और उन्होंने ही मूर्त्तिपूजकोंकी प्रायः समस्त क्रियाओंको जादूका रूप देकर उनकी भयानकता बढ़ा दी थी।

ईसाई धर्म्मके प्रारंभीय कालमें जादू और जादूगरोंकी ओर लोगोंका ऐसा ही खयाल था। इसके फलसे इतिहास पर कई महत्वपूर्ण प्रभाव पड़े। पहले तो इस प्रकारकी दंतकथाओंकी वृद्धि होनेसे इस अपराधकी सत्यता इतनी अधिक प्रमाणित हो गई कि अगले जमानेमें इस विषयमें किसीको शंका करनेके लिए स्थान ही न रहा; दूसरे धर्म्मनिरीक्षकोंकी कल्पित कथाओंको जिस बीजसे पोषण मिलता था उसमें वृद्धि होने लगी। मूर्तिपूजकोंकी अधिकांश क्रियायें एक विचित्र किन्तु

स्वाभाविक परिवर्तनके कारण इस समयसे धर्म्मके क्षेत्रको त्याग कर जादूके घेरेमें जाने लगीं। ग्रामीण लोग भयके कारण छुपी रीतिसे अपनी पूर्व परिचित क्रियाओंका प्रतिपालन करने लगे। उनसे कहा जाता था कि तुम इन क्रियाओंके द्वारा दुष्ट प्राणियोंका आवाहन करते हो। कुछ पीढ़ियोंके पश्चात् वे इस बातको सत्य मानने लगे, परन्तु इस कारण दूषित ठहराई हुई क्रियाओंको उन्होंने परित्यक्त नहीं किया। यह सच है कि भ्रान्तिकाल अर्थात् बहमी जमानेमें भ्रान्त लोग अपनी क्रिया-ओंसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक विचारोंको बदल सकते हैं परन्तु उसके प्रभावको अपने मगज़से दूर नहीं कर सकते। जगतमें किसी भी धर्म्मका पूर्ण विनाश प्राकृतिक कारणोंके सिवा अन्य किन्हीं उपायोंसे नहीं हो सकता है। जिस समय शहरोंमें ईसाई धर्मने प्रवेश किया, उस समय वहाँ प्राचीन-धर्म्म अत्यन्त जीर्णावस्थामें था, अतएव नये धर्मकी सफलता-में वहाँ अधिक विलम्ब नहीं लगा; परन्तु इसके विपरीत देहातमें प्राचीन धर्मकी शक्ति क्षीण नहीं हुई थी, इससे वहाँ उसके नाश करनेके लिए धर्मगुरुओं तथा न्यायाधीशोंकी ओर से किये गये सभी प्रयत्न निष्फल हुए। जंगली लोगोंके आक्रम-णसे मूर्तिपूजकोंका ज़ोर और बढ़ गया। अंतमें दोनों पक्ष एक प्रकारके समझौते पर आये; अर्थात् प्राचीन धर्म्मका नाम तो लुप्त हो गया परन्तु उसके अधिकांश तत्त्व परिवर्तित रूपमें नयेनये नाम धारण करके व्यवहृत होने लगे और इस प्रकार प्राचीन धर्म्मका अधिकांश भाग नये धर्म्ममें सम्मिलित होगया। पुरातत्त्ववेत्ता बहुत समय पहले कह चुके हैं कि रोमन कैथलिक सम्प्रदायके प्रायः प्रत्येक भागमें इस मिलावटके चिन्ह दिखाई देते हैं। इस प्रकार इस प्राचीन धर्म्मका नाम मिट जाने पर भी उसकी क्रियायें लगभग ८०० वर्षों तक जारी रहीं। मेक-

वेथ नाटकमें शेक्सपियरने जिन घोर क्रियाओंके दृश्य अङ्कित किये हैं वे सब प्राचीन धर्म्मसे लिये गये हैं।

ईसाकी छट्ठीं शताब्दीमें प्राचीन धर्म्म पर क्रिश्चियनोंकी बाह्यविजय और भ्रष्टता दोनों पराकाष्ठाको पहुंच गई थी। इस समयसे इतिहासमें जिसे 'अंधकार युग' कहते हैं प्रारंभ हुआ। एक दृष्टिसे देखने पर यह बात बिलकुल नई और आश्चर्य्यजनक जान पड़ती है कि छट्ठीं शताब्दीसे लेकर तेरहवीं शताब्दी तक, जब कि वहमका पूर्ण साम्राज्य फैला था, और भोलापन भी कम नहीं था—डाकिनोंका वध अपेक्षाकृत बहुत कम हुआ। यह बात इस समय चाहे जितनी आश्चर्यजनक प्रतीत हो परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ऐसे वहमोंसे कभी त्रास उत्पन्न नहीं हुआ, बल्कि उनकी वृद्धि ही उनके लिए कल्याणकारी हुई। जितने विश्वासके साथ यह बात मानी जाती थी कि प्रत्येक ईसाईके आसपास शैतान घूमा करता है उतने ही विश्वासके साथ यह बात भी मानी जाती थी कि पवित्र स्वस्तिक (Crass) चिन्ह बनाने, मंत्रित जलके छांटे देने अथवा मरियमके पवित्र नामका उच्चारण करनेसे वह तुरन्त भाग जाता है। ऐसा एक भी साधु नहीं था जिसे शैतान प्रत्यक्ष दर्शन न देता हो। वह कभी डरावने पशुके रूपमें, कभी काले मनुष्यके रूपमें कभी सुन्दर स्त्रीके वेशमें कभी धर्मोपदेशकके रूपमें, कभी प्रकाशमान देवदूतके रूपमें और कभी उससे भी पवित्र स्वरूप* में दिखाई देता था। परन्तु इन सब प्रसंगों पर उसे हार मानकर अपमान तथा तिरस्कारपात्र बनना पड़ता था। एकबार सिप्रियनके हुक्मसे एक निराधार, अज्ञान किन्तु अपने धर्म्म पर दृढ़ रहनेवाली

* जर्सन नामक एक लेखकने अपने एक ट्रेक्टमें दानवोंके ईसाका रूप धारण करनेकी चर्चा की है।

कुमारी पर शैताननें बारंबार धावा प्रारंभ किया। उसे भुलाकर दूषित करनेके लिए उसने अपने समस्त कौशल और बलसे काम लिया, परन्तु वह सब वृथा गया। फिर उसने अपनी समस्त वक्तृत्व शक्ति खर्च करके एक विधर्मी कुलीन युवकके साथ उसका विवाह करा देनेका ढोंग रचा। परन्तु ज्योंही उस कुमारीने स्वस्तिकका चिन्ह बनाया त्योंही उसका सारा भेद खुल गया। उसका स्थूलप्रेम सूख गया और जिस जादूगरने उसे भेजा था उसके पास वह अपनासा मुंह लेकर लौट गया। एक बार महात्मा मोर किसी मंदिरको जारहे थे। रास्तेमें बहुसंख्यक भूतोंने आकर उनको घेर लिया, परन्तु ज्योंही उन्होंने भुत भगानेका मंत्र पढ़ा त्योंही वे सब हवा हो गये। ऐसी ऐसी शिक्षाओं और विश्वासोंसे जो विचार उत्पन्न होते थे वे आधुनिक विचारोंसे इतने भिन्न हैं कि उनको कल्पना करना कठिन है। जनसमुदायके मनमें भूत विद्याकी जड़ बहुत गहरी पैठ गई थी। पैशाचिक अस्तित्वके विचार, अद्भुत दृश्य और विचित्र घटनाओं पर विश्वास होनेके कारण पंद्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दीमें जो त्रास उत्पन्न हुए थे वे सब अंधकार युगमें भी थे। अंतर केवल यही था कि मध्ययुगके लोग बहुत भोले और श्रद्धालु थे इस कारण ये सब क्रियायें निर्दोष रूपमें थीं। यदि वे लोग कम बहमी या अर्द्धभ्रान्तशील होते तो उनके बहमका प्रभाव बहुत त्रासजनक हो उठता। उस समय जो लोग प्राचीन रीति रिवाजकी सीमाके बाहर पैर रखते थे उन पर शैतानकी सवारीका दोष मढ़ा जाता था परन्तु किसी जगह संशय और विरोध उत्पन्न न होनेके कारण ऐसे बहमों से अधिक ज़ुल्म नहीं होते थे।

इन सब विचित्र विश्वासोंके भीतर एक बात बहुत अंधकार युक्त थी। लोगोंको विश्वास था कि बड़ी बड़ी भयंकर

घटनाओं पर मंत्रों अथवा मार्जनीका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता है। इन घटनाओंका मूल कारण दैवीप्रकोप समझा जाता था। प्रत्येक प्रजा अपनी बाल्यावस्थामें ऐसा विश्वास रखती है कि महामारी पुच्छलतारा, अकाल, इन्द्र धनुष, ग्रहण प्रभृति बहुत समयके पश्चात् दृष्टिगोचर होनेवाले उत्पात प्रकृतिके सामान्य नियमसे नहीं, किन्तु आसुरी जीवोंके मदद-से होते हैं। इस प्रकार अर्द्ध-सभ्य जातियोंका चमत्कारक विषयोंकी ओर रहनेवाला सहज विश्वास बहुत दिनों तक बना रहा। अनेक प्रसंगों पर पादरी लोग भी जनता पर प्रकट किया करते थे कि अमुक घटना हमारी अप्रसन्नताके कारण हुई है, ऐसी बातोंके प्रसिद्ध करनेमें रोमके प्राचीन धर्म्मगुरु बहुत सिद्धहस्त थे। वे मध्ययुगकी प्रत्येक असाधारण घटना-से लाभ उठानेसे नहीं चूकते थे। आठवीं शताब्दीमें फ्रान्सदेश-में भारी अकाल पड़ा था। उस समय वहाँके पादरियोंने लोगों-को यह उपदेश देना प्रारंभ किया कि सब लोग हमको अपनी आमदनीका दशांश प्रदान नहीं करते हैं उसीका यह परिणाम है। एकबार नवमीं शताब्दीमें सूर्य्यका खग्रास ग्रहण हुआ। इस अमंगल घटनाको देखकर लोग बहुत भयभीत हुए, क्योंकि उनको विश्वास था इसके कुफलसे ही एक फ्रेन्च राजाकी मृत्यु हुई है! दशवीं शताब्दीमें ऐसे ही उत्पातको देखकर चढ़ाई के लिए जानेवाली एक सैन्य वापिस भाग आई थी। अनेक समय पुच्छलताराओंको देखकर यूरोपीय जनता भयविह्वल हो जाया करती थी। जब कोई पुरुष आक-स्मिक बीमारीसे पीड़ित होकर मर जाता था तब उसकी मृत्युका कारण जादू-प्रयोग समझा जाता था।

इसके अतिरिक्त मध्ययुगसे ठीक सत्रहवीं शताब्दी तक केबोलिस्ट नामक एक गुप्त संप्रदायका पता मिलता है। इस

सम्प्रदायके लोग जादूगरोंके समान खासतौरसे पकड़े जाते थे। इस गुप्तसंप्रदायके विषयमें ठीक ठीक पता नहीं लगता है, किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि उसकी ओर तत्कालीन अनेक प्रसिद्ध पुरुषोंका मन आकर्षित हुआ था और कार्डन एग्रीपा तथा पर्सेल्स जैसे धुरन्धर विद्वान् भी उस पर मुग्ध थे। इस मतमें अनेक यहूदी दन्तकथायें, आसुरीजीव सम्बन्धी प्लेटोके मत और अधिकतः शुद्ध प्रकृतिवादका समावेश था। प्रचलित धर्म्मके विषयमें उसमें एक विशेष प्रकारका अविश्वास भरा हुआ था। वे केवल सिल्फ, सेलामेण्डर प्रभृति एकतत्त्व-निर्मितदेवों को मानते थे। इनके मतसे ये देव मनुष्योंकी अपेक्षा बहुत उन्नत थे, परन्तु अमर नहीं थे और उनमें मानुषी निर्बलता भी थी। प्रकृतिके भिन्न भिन्न तत्त्वोंको देवस्वरूप मानकर उनसे साक्षात करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए उनको दुनियाँके समस्त साधारण व्यवहारोंसे सम्बन्ध त्यागने, तथा उपवास ब्रह्मचर्य्य निरन्तर शान्त अध्ययन तथा प्रकृति और उसके नियमोंके साथ गाढ़ सम्बन्ध द्वारा अपनी आत्माको विशुद्ध बनानेकी आवश्यकता थी। वे अन्य मतावलम्बियोंके ईर्षा द्वेषयुक्त झगड़ोंको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते और प्रत्येक धर्म्मके विषयमें ऐसा विश्वास रखते थे कि ये एक तत्त्व निर्मित देव मनुष्य जातिको नये नये, और भिन्न भिन्न मार्गोंके द्वारा सुधारनेकी चेष्टा किया करते हैं।

ये सरल विचार धीरे धीरे विकारग्रस्त होने लगे और उनमें अनेक स्थूल वृत्तियाँ मिल गईं; क्योंकि किसी भी धर्म्मशिक्षाको आस पासकी वस्तुस्थितिका रंग लगे बिना नहीं रहता है। कुछ समयके पश्चात् इन लोगोंमें ऐसा विश्वास उत्पन्न हुआ कि ये एक तत्त्व निर्मित देव ऐहिकतत्त्वज्ञोंके साथ विवाह

सम्बन्ध करनेकी उत्कट इच्छा रखते हैं। ऐसा होनेसे दोनों पक्षोंको ऐहिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकारके लाभोंकी संभावना बतलाई जाती थी। कहा जाता था कि सिल्फ-की स्वाभाविक आयु कई शताब्दियोंकी होने पर भी मृत्युके पश्चात् उसे दूसरा कोई जीवन नहीं मिलता है, परन्तु उक्त सम्बन्ध हो जाने पर उसका मानवी पति उसे अपना पारलौकिक-जीवन प्रदान कर सकेगा ; यदि वह पापात्मा हो तो अनन्त नरककी यातनाओंसे बचनेके लिए अपनी स्त्रीकी निःशेष मृत्यु ले सकेगा। इन दैवीस्त्रियोंकी सत्यताके विषयमें उनको पूरा पूरा विश्वास था। केवेलिस्ट कहते थे कि वे शुद्ध और सद्गुणी हैं, परन्तु प्राचीन मत वाले ईसाई कहते थे कि वे संतआगस्टैनकी वर्णितकी हुई इन्क्यूबी जातिकी भ्रष्ट चुड़ैलें हैं, इसलिए उनके साथ विवाह-सम्बन्ध करनेवालोंको जीतेजी जला देना चाहिए।

इस गुप्त केबोलिस्ट सम्प्रदायके इतिहासपरसे जाना जाता है कि जो जमाना स्वतंत्रविचार ग्रहण करनेके लिए तैयार नहीं रहता है उसमें प्रचार किये हुए स्वतंत्र-विचार भी अन्तमें अधोगतिको प्राप्त होते हैं। जिस समय धर्म्म-विरोधी दल स्वतः सामयिक प्रवाहमें बह कर संतोंकी अद्भुत कहानियोंके कान काटनेवाले कल्पित आख्यानोंमें निमग्न हो रहे हों, उस समय प्राचीन धर्म्म-मंडलमेंसे खड़े होनेवाले सुधारक यदि अत्यन्त भ्रान्त और जड़वादके विचारोंसे घिरे हुए हों तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है? उस समय ऐहिक-विद्याओंकी ओर बहुत कम लोगोंका ध्यान जाता था। ऐहिक-विद्याका अभ्यास करनेवालोंमें माईकेल सेलसका नाम अग्रगण्य है। उन्होंने ग्यारहवीं शताब्दीके अंतमें दैत्योंके विषयमें एक पुस्तक लिखी थी, उसपरसे जाना जाता है कि उस समय कैसे कैसे

विचार प्रचलित थे। वह लिखता है—'यह जगत् दैत्योंसे परि-पूर्ण है और वे भिन्न भिन्न रूपसे हमारे देशवासियोंको दिखाई देते हैं। मैंने स्वतः कोई दैत्य नहीं देखा, परन्तु जिन लोगोंका उनके साथ स्पष्ट सम्बन्ध रहा है उनको मैं भलीभाँति पह-चानता हूँ। पहले मार्कस नामक एक ग्रीक भूतोंपर विश्वास नहीं करता था, परन्तु जब वह अपना जीवन एकान्त-स्थलमें रह कर व्यतीत करने लगा तब उसके पास झुंडके झुंड भूत आने लगे। वह भूतोंकी आदतों और उनके नटखटोंका वर्णन बहुत बारीकीसे किया करता था।' इस प्रकार सेलसने इस विषयमें खूब जानकारी प्राप्त करके तथा प्रेत-सृष्टिके नियम और उनके कार्य्योंका अन्वेषण करके एक नया ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थमें वह लिखता है कि भूतोंके शरीर होता है। वह किसी सूक्ष्म-तत्त्वसे निर्मित रहता है और इसीलिए वह इच्छानुसार बदल सकता और छोटेसे छोटे छिद्रमेंसे निकल सकता है। ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ भूतोंका प्रवेश न हो सकता हो। ईश्वरकी दी हुई भयंकर यातनाओंसे उनका शरीर जर्जरित हो गया है और इसीलिए वे अपनी यातनाओं-को शान्त करनेके लिए गरम और तर स्थान खोजते रहते हैं। यही कारण है कि वे मनुष्य तथा जानवरोंके शरीरमें बारम्बार प्रवेश करते हैं। इस लेखकके समयमें लोगोंको भूत बहुत लगा करते थे और पागलपन भी उसीका एक परिणाम समझा जाता था।

इससे जाना जाता है कि जो अपराध धर्म्म-निरीक्षकोंने पीछेसे डाकिनी-विद्यासम्बन्धी पुस्तकोंमें सम्मिलित किये, वे समग्र मध्य-युगमें भी प्रवर्तित थे और उनके लिए अनेक समय दंड भी दिया जाता था। इतना होनेपर भी इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि मध्ययुगके ६०० वर्षोंमें जितने प्राणदंड

हुए, वे सब मिलकर पन्द्रहवीं या सोलहवीं शताब्दीके एक दशकमें होनेवाले प्राणांत-दण्डोंके बराबर नहीं हो सकते हैं। बारहवीं शताब्दीसे इस विषयने एक बिलकुल ही नया रूप धारण करना प्रारम्भ किया। जो स्त्रियाँ शैतानको अपना संकेत प्रकट कर सकतीं, अपनी इच्छानुसार अद्भुत दृश्य बतलानेमें समर्थ होतीं और शैतानकी बन्दना करनेके लिए वायुमार्ग-द्वारा डाकिनोंके पूजोत्सव (Sabbath of witches) में जातीं, वे सब डाकिनें समझी जाती थीं। इस विश्वासके कारण उत्पन्न होनेवाले त्रासकी मात्रा पहले तो नाम-मात्रको थी, परन्तु कुछ ही समयके उपरान्त उसका वेग बहुत भयंकर हो गया। कभी कभी थोड़े ही वर्षोंके भीतर जीवित जलाये जाने वाले अभागोंकी संख्या हजारोंपर पहुँच जाती थी। इसके परिणामसे यूरोपके प्रत्येक देशमें असीम-त्रास और नृशंसताकी आँधी उठ खड़ी हुई, डाकिनोंके दमनके लिए सैकड़ों निपुण न्यायाधीश नियुक्त किये गये, इस विषयपर बहुत साहित्य लिखा गया और अठारहवीं शताब्दीके अधिकांश भाग तक इस नर-बलिका अंत नहीं हुआ।

अब हम इस भ्रमके एकाएक उत्पन्न होनेके सामान्य-कारणोंकी खोज करते हैं। मेरे मतसे धार्मिक-विषयोंपर लोगोंके जो विचार थे उनके साथ जादूका निकट-सम्बन्ध था और जादूका इतिहास बढ़ती हुई सभ्यताके साथ साथ धार्मिक-विश्वासोंमें होनेवाले फेरफारके नियमोंका प्रदर्शक है।

हम लूथरकी धर्म्म-सुधारणाके पूर्वकी शताब्दियोंके इतिहासको जितनी ही सूक्ष्म दृष्टिसे देखते हैं, हमको उतनी ही स्पष्ट रीतिसे मालूम होता है कि बारहवीं शताब्दी यूरोपीय जन समाजकी बुद्धि-क्रान्तिका समय था। अनेक संयुक्त-

कारणोंसे—जिनका यहाँ वर्णन करनेमें त्रास उत्पन्न होता है—लेटिन साहित्यका सर्वत्र पुनरुज्जीवन प्रारंभ हुआ; जिसके फलसे यूरोपीय विचार-शक्तिमें बड़ा प्रबल परिवर्त्तन हुआ और जन-साधारणके विश्वासोंपर भी गहरा प्रभाव पड़ा। यह पहला ही अवसर था जब कि कई शताब्दियोंके पश्चात् लोगोंने देखा कि अंध-श्रद्धाके सामने संदेह अपना मस्तक डरते डरते क्रमशः ऊपर उठा रहा है, और शुद्ध प्रकृत-ज्ञानकी जिज्ञासा धार्मिक जोशका स्थान ले रही है। इसका परिणाम यह हुआ कि अभी तक बाहरके लोग ईसाई धर्म्मको जिस तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते थे उसमें कुछ कमी होने लगी। प्रत्येक प्रदेशमें विचार और ज्ञानकी एक अनिश्चित व्यग्रता बहने लगी,—जिसकी पहलेकी सुदीर्घ तंद्राके साथ तुलना करनेसे अत्यन्त आश्चर्य्य होता है। जगह जगह पर घटित होनेवाले नास्तिकताके उदाहरणोंसे प्राचीन धर्मवालोंकी सुख-निद्रा भंग हो गई। ये नास्तिकताके कार्य्य ज्यों ज्यों जोर और जुल्मके साथ बारम्बार दबाये जाने लगे, त्यों त्यों उनमें नई नई शक्ति और दृढ़ता आने लगी। 'ईश्वर और शैतान दोनों एक समान बली हैं' इस शुभाशुभ युद्ध-वाद (manicheism) की आग—जो कुछ समय पहले कुछ चर्चोंहीमें सुलग रही थी, अब वह समस्त आल्बीजेन्सिस लोगोंमें प्रबल वेगसे भड़क उठी, और उसकी शान्ति केवल धर्म्माचार्य्योंके उपदेशसे होनेवाले लाखों मनुष्योंके बध द्वारा हुई। इस समय सबसे पहले अबेलार्डने निष्पक्ष फिलासोफीका बीजारोपण किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि विद्वानोंके मनमें अपने धर्मके मुख्य मुख्य नियमों और सिद्धान्तोंके विषयमें सन्देह बढ़ने लगा। अब-सेविल और कोर्डोवासे भी सख्त और नापाक धर्म्मकी शिक्षा प्रारम्भ हुई, और एवेरोज (एक संस्थाका नाम) का स्वरूप

इतना विस्तृत होने लगा कि कुछ ही समयके उपरान्त उसकी छाया सारे यूरोपके मस्तकपर पड़ने लगी। बड़े बड़े पुरुष संशय-ग्रस्त होकर कहने लगे कि अब शैतानका युग लगा है। इसके पश्चात् ज्योतिष-शास्त्र और उससे उत्पन्न होनेवाली दैवाधीनताकी प्रवृत्ति इस अपवित्र विद्याके साथ जाग्रत होने लगी। उसने अमीरोंके दीवानखानों तथा राजाओंके महलों तकमें प्रवेश किया। लोगोंको विश्वास था कि धर्म्म-सत्ताके विरुद्ध होनेवाले समस्त आवेश, प्रत्येक संशय और समस्त पाखंड मत ही शैतानकी कर्म्म-भूमि और उनकी वृद्धि ही उसके विजयकी निशानी है। ऐसी ऐसी विचित्र धारणाओंके बादलोंसे यूरोपीय आकाश आच्छादित था। इस समयसे यूरोपने एक ऐसी दुःख-दायक स्थितिमें प्रवेश किया, जिसमें मनुष्य शंका करना तो सीख जाता है परन्तु उनको निर्दोष गिनना नहीं सीखता; जिसमें नई नई मानसिक जाग्रतिसे नये नये मत उत्पन्न होते हैं, परन्तु प्राचीन भोले लोग उन सबको शैतानके प्रलोभन समझते हैं। यूरोपमें अभी बुद्धि-स्वातंत्र्यका उदय नहीं हुआ था, और यदि अबे-लार्डके उपदेशोंसे उसकी कुछ किरणें झलकने लगी थीं तो वे इतनी क्षीण और निर्बल थीं कि तत्कालीन घोर अन्धकारको बेधनेकी शक्ति उनमें नहीं थी। अभी स्वतंत्र जिज्ञासाने जन्म नहीं पाया था और सच्चे हृदयसे खोज करने पर भी कुछ आशाकी झलक नहीं दिखाई देती थी। अभी स्वमताभिमानकी प्रणाली अथवा परम्परासे मिलती आनेवाली शिक्षाकी मजबूत दीवालोंका उल्लंघन करनेकी वृत्ति जागृत नहीं हुई थी। मनुष्यबुद्धिका उपयोग करनेमें जिन शंकाओंका उठना स्वाभाविक है उन सबको धर्म्म-मन्दिरोंने शापित ठहरा रक्खा था और इसीलिए मानो विवेकबुद्धि भी शापित

हो गई थी। इतना ही नहीं, किन्तु प्रामाणिकतासे होनेवाली भूलोंको भी सापराध ठहरानेके कारण मानो नैतिकशक्ति भी शापित थी।

इससे जाना जाता है कि विचारोंकी ऐसी स्थितिमें शैतानकी उपस्थितिका ख़याल बहुत ज़ोर पकड़ता है और उससे एक विशेष प्रकारका त्रास भी उत्पन्न होता है। बहु-संख्यक लोग संशयोंसे ग्रस्त होकर उसे दबा देनेकी व्यर्थ चेष्टा करते और उसकी उत्पत्तिको शैतानका काम समझते थे। ज्यों ज्यों उनकी रुचि मूर्त्ति-पूजकोंके तत्त्वज्ञान और मुसलमानोंके भौतिक-विज्ञानकी ओर बढ़ती गई, त्यों त्यों उनके विषयमें उनका तिरस्कार और भय कम होता गया। ज्यों ज्यों उनके ज्ञानकी वृद्धि होती गई त्यों त्यों उनको अपने आसपास फैले हुए स्थूल जड़वाद पर तिरस्कार उत्पन्न होने लगा और इस प्रकार प्रत्येक पीढ़ीका मानसिक झुकाव धर्म्म-संस्थाके विरुद्ध होता गया। इसके विपरीत प्राचीन धर्म्म-मण्डल अपने सुदृढ़ दुराग्रहको पकड़े बैठा था। उसकी दृष्टिमें विरोध अथवा शंका करना भारीसे भारी अपराध था; इसलिए मलिन-सृष्टि (भूत-प्रेतादि) और परलोकके विषयमें उसका जो सिद्धान्त था वह कठोर यातनायें देनेके लिए बड़ेसे बड़ा साधन हो गया और जिसका पूरा पूरा उपयोग करनेके लिए वह सदैव प्रस्तुत रहता था। यदि हम बारहवीं शताब्दीके लगभग दृष्टि डालें तो हमको जन-साधारणमें दिये जाने वाले उपदेश अधिक कठोर और गम्भीर-रूप धारण करते हुए दिखाई देंगे, साथ ही लोगोंकी भक्तिमें एक तीव्र उन्माद या धर्म्मान्धता का गहरा रंग चढ़ता हुआ भी दिखाई देगा। इस समयसे शैतान तथा उसके कृत्योंको तुच्छ गिननेवाली प्राचीन दृढ़श्रद्धा बदल गई, और उसके स्थान पर

शुष्क और विषादयुक्त तपोवाद आ खड़ा हुआ। इस समयसे शैतानका स्वरूप दिन पर दिन अधिकाधिक दुर्जेय होता गया और यीशुकी मनोहरता घटती गई। दशवीं शताब्दीके अंत तक ईसाई चित्रकार यीशुकी मूर्त्तिको स्थिर सौम्यता और शान्तमुख-मुद्रायुक्त तथा दयाके कार्यों में निमग्न एक युवकके रूपमें चित्रित करते थे, परन्तु ग्यारहवीं शताब्दीमें यह बात बिलकुल बदल गई और उसकी मुखाकृति वयस्कके समान कठोर और अधिक खेद-युक्त हो गई। बारहवीं शताब्दीमें यह परिवर्तन सर्वत्र फैल गया। आधुनिक समयके एक विद्वान् पुरातत्त्ववेत्ताने लिखा है कि उस समयसे यीशुकी मूर्त्ति बहुत उदास और भयानक बनाई जाने लगी और वह प्रायः यहूदियोंकी ईश्वरमूर्त्तिसे मिलती जुलती हुआ करती थी; क्योंकि उनका विश्वास था कि भयसे ही ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। इसी समय धर्म्ममन्दिरों में एक नये तपका आविष्कार हुआ अर्थात् भक्तगण अपने शरीरपर काँटेदार चाबुक मारकर रक्त बहाने में वृहत् पुण्य गिनने लगे। इसके कुछ ही समय पश्चात् फ्लेगेरेएट नामक एक पंथ खड़ा हुआ। उसके कठोरव्रत और ऐहिक पापोंके लिए आवेशयुक्त प्रलापों द्वारा कल्पनाको प्रज्वलित करनेवाले विषयोंकी ओर बहुसंख्यक लोगोंका मन अकर्षित हुआ। इसी समय धार्मिक अत्याचार जिसका अनेक शताब्दियों से नामोनिशान नहीं था फिर जाग्रत हुआ और उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। तेरहवीं शताब्दीके प्रारंभमें तीसरे इनोसेएटने एक धर्म्म-निरीक्षक सभा स्थापित की और पाखंड मतको दबा देनेके लिए उसने समस्त यूरोपीय राजाओंसे प्रार्थना की। इसके एक शताब्दीके भीतर ही भीतर एक नये ढङ्गका न्यायालय स्थापित किया गया, जिसके द्वारा नास्तिकताके लिए सजा दी जाने लगी।

इस प्रकार दुराग्रही धर्म्मगुरुओं और उनके कारण होने-वाले झगड़ोंसे जो त्रास उत्पन्न हुआ, वह कुछ समयके पश्चात् निम्नवर्णके लोगोंमें उतर आया। धर्म्म-निरीक्षकगण यह उपदेश देते हुए कि शैतान दुष्ट कार्य्य करता हुआ घूमा करता है सर्वत्र भ्रमण करते थे; और ऐसे लोग जिनपर जादूका अपराध लगाया जाता था उनके पहले शिकार बनते थे और उनको अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता था। इस कारण सबवर्गके लोगोंका ध्यान केवल इसी एक विषयकी ओर झुका हुआ था और वे एक भयंकर आतंकसे त्रसित थे। अनेक लोगोंका मन ठिकाने न होनेके कारण वे ऐसा सम-झने लगते थे कि उनका शैतानसे कुछ स्पष्ट सम्बन्ध हो गया है। कहने का मतलब यह है कि अपने आसपास शैतान की उपस्थिति देखनेकी उत्कंठा सब लोगोंके मनमें बढ़ गई थी।

उपरिलिखित कारणोंमें कुछ सामाजिक और राजकीय कारण भी सम्मिलित थे। समय समय पर सुरक्षाकी कमी और अनाथतासे उत्पन्न होनेवाली अत्यन्त निराशा लोगोंमें फैल गई थी और उससे भयंकर कल्पनायें और उनके साथ साथ उत्पन्न होनेवाला उन्मत्त और प्रतिद्वन्दी जोश भी पैदा हो गया था। धर्म्म-निरीक्षकोंको अनुभव था कि जिन अप-राधियोंको जीवित दशामें जला देनेकी सजा दी जाती थी उनमेंसे अधिकांश स्त्रियाँ ही होती थीं और उन बेचारियोंका जीवन किसी न किसी भारी दुःखसे घिरा रहता था। उनका यह भी अनुभव था कि मधुर बाजोंसे मनोवृत्तियाँ नरम पड़ती हैं और दुःखकी कटुता कम हो जाती है,—भूताविष्ट लोगों पर तो उसका आश्चर्य्यजनक प्रभाव पड़ता है।

चौदहवीं शताब्दीमें एक ऐसी घटना हुई कि जिसके कारण इस जुल्मको बहुत उत्तेजन मिला । उक्त घटना मनुष्य इतिहासमें बहुत हृदयद्रावक और करुणाजनक गिनी जाती है । यह घटना काली महामारी थी । एक जर्मन डाक्टरने हिसाब लगाकर लिखा है कि ६ वर्षके भीतर ढाई करोड़ आदमी अर्थात् समस्त यूरोप महाद्वीपकी जन-संख्याके एक चतुर्थांश मनुष्य इस महामारीके बलि हुए! बड़े बड़े शहर आधे खाली हो गये और देहातके बहुसंख्यक ग्राम तो बिलकुल ही जन-शून्य हो गये । मनुष्यके दिमाग पर इससे अधिक भयंकर प्रभाव डालनेवाली दूसरी और कोई बात हो सकती है या नहीं इसमें सन्देह ही है। देखते हैं कि आजकल भी महामारीसे धर्म्म-विषयक कितना भय उत्पन्न होता है, फिर जिस समय सर्वसाधारणको यह विश्वास था कि ऐसी नर-संहारक बीमारियाँ दैवीकोपसे ही हुआ करती हैं उस समयका क्या पूछना है? इस भयंकर मरीने सबके होश उड़ा दिये—सभी भय-विह्वल हो गये । इसका पहला परिणाम यह हुआ कि बेचारे महामारीसे बचे हुए दुःखग्रस्त लोगोंने भयके मारे अपनी समस्त जायदाद धर्म्म-मन्दिरोंको अर्पित कर दी । इससे धर्म्माचार्य्यगण अतुल सम्पत्तिके स्वामी बन गये । दूसरे सौ वर्षसे शान्त बैठे हुए फ्लेरेंगेट मतावलम्बियोंकी संख्या दश गुनी बढ़ गई और उनके भजनोंसे यूरोपका प्रत्येक प्रदेश गूँजित होने लगा । फिर फ्लांडर्स और जर्मनीमें नाचनेका भूत सवार हुआ । हज़ारों आदमी इकट्ठे होकर अनेक हावभावके साथ एक विचित्र शब्द करते हुए नाचते तथा किसीकी परवा न करके शैतानका जयघोष किया करते थे । इस समय स्विटजलैंड और जर्मनीके कुछ हिस्सेमें यह गप उड़ी कि यहूदी लोगोंके जहर फैलानेसे यह बीमारी पैदा हुई थी ।

यद्यपि रोमके धर्म्माध्यक्षने इस भ्रमको मिटानेके लिए उदार प्रयत्न किया, तथापि उस अभागी जातिके बहुसंख्यक लोग मार डाले गये। कहा जाता है कि इसी कारण केवल सेन्सहीमें कई सहस्र आदमियोंको अपनी जानसे हाथ धोना पड़ा था। कुछ लोग बीमारीका कारण यह बतलाते थे कि इस समय जिन नोकदार जूतोंका प्रचार हुआ है उससे प्रभुका करुण अपमान होता है और यह नरसंहार इसी अपमानका प्रतिफल है।

यहाँ पर यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि इस समयसे डाकिनोंके खोजनेका काम बहुत तेजीके साथ चलने लगा और वह पन्द्रहवीं तथा १६ वीं शताब्दीमें पराकाष्ठाको पहुँच गया। उस समय सारे यूरोपमें अँधेरे और त्रास फैला हुआ था। उस समय बुद्धितत्व धर्म्मके आधार-स्तम्भोंको जर्जरित कर चुका था और मानसिक प्रगतिके साथ साथ नैतिक अधोगति भी हो चुकी थी। यह अधोगति धर्म्माचार्य्योंकी धन-सम्पन्नताके कारण और भी गम्भीर हो गई थी। इस उथल पुथलमें शैतान और पापका भान ज़रा भी कम नहीं हुआ। उस समय इन नारकीय यातनाओंसे मनुष्योंको मुक्त करनेके लिए लोगोंको एक सत्य विधि और सत्य मार्गकी अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी, परन्तु उस समय ईसाई-धर्मसंस्था—जो ईसाईजगत्की एक मात्र आधार भूत थी—मृत्युकी अंतिम श्वासें भर रही थी। धर्म्म-विचारकी मर्यादा अंधकारमें लीन हो गई थी और प्रत्येक पंथवाले यही दावा करते थे कि मोक्षके लिए हमारा मार्ग ही सबसे सीधा और सत्य है। शंका करना सर्वसाधारणकी दृष्टिमें एक दंडनीय अपराध समझा जाता था। परंतु तर्कयुक्त गवेषणा और सत्यकी खोजके लिए शंका करना जितना आवश्यक था उतना ही आतंकजनक भी था।

स्वतंत्र विचारोंसे बिलकुल अनभ्यस्त, विचारक्षेत्रके विस्तारसे घबड़ाये हुए तथा सत्यधर्म्मकी गहरी आवश्यकताका ज्ञान रखनेवाले और न्याय तथा संकल्पशक्ति पर शैतानका प्रभाव माननेवाले मनुष्य एक सीधे उपयुक्त और कल्याणकारी मार्गकी खोजमें हैरान थे; अर्थात् सत्यकी जिज्ञासा और घोर भयके प्रभावसे मनुष्योंका मन डाँवाडोल रहा करता था। फलतः समग्र यूरोप इसी भयसे व्याकुल हो उठा और उसने राष्ट्रीय जीवनकी चैतन्यता हरण कर ली; यही नहीं, प्रत्येक प्रकारके विचार और कर्मों पर भी उसका प्रभाव पड़ा।

लूथरकी धर्म्मक्रान्तिके समान मनुष्यके मस्तिष्कको भ्रान्तिपूर्ण भयसे परिणाममें स्वतंत्र करनेवाला दूसरा कोई प्रयत्न यूरोपीय दुनियाँ में नहीं हुआ। इसके फलसे अनेक नये मठ निर्म्मित हुए जिनमें पहलेके उपद्रव मचानेवाले लोग खुशी और स्वतंत्रताके साथ एक सीमाके भीतर धर्म्मचर्चा करके संयतभावसे रहने लगे। इसके अतिरिक्त समस्त धर्म्म-क्षेत्रों पर जो मताभिमान और कर्म्मकाण्डकी मोटी पपड़ी जम गई थी वह उखड़ गई और इसके साथही साथ धर्म्मशिक्षा भी धीरे धीरे नीतिकी ओर झुकने लगी। सबसे अधिक महत्वकी बात यह हुई कि उससे धर्म्मगुरुओंकी महत्ता घट गई और इस प्रकार यूरोपीय बुद्धिको व्यवहारप्रिय बनानेका मार्ग मिल गया। यूरोपियन लोगोंकी यह व्यवहार प्रियता आधुनिक सभ्यताका विशेष लक्षण है। इस प्रकार इस धर्म्मक्रान्तिका परिणाम महान् आशीर्वाद स्वरूप होने पर भी जिस समय जिस बुराईके दूर करनेके लिए उसका जन्म हुआ था उस समय उसे बहुत उत्तेजन मिला। जिस प्रकार रोम सम्प्रदायवाले दुराग्रहवश अपने मतकी समस्त बातोंको परम सत्य कहते और उनको मजबूतीके साथ पकड़े

हुए थे, उसी प्रकार प्रोटेस्टेण्ट मतवाले भी अपने धर्म्ममें कट्टरता प्रकट करते थे। यदि एक सम्प्रदाय पोपकी अजेय-सत्ता पर विश्वास रखता, तो दूसरा सम्प्रदाय भी उतनी ही दृढ़तासे अपने धर्म्मकी प्रामाणिकता पर गर्व प्रकट करताथा। भ्रान्तिके मार्गसे बाहर निकलनेमें बहुत समय लगता है। कई सौ वर्षके मताभिमानने लोगोंके मस्तिष्कमें ऐसा घर कर लिया था कि उसके निकालने में बहुत श्रम उठाना पड़ा। सत्य-का स्वरूप, मानवीशक्तियोंकी हीनता, अनुमानके नियम और निष्पक्ष अन्वेषणके लिए जिन सब संयोगोंकी आवश्यकता होती है, उन सब बातोंका ज्ञान उस समयके अग्रगण्य पुरुषों-को नहीं था। यदि न्यायशास्त्रका संकुचित अर्थ करें तो कह सकते हैं कि उस समय उसका अध्ययन खूब होता था, परंतु मानसशास्त्रके समग्रक्षेत्र तथा तर्कके नियम और उसकी सीमाका विशाल अवलोकन उस समय नामको भी नहीं था। उस समय विश्वास था कि तर्कशक्तिका उपयोग धार्मिक बातों-में उतनी कड़ाईके साथ नहीं किया जासकता जितना कि अन्य बातोंमें। भोले या तर्कशक्तिहीन व्यक्ति ही श्रद्धालु समझे जाते थे।

ऊपर लिखी बातें जब अंतमें धर्म्मक्रान्तिके रूपमें परिणत हुईं तब उन सबने मिलकर ईसाई जगतमें इतना अधिक धर्म्म-भय फैला दिया कि धीरे धीरे चारों ओरसे गंभीर चिन्ताके बादल घिर आये और धर्म्मसंस्थाओंके भविष्यके विषयमें चिन्ता होने लगी; साथ ही शैतानकी उपस्थितका भान भी अधिक स्पष्ट और उग्र हो गया। यद्यपि इस विषयकी जड़ विद्वानोंके गहन विषय सम्बन्धी वाद-विवादोंमें गर्भित थी, किन्तु उससे जनसाधारणकी स्थूल भ्रान्तिओं पर दुहरा प्रभाव पड़ा। यह सच है कि अज्ञान लोकसमुदाय अपने

उपदेशकोंके गूढ़ वादविवाद को नहीं समझता है, किन्तु उससे उत्पन्न होनेवाले विचारों के सामान्य स्वरूपको वह शीघ्र ग्रहण कर लेता है। उच्चवर्गके लोगोंका मन शैतानके अस्तित्वसे परिपूर्ण रहनेके कारण वे जादू सम्बन्धी वृत्तान्तोंकी सत्यताकी ओर सहज विश्वास रखते और डाकिनों पर दोषारोपण करके उस भ्रान्तिकी वृद्धि करते थे। जब तक उक्त विश्वास केवल नीच वर्णोंके लोगोंमें रहता है तब तक उसका अस्तित्व मंद और निष्क्रिय रूपमें रहता है, परन्तु जब न्यायप्रवर्त्तक अपने कायदों द्वारा और धर्माध्यक्ष अपने पवित्र फरमानों से उसका तिरस्कार करते, धर्म्माचार्य्य अपने उपदेशों द्वारा उसकी निन्दा करते और धर्मनिरीक्षक गण हजारों लोगोंको अपराधी कहकर शूलीपर चढ़ाते हैं, तब मनुष्योंकी कल्पनाशक्ति प्रज्वलित हो उठती है, त्रासकी गति भयंकर संक्रामक हो जाती है और परिणाममें भ्रान्तिके उदाहरणोंमें वृद्धि होने लगती है। उक्त सत्ताधिकारियोंके मनमें इन सब बातों पर जितनी अधिक श्रद्धा होती है, उतने ही अधिक विश्वासके साथ ये क्रूर कर्म अमलमें लाये जाते हैं।

धर्म्मक्रान्तिसे उत्पन्न होनेवाले विचारोंका डाकिनी-वृत्ति पर कैसा प्रभाव पड़ा इसका उज्ज्वल उदाहरण लूथरकी जीवनीसे मिलता है। अत्यन्त घोर पापोंका गहरा तथा तीव्र-भान ही उसके चारित्र्यका मुख्य लक्षण था। एकबार वह विटनवर्गके एकान्त मठमें बैठा था, इस समय सहसा वह मृत्युकी छायाके नीचे कैसे आगया, तथा एकबार उसे ऐसा मालूम हुआ कि मानों उसके पैरोंके नीचे नरकके किवाड़ खुले हैं, इत्यादि विषयों तथा ऐसी अनाथ और नैराश्ययुक्त दशा-का कि जिसमें जीवन भारस्वरूप प्रतीत होने लगता है, उसने बड़ी मार्मिकभाषामें वर्णन किया है। अपनी नैतिक अयोग्यता-

के तीव्रभानके कारण उसकी बुद्धि संशयग्रस्त हो गई थी और इसीलिए वह दुःखग्रस्त रहा करता था। वह लम्बी और कठिन खोजके उपरान्त प्रोटेस्टेएट धर्म्मके सिद्धान्तों पर पहुँचा। इस कार्य्यमें उसे विरुद्ध निर्णयोंके मध्यमें दुःखसे गोता खाते खाते और लगातार कई वर्षों तक उत्तेजन अथवा अनुकम्पाके एक शब्दकी सहायताके बिना कई प्रकारके विचारों-के साथ युद्ध करना पड़ा। तीव्र कल्पना शक्तिवाले मनुष्योंको जब ऐसे संयोगोंका सामना करना पड़ता है तब उनके आस-पास एक धार्मिक वातावरण छा जाता है और उनके मनमें जो जो विचार उठते हैं वे सब इसी वातावरणमें से होकर जाते हैं। लूथरका भी यही हाल था। उसे जाग्रत-स्वप्न होते थे, और उसकी तर्कशक्ति निरंतर डोला करती थी। वह इन सब कामोंको शैतानका काम समझता था और यही कारण है कि उसके जीवनमें शैतान—शैतान यही एक ख्याल बंध गया था। प्रत्येक संकट अथवा मानसिक क्षोभके समय वह शैतानकी प्रत्यक्ष शक्तिका अनुभव करता था। वह विटनवर्गके एकान्त मठमें बहुधा शैतानकी खटखट ध्वनि सुना करता था; यह बात उसके लिए इतनी साधारण होगई थी कि वह एकबार सोते समय किसी आवाजसे जाग उठा, परन्तु जब उसने आँख खोलकर देखा तो मालूम हुआ कि वह केवल शैतान-की शरारत है, इससे वह फिर सो गया। वार्टबर्गके किलेमें उसने शैतानको देखकर उसे एक स्याहीकी बोतल फेंक कर मारी थी, उसका काला निशान अभी तक वहाँ बतलाया जाता है। एकबार वह आत्माके स्थूलरूप धारण करनेके विषयमें गहरी गवेषणामें निमग्न था, उसी समय शैतान सामने आकर उसे एक नई युक्ति बतला गया। उसके विचारोंकी ऐसी स्थिति होनेके कारण शैतानके पराक्रमकी जो

जो बातें उसके सुननेमें आती थीं उन सबको वह सत्य समझता था । वह लिखता है कि एक बार एक वृद्ध पूजा कर रहा था, इसी समय पीछेसे शैतानने सुअरकी नाईं शब्द करके उसके कार्य्यमें विघ्न डाला । टागोमें उसने एक सद्गृहस्थके घर उत्पात मचाया और वह मिट्टीमें घड़े वर्तन आदि तोड़ फोड़ कर उसके सिर पर फेंकने लगा और अंतमें उसने उस घरकी घबड़ाई हुई गृहिणी तथा नौकर-चाकरोंको घरसे बाहर निकाल दिया । एक बार वह न्यायालयमें एक बड़े बैरिस्टरके वेशमें आया और पूर्ण-योग्यताके साथ अपना काम बजा कर चला गया । मूर्ख, अंगहीन अंधे तथा बहरे मनुष्योंमें शैतान-का प्रवेश माना जाता था । बेचारे वैद्य और हकीम लोग समझाते थे कि अंगहीनता और बहिरापन प्रभृति प्राकृ-तिक कारणोंसे होता है, परन्तु लोगोंकी समझमें ये अज्ञानी मनुष्य थे—ये शैतानकी महिमाको क्या जानें । लूथरका कान तड़कता तो वह इसे शैतान हीका कार्य्य समझता था । ग्रहण, बिजलीकी कड़क और महामारी प्रभृति सब पिशाच-वर्गके कार्य्य समझे जाते थे । आत्मघात करनेवालोंके विषयमें भी यही ख़याल था, अर्थात् जिस प्रकार ठग लोग मुसाफिरोंको गला घोंटकर मार डालते थे, उसी प्रकार शैतान भी अज्ञात-रीतिसे उनके प्राण हरण किया करता था । वह मनुष्योंको वायुमार्ग-द्वारा स्थानान्तरित कर सकता था और बच्चा पैदा करनेकी सामर्थ्य रखता था । ऐसे एक बच्चेसे लूथरका पाला पड़ा था । इस महान् सुधारकमें एक प्रशंसनीय गुण यह था कि वह बच्चों पर बहुत प्रेम किया करता था, परन्तु उस समय उसने अपने साथियोंको यही आदेश दिया कि तुम इस बच्चेको शीघ्र नदीमें फेंक दो—जिससे तुम्हारा घर शैतानके अस्तित्वसे मुक्त हो जाय । उसके मस्तिष्कमें ऐसे ही

विचारोंका साम्राज्य था—इसी कारण वह डाकिनोंको पकड़ पकड़कर जला देनेका उपदेश दिया करता था।

प्रोटेस्टेण्ट मतके सुधार प्रचलित होनेके पहले तथा पीछे-की शताब्दियोंमें डाकिनोंके इतिहासमें जो चित्र अङ्कित हुए हैं उनसे अधिक भयानक तथा आश्चर्य्यमय चित्र अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते। जब जब साक्षरोंमें मतभेद होता था तब तब अज्ञान और निरक्षर प्रजाजनोंमें भूत-प्रयोग परछाहींके समान उनके पीछे आ खड़ा होता था। डाकिनोंको पीड़ा देनेमें प्रोटेस्टेण्ट और रोमीय दोनों मतवाले परस्पर प्रति-स्पर्धा किया करते थे। कल्पना-शक्ति सचमुचमें एक विचित्र वस्तु है। वह अपने प्रारम्भीय रूपके अनुसार सारी सृष्टिपर स्वनिर्म्मित मूर्त्तियोंकी छाया डालती है और जीवनकी समस्त घटनाओंको अपनी ओर आकर्षित करती है। अभी तक इसी शक्तिका साम्राज्य था। बेचारे भोले और भयभीत लोगोंका मन शैतान और अमानुषी शक्तियोंकी ओर आकृष्ट था, इस-लिए वे सर्वत्र शैतान और शैतानके कामोंकी मूर्त्तियाँ देखा करते थे। इस समय भ्रान्ति और धूर्त्तताका ऐसा विचित्र सम्मेलन हुआ था कि उसका पृथक्करण करना टेढ़ी खीर थी। कभी कभी अनेक महत्त्वाकांक्षा रखनेवाली स्त्रियाँ अपने कामोंके लिए बहुत जोखिम उठाकर भी अपनेको अमानुषी-शक्ति-सम्पन्न प्रकट किया करती थीं। उनके मुँहसे ऐसी बातें सुनकर अत्यन्त साहसी और बलवान् पुरुष भी उनके आगे दीन बनकर थर थर काँपने लगते थे। कभी कभी अनेक मनुष्य अपनी स्त्रीसे अप्रसन्न होकर धर्म्ममंदिरमें अलंघ्य ठहराई हुई पवित्र गाँठसे मुक्त होनेके लिए कचहरीमें जाकर कहते थे कि मेरी स्त्री डाइन है। इस प्रकार बेचारी अनेक निरपराध स्त्रियोंको अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ता था।

कभी कभी अनेक चालाक अपराधी वादीपर भूत-प्रयोगका दोष मढ़कर आप निर्दोष बनकर छूट जाते थे। कहनेका मतलब यह है कि अनेक अवसरोंपर यह अपराध निजी बैर भँजानेका एक अच्छा साधन बन जाता था, अथवा कभी कभी सच्चे अपराधोंको जादूका स्वरूप दे दिया जाता था। ओलोंकी वर्षा या कोई विचित्र बीमारी आदिका कारण डाकिनोंकी उपस्थितिसे हुआ समझा जाता था। परन्तु खोज करनेसे जाना जाता है कि इनमेंसे अधिकांश बातें नितान्त भ्रम-मूलक थीं। ऐसे विश्वासके समर्थकोंकी एक युक्ति यह भी थी कि बहुसंख्यक अपराधियोंने शैतानके साथ संबंध रखनेका इकबाल स्वेच्छापूर्वक किया है और मरते मरते तक उन्होंने अपना बयान नहीं बदला। क्या धार्मिक और क्या राजनैतिक प्रत्येक बड़ी उथलपुथलमें एक प्रकारकी उन्मत्तता या अंधजोशका आधिक्य दिखाई देता था। १६वीं शताब्दीमें प्रत्येक प्रकारकी उन्मत्तता या पागलपन डाकिनी-प्रयोगकी कक्षामें सम्मिलित हो गया था। उस समय शैतान-सम्बन्धी प्रत्येक तत्त्वकी खोज बहुत बारीकीसे की गई थी और प्रच-लित विचारोंका वर्णन ऐसे ग्रन्थोंमें किया गया था जो कि उस समय अत्यन्त प्रामाणिक और पवित्र समझे जाते थे। कई अवसरोंपर अनेक त्रस्त बुढ़ियाँ पहले तो अपनी निर्दोषता पर विश्वास दिलाती थीं, परन्तु फिर शीघ्रही धर्मभयसे डरकर प्रश्न करने लगती थीं, 'क्या हमारी अज्ञान अवस्थामें भी शैतान हमारे शरीरमें प्रवेश कर सकता है?' अंतमें बेचारीं ऐसा विश्वास कर बैठती थीं कि हम सचमुचमें अपराधिनी हैं। अनेक समय अन्वेषणकी कठोरता, महा-दुःखदायी मृत्युके भय अथवा उनके जर्जरित अंगोंपर दी जानेवाली भयं-कर पीड़ासे उनको बुद्धि भ्रमित हो जाती थी। दुःखके

आवेगसे उनका माथा घूमने लगता था, उनको अपनी निर्दोषताका ज्ञान चला जाता था और ऐसी करुणा-जनक अवस्थामें वे बेचारीं चिताके समीप बलात् पहुँचाई जाती थीं। उस समय उनको ऐसा मालूम पड़ता था कि हम सदैवके लिए नरकमें गिरनेको जा रही हैं। इन अत्याचरोंको उत्तेजन देनेमें धर्म्मगुरु बड़े उत्साहसे लगे हुए थे। उन्होंने इस काममें जर्मनी, गॉल, स्पेन, इटली, फ्लाँडर्स, स्वीडन, इङ्गलेण्ड और स्काटलेण्डमें एक समान उत्साह प्रदर्शित किया था। एक प्राचीन लेखक इस अत्याचारका अनुमोदन करते हुए लिखता है कि, केवल एक कोमो-प्रान्तमें आठ दस न्यायाधीश सदैव काम करते थे; और एक वर्षके भीतर उन्होंने १००० मनुष्योंको दण्ड दिया था। इसी प्रकार बहुत समय तक प्रतिवर्ष शताधिक मनुष्योंकी बलि होती रही।

ये धर्मनिरीक्षक पढ़े लिखे थे, इससे लगभग ३०० वर्षोंमें इस विषय पर बहुत साहित्य इकट्ठा हो गया। इसमें डाकिना-प्रयोगके अनेक प्रकारों और उनके विशेष सिद्धान्तोंका वर्णन बहुत सावधानीके साथ किया गया था। उन सब ग्रन्थोंको धर्म्माचार्य्य बहुत मान्य, और प्रामाणिक समझते थे। वर्तमान समयमें उन ग्रन्थोंके पत्र लौटते ही हम उनको मूर्ख और बेसमझ कहकर उनकी हँसी उड़ाते हैं। मनुष्योंके दुःखकी ओर उनकी लापरवाही, उनकी दाम्भिक लेटिन भाषा और भौतिक विज्ञानकी जबरदस्त भूलोंको देखकर वे सचमुच ही हास्यास्पद प्रतीत होते हैं, परन्तु उनके विचारोंसे आज कलका वातावरण इतना भिन्न हो गया है कि यदि उनकी बुद्धिके विषयमें हमारे मनमें हलके विचार उत्पन्न होते हैं तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। आज

कल जब हम शैतनाके उत्पातोंकी चर्चा सुनते हैं तब उसे आदियुगकी परियोंकी दंतकथाओंके समान असंभव कह कर उड़ा देते हैं, और उनकी ओर जरा भी ध्यान नहीं देते। अतएव हमको यह बात न भूल जाना चाहिए कि जिस दृष्टि-बिन्दुसे वे ग्रन्थ लिखे गये थे, वह दृष्टिबिन्दु वर्तमान समयसे बिलकुल भिन्न है। इस भ्रमके विरुद्ध पीछेसे जो ग्रन्थ लिखे गये उनकी अपेक्षा उसकी पुष्टि करने वाले ग्रन्थोंकी संख्या बहुत अधिक थी; यही नहीं, विद्वता, वाद-चातुर्य्य और साधारण सामर्थ्यमें भी उन्हींका आसन ऊँचा था। कई शताब्दियों तक समस्त विद्वान् पुरुष उसके पक्षमें थे और उसकी सत्यता स्थापित करनेके लिए भरसक प्रयत्न किया करते थे। तेरहवीं शताब्दीके मर्मज्ञ पुरुष थामस एकविन्स-का कथन है कि दुनियामें होनेवाली समस्त भयंकर बीमा-रियों और प्राकृतिक उपद्रवोंका कर्त्ता शैतान ही है। वह चाहे जिसको हवामें उड़ा ले जा सकता है और अपनी इच्छा-नुसार उसका रूप बदल सकता है। पेरिस विश्वविद्यालय-का अध्यक्ष गर्सन नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् भी उसके पक्षमें था। मेकियाबेली* के पश्चात् स्वतंत्र मस्तिष्क वाला कोई राजनीतिविद् पुरुष हुआ है तो वह बोडिन ही है। उसने डाकिनोंके विषयमें बढ़ती हुई अनास्थाको दबा देनेमें अपनी समस्त चतुराई और विद्वताका उपयोग किया था। ऐसा कोई नियम नहीं है कि, जो विद्वान् हो वह भूल न करे। क्योंकि उस समय धर्म संस्थाओं द्वारा की हुई प्रतिज्ञाओंका समर्थन

*मेकियावलीका जन्म ई० सन् १४६६ ई० की तीसरी मई को फ्लोरे-न्समें हुआ था। उसने राजनीति बिषयक कई पुस्तकें लिखी हैं। वह राजतंत्रबादी था उसे कुटिल नीति खूब याद थी। भारतवर्ष में उसकी उपमा चाणक्य से दी जाती है।

और उनका विस्तार करना ही तर्कशक्तिका उद्देश्य गिना जाता था। उस समय उपदेशके प्राथमिक तत्वों पर निरंकुश चर्चा चलानेवाला कोई नहीं था और न तर्कशक्ति ही धर्माधिकारियोंके निर्णयके विरुद्ध अपना सिर उठाने की ताकत रखती थी। वर्तमान समय में हम केवल इतनाही जानकर नहीं रह जाते हैं कि प्रतिज्ञा परसे निकाला हुआ निगमन सत्य है या नहीं, प्रत्युत उसका परिणाम वस्तुतः संभवित है या नहीं, इसका भी विचार करते हैं, और यदि वह असंभवित प्रतीत हो तो हम मूल प्रतिज्ञाकी परवा न करके उस निगमन को ही अस्वीकार कर देते हैं। परन्तु भूतविद्याके समयमें एक दूसरे प्रकारके तर्कशास्त्रका चलन था। लोगोंको पूरा भरोसा था कि हमको जो सिद्धान्त सिखलाये जाते हैं वे सत्य हैं। कोई भी घटना जो इन सिद्धान्तोंसे मेल खाती थी उनके मनमें सहज ही जम जाती थी। ये सिद्धान्त विचारशक्तिको दबाकर कल्पनाशक्तिके आधार पर चलते थे और ऐहिकविचार उनकी श्रद्धामें कुछ बाधक नहीं होते थे। निपुणसे निपुण व्यक्ति भी सहज विश्वासी हुआ करते थे, क्योंकि उनकी निपुणताका मुख्य उपयोग धार्मिक नियमों तथा प्रत्येक प्रकारकी अद्भुत घटनाओंके बीच सादृश्यता खोज निकालनेमें होता था, और उसमें वे जितनी सफलता पाते थे उतनी ही अधिक उनकी विद्वत्ता समझी जाती थी।

धर्मसंस्थाओंकी ओरसे सर्वत्र ऐसा प्रचार किया जाता था कि असंख्य पिशाच जगतमें निरन्तर घूमा करते हैं, और वे मनुष्यजातिको इस लोकमें दुःख पहुँचाने तथा परलोकके सुखसे भ्रष्ट करनेके लिए सदैव प्रयत्न किया करते हैं। ये पिशाच ऐश्वर्य्यभ्रष्ट देवदूत हैं। इनकी अनेक दैवीशक्तियाँ नष्ट नहीं हुईं, इस कारण ये मनुष्योंसे अधिक ज्ञानवान

और शक्तिशाली हैं। उक्तविश्वास के कारण अनेक नये सिद्धान्त उत्पन्न हुए। यथा—भूत-पिशाच निरन्तर इस दुनियाँमें घूमा करते हैं, अतएव किसी समय उनकी उपस्थितिका प्रत्यक्ष चिह्न दिखाई देना असंभवित नहीं है; मनुष्य जातिको किसी न किसी प्रकार दुःख पहुँचाना उनका उद्देश्य है—ऐसा करनेमें उन्हें एक तरहका सुख मिलता है, अतएव अपनी दैवीशक्तियोंका उपयोग करके उनका मनुष्योंके प्रति ईर्षा करना स्वाभाविक है। इसके सिवा एनकेन प्रकारसे मनुष्य जातिके पारलौकिक सुखको नष्ट करना भी उनका उद्देश्य है, अतएव उनको प्रसन्न करनेकी इच्छासे जो मनुष्य अपने पारलौकिक सुखको विसर्जन करनेके लिए उद्यत होते हैं, वे प्रसन्नतापूर्वक उनका दासत्व स्वीकार करलेते और उनकी आज्ञाको सहर्ष माथे पर चढ़ाते हैं। उस समय यह बात पूर्ण विश्वासके साथ मानी जाती थी कि उक्त पैशाचिक सम्बन्ध और उसके द्वारा उनकी शक्तियोंका यथेष्ट उपयोग किया जा सकता है। जेकबके पुत्र लेवीने अपने आज्ञापत्रोंमें स्पष्ट रीतिसे आदेश दिया था कि डाकिनोंको जीवित छोड़ना उचित नहीं है। ओन्डरकी डाकिनोंका बृत्तान्त इस विषयका उत्तम उदाहरण है। प्रारम्भींय गुरु एक मत और एक स्वरसे जादूका तिरस्कार करते थे। इस विश्वासके सार्वत्रिक हानेका चिन्ह प्रत्येक जातिके ग्रन्थोंमें मिलता है।

यदि कोई मनुष्य कभी साहस करके कहता कि शैतानमें ऐसा शक्ति नहीं हैं, अथवा है भी तो उसका उपयोग करना उनके लिए असंभवित है, तो वाइविलमेंसे दृष्टान्त देकर वह तुरन्त चुपकर दिया जाता था। प्राचीन वाइविलमें लिखा है कि शैतानने प्रभुके आदेशसे जेकबको दुःख दिया और उस घरको जिसमें उसका पुत्र भोजन कर रहा था जमीनदोस्त

कर दिया। फिर उसी ईश्वरप्रणीत ग्रन्थ (वाइविल) में लिखा है कि चार फिरस्ते चारों पवनको बाँध सकते और जगतको दुःख दे सकते हैं; यह बात भी उक्त कथनको पुष्ट करती है, क्योंकि संत आगस्टाइनके मतसे फिरस्ता शब्द भले और बुरे-दोनों प्रकारके देवदूतोंके लिए व्यवहृत होता है। इसके सिवा शैतानका एक और उपनाम था, लोग उसे 'अन्तरिक्षकाराजा' कहा करते थे। फिर वह अपने असाधारण ज्ञान और सामर्थ्य के द्वारा आकाशमें उठनेवाले तूफानोंको अपने अधिकारमें क्यों न ले सकेगा ? इसलिए एकाएक तथा जोरसे उठनेवाले तूफानोंका कारण प्राकृतिक नियमोंका व्यतिक्रम नहीं, बल्कि शैतानकी असाधारण शक्तिका उपयोग समझा जाता था । शैतानकी असंभाविताको दूर करने के लिए ये सब विचार ही यथेष्ट थे। इतने पर भी जब किसीको कोई शंका उठती तो उसे समाधान करनेके लिए धर्म्मगुरु सदैव प्रस्तुत रहा करते थे। जिन लोगोंको विश्वास था कि शैतानकी प्रेरणासे तूफान उठा करते हैं, वे लोग यदि उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाली डाकिनोंको भी उक्त शक्तिसे सम्पन्न देखते हों तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है ? बीमारियों आदिके विषयमें भी लोगोंका ऐसाही ख्याल था । कहा जाता है कि शैतानने जाबको एक भयंकर रोगसे पीड़ित किया था । जब वह एक व्यक्तिको रोग पीड़ित कर सकता है तब दूसरोंको न करे इसका क्या प्रमाण ? भूताविष्ट लोगोंकी किस्साओंसे जाना जाता है कि भूतप्रेतादि मनुष्योंके किसी अंगविशेष पर अपना प्रभाव डालकर उसे शक्तिहीन कर सकते हैं । उस समय आकाशके बड़े बड़े तूफान शैतानकृत और छोटे छोटे डाकिनीकृत माने जाते थे । इसी प्रकार समस्त प्रजा पर आनेवाली आपत्ति दैवकृत और व्यक्ति विशेष पर आनेवाली

आपत्ति डाकिनी अथवा जादूगरकृत मानी जाती थी। साधारणतः लोगों को ऐसा विश्वास था कि जो डाकिनें मंत्रप्रयोगके द्वारा रोग फैला सकती हैं; उनमें उसके दूर करनेकी सामर्थ्य भी होना चाहिए। *

इसके अतिरिक्त और भी कई बातों की चर्चा हुआ करती थी। उनमें एक जानने योग्य बात यह है कि डाकिनें आकाश-मार्ग द्वारा एक स्थानसे दूसरे स्थानको गमनकर सकती हैं। वर्तमान समयमें यदि कोई कहे कि अमुक बुढ़िया हरिणी या बकरा की पीठ पर बैठकर अथवा चाहे जिस रीतिसे कुछ मिनटोंमें सैकड़ों मील दूर जासकती है, तो यह बात हमको इतनी असम्बद्ध और बेतुकी जान पड़ेगी कि उसके लिए सैकड़ों प्रमाण देने पर भी हम उसे कदापि स्वीकार नहीं करेंगे। इस जगह हम जिस समयका इतिहास लिख रहे हैं उस समय बुद्धिस्वातंत्रका क्षीण प्रकाश कुछ लोगोंके मस्तिष्कमें चमकने लगा था, परन्तु उस समय वह तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा जाता और मानसिक अधःपतन मात्र समझा जाता था। उसकी कोई कुछ परवा भी नहीं करता था। उस समय संभवपनका माप केवल धर्म्मके पैमानेसे किया जाता था, अर्थात् किसी बातको संभव और विश्वस्त समझनेके लिए लोग यही प्रश्न किया करते थे कि धर्मशास्त्रमें भूतों वगैरहके विषयमें जो कुछ लिखा है यह बात उससे मिलती है या नहीं? इस

* डाकिनोंकी अनेक किस्साओंमें विषप्रयोग करनेकी बातें मिलती हैं। उस समय वैद्यक शास्त्रका ज्ञान बहुत थोड़ा होनेके कारण मुर्देको चीरकर विषप्रयोगकी परीक्षा नहीं कीजाती थी। इसके सिवा अनेक डाकिनें बनस्पतियोंके गुण दोषोंका अच्छा ज्ञान रखती थीं, ऐसा ज्ञान उस समयके डाक्टरोंको भी नहीं था; इससे वे रोगोंको मिटा सकती थीं। इस विश्वासका यही आधार मालूम पड़ता है।

विषयमें बाह्य दृष्टिसे देखनेमें बहुत कठिनाई पड़ती थी और उसका स्पष्टीकरण भी बहुत चतुराईके साथ किया जाता था। जैसे, कहा जाता है कि शैतान यीशुको आकाशमार्गमें उड़ा लेगया था और उसे एक ऊँचे मन्दिरकी शिखर पर रक्खा था। जब वह एक व्यक्तिके साथ ऐसा कर सकता है तब सबके साथ क्यों नहीं कर सकता? एक भूत पेगम्बर हवाकुकको जुड़ियासे बाबालोन तक उड़ा लेगया था। ईसाई धर्मोपदेशक फिलिफका भी यही हाल हुआ था। इसी प्रकार संतपाल भी भूतके झपेटेमें आकर सदेह तीसरे आसमान पर जा पहुँचे थे।

डाकिनोंकी फरियादोंमें उनके मेलोंका हाल बहुत बारीकीके साथ वर्णन किया जाता था, और उनमें सम्मिलित होनेके कारण सैकड़ों स्त्रियाँ जीतेजी जला दी जाती थीं। कभी कभी ऐसा होता था कि जब कोई स्त्री अपने स्वीकारिता या अन्य डाकिनोंकी गवाहीसे अपराधिनी ठहराई जा चुकती थी तब उसका पति अदालतमें आकर शपथ पूर्वक कहता था कि मेरी स्त्री उक्त रात्रिको मुझे छोड़ कर कहीं क्षण भरके लिए भी नहीं गई। यदि कुछ समयके लिए मान लिया जाय कि ऐसे निकट वर्ती सगे लोगोंकी गवाही झूठी है तो भी उसके साथ साथ जो दूसरे प्रमाण उपस्थित किये जाते थे उनका झूठ ठहराना कठिन हो जाता था। कहा जाता है कि अनेक बार स्त्रियाँ जीवनके समस्त लक्षणोंसे शून्य-समाधिस्थ दशामें पड़ी हुई देखी जाती थीं, परन्तु कुछ समयके उपरान्त जब उनको चैतन्यता आती थी तब वे स्वीकार करती थीं कि हम डाकिनोंके मेलाको गई थीं। इन घटनाओंकी ओर धर्मगुरुओंका ध्यान बहुत झुका हुआ था और इसमें बहुत कुछ मतभेद भी पड़

गया था। कुछ लोगोंका खयाल था कि शैतानने डाकिनोंको भ्रान्तिमें डाल रक्खा है और उनकी यह भ्रान्ति दोनोंके मूल संकेतसे हुई है। इस कारण डाकिनोंको अवश्य जला डालना चाहिए। अन्य कुछ लोगोंका मत था कि प्रकृतिके सामान्य नियमानुसार एक ही स्थूल देह एक समयमें दो जगह नहीं रह सकती हैं, किन्तु दैवीशक्तिके आगे प्राकृतिक नियम क्या चीज़ हैं? इसलिए ऐसे मौकों पर शैतान दूसरा शरीर भी दे सकता है और वह इसलिए कि जिससे न्यायाधिकारी घबराहटमें पड़ जावे। यह मत धर्म्माचार्यों में बहुत फैल गया और उसके प्रमाणमें यहाँ रोमन कैथिलिकोंकी दो प्रसिद्ध घटनायें पेश की जाती हैं। एकबार मिलन शहरके मन्दिरमें संत एम्ब्रोज प्रार्थना कर रहे थे, वे सहसा अचेत होकर वेदी पर सिर रख कर रह गये और तीन घंटे तक समाधिस्थ अवस्थामें बने रहे। सब लोगचुपचाप बैठे थे और आशीर्वाद पानेकी राह देख रहे थे। अंतमें जब उनकी समाधि खुली तब उन्होंने कहा—"मैं टुर्सनगरके संत मार्टिन-की अन्त्येष्टि क्रिया करने गया था। कुछ दिनोंके पश्चात् यह बात सच निकली। ऐसी ही बात संत क्लीमेण्टके विषयमें भी प्रसिद्ध थी। वे जिस समय प्रार्थना कर रहे थे उस समय उन्हें पिसा शहरके एक मंदिरकी प्रतिष्ठा करानेके लिए निमंत्रण आया। उस समय उनका शरीर (अथवा जिस देवदूतने उनका रूप धारण किया था) रोम ही में पड़ा रहा, परन्तु वे महात्मा उसी समय पिसामें जा पहुंचे। वहां उन्होंने इस चमत्कारके स्मरणार्थ एक आइने पर अपने रक्त की कुछ बूंद डाली थीं। प्रायः समस्त लोगों-का मत था कि डाकिने कभी स्थूल देहसे और कभी सूक्ष्म शरीर धारण करके मेलोंमें जाया करती हैं। और न्यायाधीशों-

की बुद्धिको चक्करमें डालनेके लिए असुरगण उनका रूप धारण करके वहाँ उपस्थित रहते थे।

दूसरी एक महत्वकी बात भूतों और पशुओंके सम्बन्ध की थी। इस विश्वासमें किसीको ज़रा भी सन्देह नहीं था कि शैतान अपनी इच्छानुसार चाहे जैसा स्वरूप धारण कर सकता है। जिसे यह बात याद होगी कि शैतान पहले इस पृथ्वी पर सर्पके रूपमें आया था तथा एक बार भूतोंके समूह ने सुअरोंके झुण्डका रूप धारण किया था, उसे उक्त बात माननेमें कुछ भी कठिनाई नहीं पड़ेगी। परन्तु डाकिने भेड़िये-का स्वरूप धारण करती थीं यह बात कुछ कठिनाईसे समझ में आने लायक थी। संत आगस्टाइन कहते थे कि यहबात निरो गप हैं; इसी प्रकार ऐन्सीराकी राजसभा भी इस विश्वासकी निन्दा करती थी। परन्तु आदियुगमें इसका खूब प्रसार था, प्राचीन धर्मके बड़े बड़े आचार्य पोपके नियुक्त किये हुए धर्म्म-निरीक्षक और अनेक देशोंके न्यायालय इस विश्वासके कायल थे। इसके आधारभूत प्रमाण विचित्र किन्तु निश्चित थे। जब डाकिनोंके पशुरूप धारण करनेके समय उनके शरीर पर कोई घाव या जखम लग जाता तो उसका चिन्ह उनके मनुष्य शरीर पर भी आ जाता था। ऐसे हजारों मुकद्दमें अदालतोंमें पेश होते थे। अनेक समय शिकारी लोग अपने ऊपर आक्रमण करने वाले भेड़िये या बाघके पंजे अपनी जीतके स्मारक स्वरूप खलतेमें रख लाते थे, परन्तु जब वे घर आकर उनको देखते तो उन्हें अपनी ही स्त्रीके रक्तसे रंगे हुए हाथ दिखाई देते थे!

अब हमको ऐसी कहानियोंके अन्तिम वर्गके विषयमें कुछ कहना है—जो रोमनकैथोलिक पंथके ब्रह्मचर्य्य सम्बन्धी

विचारोंसे उत्पन्न हुई थीं और जो जादूसे मनोविकारों पर होने वाले असरसे सम्बन्ध रखती हैं।

स्त्री जातिको अत्यन्त तिरस्कारकी दृष्टिसे देखना रोमन कैथोलिक धर्मका एक खास लक्षण था। यह तिरस्कार किन विचारोंसे उत्पन्न हुआ, उसका समझना कुछ कठिन नहीं है। ब्रह्मचर्य्य सर्वत्र सद्गुणका उत्कृष्ट सोपान समझा जाता है, उसे स्वीकार करानेके लिए धर्मगुरु स्त्रियोंकी दुष्टता वर्णन करनेमें अपनी सारी वाक्चातुरी खर्च किया करते थे—क्योंकि उनकी मोहकता ही ब्रह्मचर्य्यकी कट्टर शत्रु है। इस कारण स्त्रीजातिकी महान् प्रवंचकता, अगम्य चतुराई, अतिशय चपलता, लम्पटता और उसकी अवशता आदि दुर्गणों पर एक सुदीर्घ समय तक बड़े बड़े जोशीले विवेचन होते रहे। ये विवेचन जो एक जमानेके लिए त्रासरूप थे, वही दूसरे के लिए हास्यरूप होगये। साम्प्रत उनको पढ़कर हम गम्भीरता धारण नहीं कर सकते हैं, तोभी उनसे एक गंभीर खेदकी ध्वनि निकलती है। क्योंकि डाकिनोंके विश्वासको लोगोंके मगज़में भरने और उन बेचारियोंकी वेदनाओंकी ओर प्रेक्षकोंके हृदयको अत्यन्त निष्ठुर बनानेमें उक्त तिरस्कार बहुत सहायक हुआ है। जादूका आरोप अधिकतर स्त्रियों पर ही क्यों किया जाता है, इस प्रश्नकी ओर शीघ्र ही लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ, और इसके उत्तरमें प्रायः कहा जाता था कि उनमें स्वाभाविक दुष्टता अधिक है; परन्तु उनके ज्ञानतंतुओं-की निर्बलता और उसके कारण होनेवाले धार्मिक उन्माद तथा मानसिक त्रासकी ओर किसीकी दृष्टि नहीं जाती थी। कई लोगोंकी राय थी कि प्राचीन लेखकोंने इस विषय पर खूब निन्दापूर्ण विवेचन किये हैं, अतएव स्त्रीवर्गकी दुष्टतामें कोई संदेह नहीं है। कोई कोई कहते थे कि जगतमें स्त्रियाँ न

होतीं तो पुरुष जाति अवश्य ही देवोंके समकक्ष होनेका दावा रखती। सिसरोका कथन है—कि जब पुरुषजाति अनेक कारणोंसे एक कुसूर करती है, तब स्त्रीजाति केवल एक कामवासनाकी तृप्तिके लिए सब तरहके अपराधोंको करनेसे नहीं चूकती है।" सेलोमनने—जिसे कहा जाता था कि इस विषयका बहुत अनुभव है—स्त्री जातिके विषयमें बहुत निन्दापूर्ण विचार प्रकट किये हैं। जब क्रिसोस्टोमने कहा था कि—"स्त्री एक अनावश्यक खराब चीज है, प्रकृतिका प्रलोभन है, खुशीसे मोलली हुई आफ़त है, घरकी पीड़ा है, विनाशकारिणी मोहिनी है और मूर्तिमान पाप है, तब उसने मानों आदियुगके धर्म्मगुरुओंका साधारण मत प्रकट किया था। एकके पश्चात् एक विद्वान् ऐसे खेदयुक्त वाक्योंका प्रतिघोष करने और इतिहासके पन्ने उलटकर यह साबित करनेके लिए कि 'स्त्रीजाति पातिकी है' सच्चे हृदयसे लगे हुए थे। जिन लोगोंका स्त्रीजातिके एक महान् भागकी ओर ऐसा ख़याल बँध गया था और जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्यको एक उत्कृष्ट सदाचार मानकर उससे डिगानेवाले प्रत्येक प्रलोभनको शैतानका काम समझते थे, वे साधारण रीतिसे प्रेमके समस्त स्वरूपोंको शैतानके एक विशेष प्रभावके तौर पर मानते हों तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है? इसी कारणसे डाकिनीप्रयोगके साहित्य पर प्रकाश डालनेवाली विलक्षण आख्यायिकाओंकी प्रचंड लहरें समय समय पर दिखाई देती थीं। इन्क्यूबी और सक्यूबी जातिके प्रेत सदैव मनुष्योंके साथ घूमा करते थे। वे प्रमत्तजनोंको अपने दैवी सौन्दर्य्यसे फँसाकर विनष्ट करते और संतजनोंको विविध षड्यन्त्र रचकर सद्गुणोंसे भ्रष्ट करते थे। इस काममें उन्हें सफलता भी खूब मिलती थी। शैतान कभी कभी द्वेषवश किसी नामाङ्कित साधुकी इज्जत

बिगाड़नेकी गरजसे उसका स्वरूप धारण करके उसकी ओर पूज्यदृष्टिसे देखनेवाली किसी कन्याके पैरों पड़कर प्रणयकी भिक्षा माँगता था! इस प्रकार ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करने वालोंको तंग करनेके सिवा वह वैवाहिक सुखमें भी बाधा डालनेसे नहीं चूकता था। गृहस्थोंके घर बंध्यत्व दोष उत्पन्न करनेके अपराध पर इतनी डाकिनोंको अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा था कि जिनकी गणना करना कठिन है।

बच्चोंकी बातोंके समान प्रतीत होनेवाले उक्त सिद्धान्तों तथा दलीलोंका इतने अधिक विस्तारसे वर्णन करनेके लिए मैं वाचकोंसे क्षमाप्रार्थना नहीं करता हूँ क्योंकि उनका महत्व उनकी वास्तविक कीमत पर नहीं, किन्तु भिन्न भिन्न विचारोंके इतिहासके साथ उनके सम्बन्ध पर निर्भर है। भूतकालकी मूर्खतापूर्ण बातें—जिन्हें तत्कालीन विद्वान् पुरुष भी सत्य मानते थे—साम्प्रत हम लोगोंके अवश्य मनन करने योग्य हैं, और मैं समझता हूँ कि प्रस्तुत विषयमें वे बुद्धि विकाशके नियमोंकी कुञ्जीका काम देगीं। यह सच है कि वर्तमान समयकी अपेक्षा अति प्राचीनकालमें भोलापन बहुत अधिक था। प्रायः हर समय मनुष्य जिस बातको संभवित मानता है उसे वह बहुत थोड़े प्रमाणोंके आधार पर ही मान लेता है। उसका मत संभाव्यताके प्रमाण परसे बाँधता है और वह प्रमाण सभ्यताके प्रभावसे सदैव बदलता रहता है। पन्द्रहवीं, सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दीके प्रथम भागमें यह प्रमाण केवल धार्मिक था—लोग मानों व्यवहारिक जगत्से किसी पृथक वातावरणमें ही निवास करते थे। उनकी बुद्धि और कल्पना पर धर्मका गहरा रंग चढ़ा हुआ था। यही कारण है कि वे लोग अपनी भावनासे मेल खानेवाली प्रत्येक बातको प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लेते थे। इसमें कोई

संदेह नहीं है कि दैवीचमत्कारोंकी ओर लोगोंकी प्रवृत्ति इतनी अधिक झुकी हुई थी कि स्वल्प प्राकृतिक सत्य बातों-के आधार पर उन्होंने डाकिनी-प्रयोगका यह विशाल और उलझन भरा हुआ जाल रच डाला, और उन्होंने इस जालके आसपास अनेक प्रकारके सूक्ष्मप्रमाणोंका इतना बड़ा ढेर लगा दिया कि जिसकी ओटमें अनेक शताब्दियों तक बड़े बड़े विद्वान् पुरुष तक भटकते रहे। यह प्रवृत्ति प्रत्येक प्रजाके न्यायमंदिरोंकी सूक्ष्म जाँचमेंसे अक्षुण्ण निकलकर अधि-काधिक विस्तार करती गई, और उसने हजारों—बल्कि लाखों—अपराधियोंको भयङ्कर करुणारहित मृत्युके द्वार पर पहुँचाया। अद्भुत बातोंको अनुभवके मैदान पर लानेके लिए उनका स्पष्टीकरण करनेकी किसीको ज़रा भी इच्छा नहीं होती थी; क्योंकि लोगोंके मगज़में जो विचार भरे हुए थे उनका प्रत्यक्ष अनुभवके साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। यदि हम पार्थिव नियमोंसे अबाधित पिशाचवर्गको निरन्तर अपने आसपास घूमते हुए देखते हों; या उन्हें दुष्टभावसे प्रेरित होकर अपने प्रत्येक कामको बिगाड़ते, अथवा मानवजाति-को दुःख पहुँचानेमें अत्यन्त संलग्न देखते हों; या आसीरिया-के अगणित दल अथवा जेरूसेलमके मार्गों पर उन्हें मृत्युकी तलवार घुमाते हुए देखते हों; या क्राइस्टको वायुमार्गसे लेजाते हुए शैतान और उसके पंजेमें फँसे हुए भूताविष्ट लोगोंके दुःखोंका निरन्तर अनुभव करते हों—तो जिस प्रकार पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दीके धर्माचार्य इस विषय पर तर्क बाँधते थे उसी प्रकार हम भी बाँधते और ये भयंकर मूर्तियाँ हमारे मस्तिष्क में इस प्रकार घर कर लेतीं कि हम जीवन के साधारण व्यवहारसे एक बिल्कुल भिन्न प्रकारके ही संभाव्यताके प्रमाणको मानने लगते; यही नहीं, किन्तु हमको

भूतोंकी निरंतर उपस्थितिका भान रहने लगता, और हमारा मन उनकी शक्तिका परिचय पानेकी ओर झुक जाता।

मुझे आशा है कि डाकिनीप्रयोगके आधार भूत कारणोंके स्पष्ट करनेके लिए ऊपरके पन्ने ही बस हैं। उनपरसे जाना जाता है कि उसकी उत्पत्ति किसी व्यक्ति विशेषकी विलक्षणता, आकस्मिक संयोगों अथवा शास्त्रीय अज्ञानके कारण नहीं; किन्तु सांसारिक व्यवहारमें शैतानके कामोंको देखनेकी प्रवृत्तिके कारण हुई है। डाकिनी-प्रयोगका जन्म उस समयकी धर्मसम्बन्धी विचारपद्धतिमेंसे हुआ था और उसमें उन विचारोंका प्रतिबिम्ब भी स्पष्ट रीतिसे दृष्टिगोचर होता था। जब उक्त पद्धति शिथिल होते होते विलुप्त होगई तब डाकिनीप्रयोग भी शेषप्राय होगया। मध्ययुगमें साधारण वहमोंको कुछ अंशमें न मानने वाले कुछ मनुष्य अवश्य थे, परन्तु उनका मत सर्वसाधारणके लिए बिलकुल अग्राह्य था और तत्कालीन पुरुषों पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। जब तक स्वभावतः भोलापन रहा और उनका मन दैवीचमत्कारों तथा शैतानके कामों की ओर झुका रहा, तब तक बड़े बड़े प्रयत्नोंसे भी यह वहम नष्ट नहीं हुआ। जब तक उक्त प्रवृत्ति नहीं बदली, जब तक ऐसे वर्णन मुक्तकंठसे असंभव और अश्रद्धेय नहीं कहे गये, जब तक उनमें उसके प्रमाण झूठे ठहरानेकी स्वतः शक्ति पैदा नहीं हुई या प्रमाणादिको एक ओर ताकमें रख देने की दृढ़ता नहीं आई, तब तक यह त्रासदायक वहम नष्ट नहीं हुआ। यूरोपमें इस वहमकी कमी बुद्धि स्वातंत्र्यके उदयकी और उसका नाश बुद्धि स्वातंत्र्यके प्रथम जीतकी सूचना प्रकट करता है।

धर्म निरीक्षकोंके लेखोंसे इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं

कि उस समय कई लोगोंके मनमें अनास्थाकी आग सुलग रही थी, परन्तु वह इतनी प्रबल नहीं थी कि उसकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित होता। उसका पृष्टपोषक न तो कोई प्रसिद्ध पुरुष ही था, न उसके समर्थनमें कोई प्रसिद्ध ग्रन्थ ही लिखा गया था तौ भी उसके कारण धर्मगुरुओंके मनमें चिन्ता अवश्य उत्पन्न होगई थी। गर्सन कहता था—भूतोंके मानने वाले गुरुओंकी हंसी उड़ाने वालोंकी संख्या बढ़ानी चाहिए। बुद्धिमान लोगोंमें कुछ आस्तिकताकी भूल और कुछ बुद्धि की निर्बलताके कारण यह प्रमाद उत्पन्न हुआ है; क्योंकि प्लेटोंके मतानुसार प्रत्येक विषयमें ज्ञानेन्द्रियोंका ही उपयोग करना, और उसके ऊपर न जा सकना, सत्यशोधनमें एक भारी रुकावट या अंतराय है।, स्पेन्जर भी जन साधारणमें अविश्वासका बीज बोता था। धर्म्माचार्यों के विषयमें वह कहा करता था—सच पूछो तो इनको वादविवाद करने की कोई उत्तम रीति ही नहीं आती, घड़ी भरमें यह दलील और घड़ी भरमें वह दलील, इसी प्रकार अँधेरेहीमें भटका करते हैं। सन् १५१७में स्पाईना लिखता है कि असंख्य हत्याओंके कारण कई स्थानोंमें उग्र विरोध उत्पन्न हुआ था। इटलीके उत्तरमें बहुत बड़ा बलवा हुआ। इस बलवेका एकमात्र कारण था—अनास्थाकी प्रबल वृद्धि। इसके विषयमें धर्म्माचार्यगण अत्यन्त दया और खेदयुक्त हृदयसे कहते थे 'ये महामूर्ख, भक्तिहीन और अविश्वासी लोग, जिस बातको मानना चाहिए—उसे नहीं मानते! इससे भी अधिक खेद की बात यह है कि जो लोग यीशुके शत्रुओंका नाश करते हैं उन्हींको विपत्तिमें डालनेके लिए ये मूर्ख लोग अपनी सारी शक्तिका उपयोग करते हैं। ऐसा करना मानों धर्मनिरीक्षकों, उनके नियुक्त करने वाले धर्माध्यक्षों और धर्म संस्थाओंका भारी

करना है।' पादरीगण भी निर्भीकतासे कहते थे कि ऐसे अपराधोंका फैसला करनेका अधिकार हमी लोगोंको है। जो संसारी न्यायाधीश डाकिनीको बिना दण्ड दिये ही छोड़ देते थे, ये पादरी उनकी निन्दा प्रकट किये बिना नहीं रहते थे। सन् १६५४ ई० तक यह अनास्था दबी और अव्यक्तरूपसे थी, परन्तु इसी वर्ष जान वायर नामक एक प्रसिद्ध लेखक ने इसे ग्रंथके रूपमें प्रकट की।

वायर क्लीव्ज नगरका विद्वान् और प्रसिद्ध डाक्टर था। स्वतः डाक्टर होनेके कारण उसे विश्वास होगया था कि अधिकांश अपराधी केवल पागल हैं उनके दुःख सुनकर उस दयालु पुरुषके हृदय पर भारी धक्का बैठताथा। वह प्रोटस्टेण्ट होनेके कारण अपने समकालीन अन्य पुरुषोंके समान साम्प्रदायिक बंधनोंसे नहीं जकड़ा था। अलबत्तह साधारण लौकिक शिक्षाके मुख्य नियमोंके विरुद्ध सिर उठाने या प्रचलित विचारोंसे मुक्त होनेकी उसे ज़रा भी इच्छा नहीं थी। वह भूतोंके अस्तित्व और उनके कृत्यों आदि सब बातोंको मानता था, परन्तु उसमें विशेषता केवल इतनी ही थी कि वह कुछ घटनाओं या बातोंका कारण दैवीप्रकोपके बदले रोग बतलाता था। उसे विश्वास था कि डाकिनें न तो हवामें उड़ सकती हैं और न तूफान उठा सकती हैं—वे जो कुछ करती हैं शैतानके बहकावेमें आकर करती हैं। इस प्रकार उसने भूतावेशका विचार करके उसमें डाकिनीप्रयोगका समावेश किया। वह कहता था कि जिन लोगोंका मस्तिष्क किसी बीमारी आदिके कारण विकारग्रस्त होजाता है या ऐसे ही किन्हीं कारणों से जिनका स्वभाव बदला जाता है, वे ऐसा समझने लगते हैं कि हमको भूतावेश होगया है। इनमें भी विशेष करके स्त्रियोंके मस्तिष्क पर ऐसा असर ज्यादह

पड़ता था। जो शत्रु 'विच' बन जाते थे उनमें मानसिक और नैतिक निर्बलता विशेष रूपसे देखी जाती थी। वह लिखता है कि यहूदी लोगोंके ग्रन्थोंमें 'विच' शब्दका अर्थ डाकिनी नहीं—विष देनेवाला होता है। उसने अपनी पुस्तक-की प्रस्तावनामें यूरोपीय राजाओंसे निर्दोष रक्तपात बंद करनेके लिए अन्तःकरण पूर्वक प्रार्थना की थी।

कुछ वर्षोंके उपरान्त बेजल और आमस्टर्डाममें—जो उस समय विचार स्वातंत्र्यके मुख्य अड्डे थे—उक्त पुस्तकके तीन संस्करण प्रकाशित हुए। सन् १५६९ में उसका फ्रेंच भाषामें अनुवाद हुआ। इसके खंडनमें यूरोपके प्रसिद्ध दार्शनिक और प्रजातंत्र (Republic) के लेखक बोडिनकी कलमसे लिखा हुआ 'भूतावेश और जादू' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इसमें वह लिखता है कि इस विषयके प्रमाण इतने अधिक, एक मत और निश्चित हैं कि कोई भी समझदार आदमी उन्हे स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता। इस पुस्तकमें उसने सब देशोंके, सब समयके और सब धर्म्मोंके लोकमत-को संगृहीत करके ईसाई धर्म्मके बाहरके अनेक महान् प्राचीन लेखकों तथा नामाङ्कित पादरियोंका मत प्रदर्शित किया था। वह लिखता है कि सब जातियोंके धर्म्मों और इतिहासोंमें भूत विद्याका अस्तित्व पाया जाता है। अपने प्रतिपाद्य विषय-की पुष्टिके लिए उसने अपने देशकी तथा अन्यान्य देशोंकी अदालतोंके सैकड़ों फैसले दिये हैं। वह लिखता है—'वायर की पुस्तक पढ़कर मुझे जो आश्चर्य और क्रोध उत्पन्न होता है मुझे नहीं सूझता कि मैं वह किन शब्दोंमें प्रकट करूँ। एक मामूली डाक्टर सारे जमानेके प्रमाणोंके विरुद्ध अपना माथा ऊंचा उठानेका साहस करे और उसे अपने विचारोंके विषयमें इतनी बड़ी श्रद्धा हो, तथा सबसे अधिक विद्वान्

पुरुषोंके प्रति इतनी अधिक घृणा हो कि वह अत्यन्त सत्य और परम प्रसिद्ध विषयमें केवल प्रमाणों पर अनास्था होनेके कारण उसकी निन्दा करे—यह वास्तवमें मूर्खता और मानवी औद्धत्य—इन्सानकी मग़रूरीको पराकाष्ठा है। किन्तु उसकी धृष्टताकी अपेक्षा देवनिन्दा अधिक असह्य है, क्योंकि उसने परमेश्वरके विरुद्ध हथियार बांधा है। उसका ग्रन्थ ईश्वरकी घोर निन्दासे परिपूर्ण है। जिसे प्रभुके मानका जरा भी ख़याल होगा वह ऐसी निन्दा पढ़कर कुपित हुए बिना नहीं रह सकता है। उसने अनेक प्रामाणिक न्यायाधीशोंकी दी हुई सज़ाओंको अनुचित कहनेका साहस किया है। उसने उन लोगोंके बचानेका प्रयत्न किया है जिनको धर्म्मशास्त्र और धर्ममंदिरोंने भयंकर और अक्षम्य कामोंका अपराधी ठहराया है। यही नहीं, उसने एक प्रसिद्ध जादूगरके पाससे कई एक मंत्र तंत्र सीखकर उन्हें दुनियांमें प्रकट करनेका साहस किया है! ऐसी भयंकर गुह्य बातें बाहर प्रकट होजानेसे भविष्यमें खिष्टिधर्मके लिए अनिष्टकारक हो सकती हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि इन बातोंका ज्ञान फैलनेसे डाकिनोंकी संख्या बढ़ेगी और शैतानकी सत्तामें भी वृद्धि होगी। ऐसे अवसर पर डाकिनों और जादूगरोंपर सख़्ती कम करनेके बदले उसे दूने उत्साहसे जारी रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त कौन कह सकता है कि ऐसी पुस्तक लिखने वाला और ऐसे मलिनधंधेका रहस्यजानने वाला व्यक्ति स्वतः शंकापात्र न होगा? जिसे ईश्वरका कानून मौतकी सज़ा देता है उसे बचाना राजाओंकी सत्तासे परे है। ऐसा अपराध करना सचमुचमें ईश्वरके प्रभाव पर पानी फेरना और ईश्वरके क़ानूनको तोड़ना है। महामारी और दुष्काल उसके देशको वीरान कर डालेंगे। नवमें चार्ल्सने एक जादूगरकी जीवन

रक्षा की थी, इसलिए उसे अकालहीमें काल-कवलित होना पड़ा। क्योंकि ईश्वरका सख़्त कानून है कि जो व्यक्ति मार डालने योग्य मनुष्यको बचावेगा वह उसकी सज़ा अपने सिर पर उतार लेगा। इसी प्रकार राजा अहबसे पैगम्बर ने भी कहा था कि तूने मारडालने योग्य मनुष्यको बचाया है इसलिए अब तुझे स्वतः मरना पड़ेगा, क्योंकि जादूगरोंको माफी देनेकी बात कभी कहीं सुनी नहीं गई है।

सन् १५८१ ई० में यूरोपके एक बड़े विद्वान् पुरुषने यह ग्रन्थ लिखा था। इससे पता चलता है कि उस समय उसके विचारोंको माननेवाले पाठकोंकी संख्या कितनी अधिक थी। इस ग्रन्थके प्रकाशित होनेके ठीक सात वर्षके पश्चात् मोन्टेन नामक एक फ्रेंच विद्वान्ने फ्रेंच भाषामें एक ग्रन्थ लिखा। यह ग्रन्थ अनास्था सम्बन्धी विचारोंसे परिपूर्ण था। इसमें अन्य बातोंकी अनास्थाकी अपेक्षा डाकिनी-प्रयोग सम्बन्धी अनास्था ही अग्रगण्य थी। इस लेखकको बोडिन तथा वायरके समान सैकड़ों बड़ी बड़ी दलीलें पेश करना पसन्द नहीं था। अब धार्मिक प्रमाणोंका जमाना गया और उसके स्थान पर चातुर्य्य तथा सामान्य बुद्धि दिखाई देने लगी। डाकिनोंके सब इकरार झूठे समझे जाने लगे। अनेक इकरारोंके होनेका कारण बिगड़े हुए मस्तिष्कके स्वप्न अथवा यातनाओंका भय कहा जाता था। अब प्रमाणोंको झूठ ठहरानेके साधन पास न होनेपर भी उनका मानना जरूरी नहीं था। इसके विषयमें वह लिखताहै कि 'अनुभव तथा सत्य इन दोनोंके सुदृढ़ पाये पर रची हुई दलीलें भले ही हों—मैं उनको सुलझानेका ढोंग नहीं करता हूँ, परन्तु जिस प्रकार सिकन्दरने गूढ़ग्रन्थि सुलझानेके बदले काट डाली थी, उसी प्रकार मैं भी इनका छेदन करता हूँ। केवल अपने मतके अनुसार मनुष्यों

को जीतेजी जला देना अपने मतकी बेहद इज्जत करना है। उसने एक नई दलील पेशकी जो पोछेसे धार्मिक वाद-युद्धोंमें कईबार उपयोगमें लाई गई। वह लिखता है कि एक बुढ़िया झाड़ू या बकरी पर सवारी करके आकाशमार्गमें उड़े, इसकी अपेक्षा हमारी इन्द्रियोंका ठगा जाना-भ्रमित होजाना ही अधिक सम्भव है। जिन कामोंके करनेका आरोप डाकिनों पर किया जाता है उनकी अपेक्षा साक्षियोंका झूठ बोलना अपेक्षाकृत कम आश्चर्य्यजनक है।

मान्टेनने अपनेको एक बड़ा तार्किक प्रसिद्ध करनेका यत्न नहीं किया; तौभी मनुष्योंके मत पर उसका गम्भीर और सार्वजनीन (Universal) प्रभाव पड़ा। इस बातको स्पष्ट करना कुछ कठिन नहीं है। भूतकालके मोहसे बेतरह जकड़े हुए जमानेमें उसने धार्मिक कल्पनाओंके बादलोंसे मुक्त और सत्तापूर्ण आज्ञाओंसे रहित युक्तियोंसे काम लिया है। उसकी अपूर्व कल्पनाशक्ति उसकी दृढ़ दलीलों अथवा दृढ़मतोंमें नहीं, प्रत्युत उसके मनके साधारण भाव और प्रकृतिमें निवास करती थी। अभीतक विश्वमान्य समझी जानेवाली भूतकालसापेक्ष (retrospective) विचारप्रणालीमेंसे मुक्त होनेवाला यह पहला ही फ्रेंच लेखक था। इसने व्यावहारिक रीति और नित्य अनुभवके द्वारा उत्पन्न होनेवाले संभाव्यताके मापके अनुसार सब प्रश्नोंका निर्णय किया था। वह लिखताहै—'मै मानताहूँ कि ईसाई, यहूदी, ग्रीक, लेटिन जर्मन, फ्रेन्च, इटालीय, स्पेनिश और अँगरेज प्रभृति समस्त जातियोंके कानूनोंमें जादूगरोंको प्राणदण्डका विधान है, तथा पैगम्बरों, धर्म्माचार्य्यों, साक्षरों और न्यायाधीशोंने अनेक उपायोंसे इस अपराधको स्पष्ट करनेका प्रयत्न कियाहै, परन्तु इसके साथ साथ यह भी जानता हूँ कि मनुष्यकी

विवेकशक्ति कितनी स्खलनशील है; और मनुष्य अपने पहलेसे बँधे हुए विचारोंका प्रतिबिम्ब कितनी सुगमतासे ऐतिहासिक घटनाओंमें देख सकताहै, तथा श्रद्धालु और विवेकशून्य जमानेमें झूठी कल्पनायें कितनी शीघ्रतासे लोगोंके हृदयमें बद्धमूल हो जाती हैं।' जिस समय प्रोटेस्टेण्ट, रोम सम्प्रदायवाले तथा ईश्वर-जगत-भेदवादी भूतकालकी महिमा के गीत गानेमें मग्न थे; बाह्यजगतके साथ जैसे कोई सम्बन्ध ही न हो अपने आसपास ऐसे विचारोंका वातावरण रचना ही जिस समय प्रत्येक विद्वान् और प्रत्येक धर्म्मगुरुका लक्ष्य था; जिस समय ज्ञान स्वत: अन्धश्रद्धाका गुलाम बन रहा था और जिस समय दुराग्रहकी बेड़ियोंसे मजबूत जकड़े हुए लोग ही सबसे अधिक बुद्धिमान् समझे जाते थे—उस समय मोन्टेनने अपनी ओजस्वनी प्रतिभाके द्वारा अनुभवात्मक जगत-में ऊर्द्धगमन किया। ज्ञानप्राप्तिसे प्रदीप्त हुई—गुलाम बनीहुई नहीं—बुद्धिके द्वारा उसने अपने समयके मतोंकी परीक्षाकी; भूतकालके सिद्धान्तोंके तेजसे प्रभान्वित न होकर उनका चिन्तवन किया; इतिहासके विशाल क्षेत्रपर उसके परस्पर विरोधी उन्मत्त पक्षोंपर, उसके विरुद्ध मार्गोंपर और उसकी निरन्तर बदलनेवाली विश्वासकी गति पर दृष्टि डाली, और उसके अवलोकन द्वारा अपने समकालीन पुरुषोंसे एक भिन्न प्रकारका ही सारांश निकाला। वह सारांश यह था—'मनुष्य-बुद्धि अत्यन्त भ्रान्तिशील है; भूतकालकी सीमासे अधिक नमन करना मूर्खता है; और जिस मान्यताके विषयमें हमको बहुत थोड़ा विश्वास हो सकता है, उसके लिए मनुष्योंको मौतकी सजादेना बहुत भयङ्कर है।' इन विचारोंके उत्पन्न होने पर उसे संदेह होने लगा कि डाकिनी-प्रयोग एक भ्रम है, परन्तु कुछ कालके उपरान्त—अपनी मानसिक प्रतिग तथा झुकाव

के कारण उसे अपनी पूर्वोक्त बात पर पूर्ण विश्वास होगया डाकिनी-प्रयोग पर उसे घोर अश्रद्धा हो गई । इस प्रकार वह आधुनिक व्यवहार और विवेकशील पवनका पहला प्रतिनिधि सिद्ध हुआ । मोन्टेनको दृढ़ विश्वास होगया था कि डाकिनी-प्रयोग प्राकृतिक कारणोंका परिणाम है और इसीलिए उसने स्वतः सुनी हुई अनेक बातोंका खुलासा नहीं किया, परन्तु उसे पूर्ण विश्वास था कि इन बातोंके स्वीकार करनेकी असंभाव्यताकी अपेक्षा दूसरी कोई असंभाव्यता हो ही नहीं सकती । यह अज्ञानका काकतालीय परिणाम नहीं, किन्तु उसकी समस्त धार्मिकप्रश्नों पर प्रयुक्त की हुई विचार सारणीका स्पष्ट परिणाम था । पचास वर्ष पहले ऐसे विचारोंसे भरा हुआ ग्रन्थ बिलकुल अग्राह्य होता, यही नहीं, किन्तु उसका लेखक कदाचित् जीतेजी जला दिया जाता । परन्तु १६ वीं शताब्दीके अन्तमें लोगोंका मन ऐसी बातोंके सुनने तथा मनन करनेके योग्य बन गया था । मोन्टेनके निबंधों ने प्रमाणोंकी अस्वीकारिता अथवा स्पष्टीकरणसे डाकिनी-प्रयोगको भंग नहीं किया, किन्तु मनुष्योंको उस विषयकी वास्तविक अनुपपत्तिका ज्ञान कराके—किया था । इसलिए यह समझना चाहिए कि उसके निबंध प्रकाशित होनेकी तारीखसे यूरोपमें तेजस्वी और नित्य विस्तार पानेवाले बुद्धि-स्वातंत्र्यवादका प्रारम्भ हुआ ।

इसके तेरह वर्षके पश्चात् कोरनने बुद्धिमत्ताके विषयमें एक निबन्ध लिखा । जिन बातोंको मान्टेनने बड़ी बड़ी शंकाओंके रूपमें प्रकट किया था, कोरनने अब उससे आगे बढ़कर उनकी साफ़ मनाही कर दी । उसने धीरे धीरे परन्तु दृढ़तासे प्राचीन मतको निर्मूल किया । यह कार्य्य किन्हीं पुस्तकोंकी मददसे आगे नहीं बढ़ा था और न किसी वाद-

विवादका ही वह फल था—प्रत्युत शान्त और अदृश्य क्षयका परिणाम था। पादरीगण इस समय भी लोगोंको भूतावेशसे मुक्त करनेके लिए मंत्र पढ़ा करते थे, डाकिनों पर अदालतोंमें मामला चलाते थे और शंका करने वालोंको बहिष्कृत करके शाप देते थे। अनेक वकील कानूनकी पुरानी पुस्तकें तथा ढेरों केस पढ़ पढ़ कर एकदेशीय दुराग्रहसे प्रचीन मतको मजबूतीके साथ पकड़े हुए थे, परन्तु इस एक दलके लोगोंके सिवा अन्य समस्त वर्गके लोगोंमें डाकिनोंकी असंभाविताका खयाल दिन पर दिन बढ़ता जाता था। अंत में यह खयाल यहाँ तक आगे बढ़ गया कि जब कभी किसी काममें शैतानका साहचर्य बतलाया जाता, तो वह बात केवल उक्त कारणसे हास्यास्पद समझी जाती थी। जो लोग बिलकुल व्यवहार दृष्टिसे विचार करते थे और जिनके मन पर अधिकारका शासन बहुत थोड़ा था उनमें बुद्धिस्वातंत्र्यकी लहर विशेष रीतिसे दिखलाई देती थी। अनेक बड़े बड़े पंडित और लेखक यद्यपि डाकिनी-प्रयोग की असम्भाविता भलीभाँति जानते थे, परन्तु उनके सामने उसके पक्षमें इतने अधिक और दृढ़ प्रमाण थे कि वे इस विषयकी उलझनसे घबड़ाकर कुछ भी निर्णय नहीं कर सकते थे। ला बुअर का कथन है कि जादूका महल जिन सिद्धान्तोंकी नीव पर खड़ा किया गया है, वे सब अस्पष्ट, अनिश्चत और काल्पनिक मालूम पड़ते हैं; परन्तु प्रत्यक्षदर्शी साक्षी उस विषयकी उलझन भरी किन्तु मानने योग्य सबूतियाँ देते हैं, इस लिए इसके विषयमें हाँ या न कहना—दोनों मूर्खतापूर्ण है। अतएव हमें समस्त सच्च माननेवाले भोले लोगों और झूठ समझनेवाले नास्तिकोंके मध्यमें रहना उत्तम है। बेलके विचार भी ऐसे ही थे। मेल-ब्रेन्शका कथन है कि मेरे समयमें कई राजसभाओंने

डाकिनोंके जला डालनेकी प्रथा बन्द कर दी थी, इससे उनके शासनकालमें डाकिनोंकी संख्या भी बहुत घट गई थी। इस परसे उसने अनुमान बाँधा था कि कल्पनाके संक्रामक प्रवाहसे ही उक्त अपराधकी उत्पत्ति होती है। जिन विचारोंसे डाकिनोंका भेड़िय आदिकी देहमें प्रवेश करना सिद्ध किया जाता था उस पर उसने बहुत बारीकीसे विचार किया, परन्तु पादरी होनेके कारण उसने यही मत दिया कि जादूगरोंको मृत्युदण्ड देना ही उचित है। परन्तु वाल्टरने इन सब बातोंका आड़े हाथों जवाब दिया। वह कहता था कि जबसे फ्रान्समें विद्वान् पुरुष होने लगे तबसे वहाँ डाकिनोंकी संख्या बहुत कम गई है। उसने अपने मतकी पुष्टिके लिए बड़ी दृढ़तासे धार्मिक प्रमाण एकत्रित किये थे।

सत्रवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें डाकिनोंके नाश करनेके लिए राजसभा एक समान उत्साहसे काम करती हुई दिखलाई देती थी। जिस समय मोन्टेन और कोरनके ग्रन्थ प्रकाशित हुए, उस समय डाकिनोंके बधका काम बहुत जोर शोरके साथ चल रहा था। परन्तु उस शताब्दीके मध्य भागमें दिन पर दिन विस्तृत होने वाली अनास्था सत्ताधिकारियों तक पहुंच गई थी। इसके परिणामसे ऐसी सज़ायें बहुत घट गईं। सन् १६७२ ई० में कोलवर्टने न्यायाधीशोंको आदेश दिया कि वे जादूके आरोपवाले कोई भी केस न लें। यही नहीं, उसने अनेक मौतकी सजाओं को घटाकर देश निकालेकी सजा कर दी। इस समयसे जादू सम्बन्धी मुकद्दमें बहुत घटने लगे। सन् १६८० से १७०० तक फ्रान्समें केवल ७ ज़ादूगरोंको अग्निदाह की सजा दी गई थी। इस घटीका कारण जादू सम्बन्धी नास्तिक्यकी वृद्धिके सिवा और कुछ नहीं था। सन् १७१८ ई० में बोर्डोकी प्रतिनिधि सभाने उपरोक्त आरोप पर

एक आदमीको जीवित जला दिया। इसके सिवा फुटकर एक दो केस और चले परन्तु अंतमें आरोपी छोड़ दिये गये। अब बाल्डर रूपी तारा क्षितिज पर उदित हुआ। उसके अनुयायी डाकिनी सम्बन्धी एक एक बातों पर घोर उपहास किया करते थे जिससे उनके मानने वाले डरने तथा लज्जित होने लगे। रोमनकैथोलिककी विधियोंमें भूत विर्सजनके मंत्र जैसे पहले प्रचलित थे वैसे ही अब भी चालू रहे--समस्त १८ वीं शताब्दीमें भी वे पढ़े जाते थे। अधिक पढ़े लिखे पादरी उसकी उपेक्षा करते थे क्योंकि उसे संजीवन देनेके लिए अनेक यत्न करने पर भी उसे उत्तेजन नहीं मिलता था।

प्रोटेस्टेण्ट देशोंमें डाकिनी-प्रयोगका वृतान्त रोमीय देशोंके वृतान्तसे इतना अधिक मिलता जुलता है कि उसका यहाँ विस्तारसे लिखना मानो लिखे हुए विषयको फिरसे दुहराना है। दोनों जगह देवी-देवताओंके कृत्योंकी ओर लोगोंके झुकाव का कारण इनका विश्वास ही था, और धार्मिक त्रास जिस अंशमें होता था उतने ही अंशमें डाकिनों पर ज़ोर जुल्म भी बढ़ जाता था। इसी प्रकार दोनों जगह ज्यों ज्यों विवेकशक्तिका उदय और विस्तार होता गया, त्यों त्यों यह वहम भी उठता गया। मालूम होता है डाकिनी-वृत्तिके लिए इंग्लेण्डमें सन् १५४१ ई० तक कानून नहीं बना था। वहाँ डाकिनी-वृतिके कारण कुछ खून अवश्य हुए थे, परन्तु वे यदाकदाचित् ही हुआ करते थे। इस मान्यताके शिकार होने वालोंमें बेचारी जोन आफ आर्क बहुत प्रसिद्ध है। वह अंगरेजोंके उद्योगसे फ्रान्सकी भूमि पर फ्रेंच धर्म्माध्यक्ष कचनकी आज्ञानुसार जलते हुए अग्नि कुण्डमें फेंक दी गई थी। इस घटनाके कुछ वर्षोंके बाद बोफर्ट नामक धर्माध्यक्षने ग्लूस्टरकी राजकुमारी पर जादू द्वारा राजाको मार डालनेकी चेष्टा करनेका अपराध

लगाया । इसके लिए राजकुमारीको पश्चाताप प्रकट करने और उसके दो नौकरोंको फाँसीकी सजा मिली । इसके सिवा ऐसे और भी कई केस हुए, किन्तु यूरोपके अन्य देशोंकी अपेक्षा इंग्लेंडमें यह वहम बहुत कम था । कुछ उसकी भिन्न स्थितिके कारण, और कुछ पहलेसे जोशपूर्ण राजकीय जीवन-के कारण इंग्लेंडमें निर्भय और स्वावलम्बनपूर्ण व्यवहारकी उत्पत्ति हुई—जो यूरोपके सामान्य व्यवहारसे बिलकुल भिन्न अस्वस्थ और भ्रमपूर्ण विचारोंसे सर्वथा मुक्त तथा धर्मके विषादजनक स्वरूपोंसे विमुख था । यह सब होने पर भी धर्म्मक्रान्तिके समय अनेक अंध वहमोंका उत्पन्न होना एक स्वाभाविक बात है । उदाहरणके तौर पर क्रन्चरने पादरियोंको भेंटके समय आदेश दिया था—'जो मनुष्य वशीकरण, मोहन इन्द्रजाल, अभिचार (दूसरोंकी हिंसाके लिए मारण, उच्चाटन स्तंभन आदि करना), देवपरीक्षा अथवा शैतानकृत अन्य कोई कृत्य करते हों उन्हें ढूंढ़ निकालो ।' आठवें हेनरीका डाकिनी-वृत्ति सम्बन्धी कानून उसकी पुत्रीके शासनकालमें रद्द हुआ और वह इलिजाबेथके राज्याभिषेक तक फिर जारी नहीं हुआ । एक बार इलिजाबेथके सम्मुख धर्मोपदेश करते हुए ज्युएलने कहा था—'महारानी साहबा, कुछ वर्षों-से आपके राज्यमें जादूगरोंकी संख्या बहुत बढ़ गई है और आपकी प्रजा क्षीण हो होकर मर रही है । इसके दूसरे वर्ष ही जादूगरों और डाकिनोंके लिए सख़्त कानून बनाया गया, जिसके फलसे डाकिनोंकी संख्या घटनेके बदले उल्टी बढ़ने लगी । राजा जेम्स अतिसुधारक संस्था (Puritanism) को धिक्कारता था, किन्तु शैतानी शक्तिके विषयमें वह उक्त संस्था वालोंके विचारोंसे सहमत था, क्योंकि

इन विचारोंका प्राबल्य स्काटलेण्डमें अधिक था। वह लिखता है कि एकबार जब मैं डेनमार्कसे वापिस आ रहा था उस समय रास्तेमें डाकिनोंने तूफान उठाया था। वह गर्वसे फूल कर कहा करता था—'शैतान मुझे अपना कट्टर शत्रु समझता है।' उसने इंगलेण्डके सिंहासन पर पैर रखते ही तुरंत कानून बनाया कि पहला अरोप प्रमाणित होते ही डाकिनोंको तुरंत ही मार डालो--फिर पीछे वे भले ही निर्दोष साबित हों। जिस समय कोक सबसे बड़ा सरकारी वकील था और बेकन पार्लीमेन्टका सभासद् था उस समय यह कानून पास हुआ था। इस कानूनके पास होनेसे समग्र देश और विशेष करके लंका शायरमें खूब अभियोग चलाये गये और साहित्य पर इनका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

सर थामस ब्राउन कहता था—'जो डाकिनोंके अस्तित्वको अस्वीकार करते हैं; वे धर्मच्युत और ईश्वरको न माननेवाले-नास्तिक हैं।' शेक्सपियर भी अपने समयके नाटककारोंके समान समय समय पर उक्त मान्यताको प्रकट किया करता था, और जौन आफ अर्कका शोकप्रद चित्र भी—जो उसकी बुद्धि पर भारी कलंक स्वरूप है—इसी मान्यताका फल था। बेकनके मतसे धर्मकी अवनतिके तीन कारण थे, वे पाखंड मूर्तिपूजा और डाकिनी-वृत्ति (Witchcreft) हैं। सेलडन कहता था कि डाकिनी-प्रयोग भले ही भ्रम हो, पर डाकिनोंको मार डालनेका कायदा बहुत ठीक है; क्योंकि कोई स्त्री किसी मनुष्यको मार डालनेमें भले ही समर्थ न हो, पर यदि वह वैसा करनेका इरादा करे तो भी उसे मृत्यु दण्ड देना उचित है। इस व्यापारको निर्मूल करनेके लिए राजा जेम्सने जो प्रयास किया उसका प्रजातंत्र (Common wealth) के समयमें होनेवाले श्रमके आगे कोई हिसाब ही नहीं है। ज्योंही

देशके भीतर प्युरिटन लोगोंकी सत्ता बढ़ी और उनके पादरी राजकर्मचारियोंमें अपना तामसी सिद्धान्त फैलानेमें समर्थ हुए, त्यों ही इस वहमने राक्षसीरूप धारण कर लिया। प्रजातंत्रके कुछ ही वर्षों के भीतर जितने खून हुए, उतने पहले और पीछेके कुल मिलकर भी कभी नहीं हुए। इसका दोष न्यायाधीशों और कानूनी सलाहकारोंको नहीं दिया जा सकता है क्योंकि यह प्यूरिटन पंथकी शिक्षाका स्वाभाविक परिणाम था। इस शिक्षणके प्रभावसे लोग व्यवहारमें सर्वत्र शैतानकी मूर्ति देखने लगे थे। अब यह त्रास देश भरमें फैल गया और शैतानकी शक्तिकी गाथायें जहाँ जहाँ गाई जाने लगीं। सफोक परगनेमें विशेष क्षोभ उत्पन्न हुआ और डाकिनोंके पता लगाने वाले प्रख्यात मेथ्यु हॉपकिन्सने प्रकट किया कि डाकिनोंका उपद्रव बहुत बढ़ गया है। उसकी रिपोर्ट परसे डाकिनोंकी खोजके लिए एक कमेटी नियुक्त की गई, जिसने एक वर्ष के भीतर ६० मनुष्योंको यम-सदनको भेज दिया। इनमें एक ८० वर्षका बुड्ढा पादरी भी था। उसने ५० वर्ष तक एक धर्म्म मंदिरका काम निष्कलंक रूपसे चलाया था। इस बेचारे पर भी डाकिनीवृत्तिका दोष लगाया गया। उसे लगातार कई रातों तक सोने नहीं दिया और उसे इतनी अधिक तकलीफ पहुँचाई गई कि वह अपने जीवनसे तंग आ गया। अंतमें वह उन्मत्त सा होगया और उसे अपनी बातोंका कुछ भी ज्ञान नहीं रहा; ऐसी करुणाजनक स्थितिमें वह पानीमें डुबोया गया और अंतमें अपराधी कह कर फाँसी पर लटका दिया गया!

इस प्रकार डाकिनी सम्बन्धी विचार—जो इंग्लेण्डमें बहुत समयसे विद्यमान् थे—धर्म्मक्रांतिसे उत्पन्न होनेवाले अत्याचारोंके कारण बहुत बढ़गये, और ज्यों ज्यों डाकिनोंकी खोज और उनके खूनकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित होता

गया, त्यों त्यों उसका जोर बढ़ता ही गया, और अन्तमें प्यूरिटनोंके मलिन उपदेशसे वह पराकाष्ठा को पहुँच गया। अब केवल उसकी अवनतिका वृत्तांत लिखना शेष रहगया है।

द्वितीय चार्ल्सके राज्याभिषेकके पश्चात् जिस अनास्थाकी प्रचंड वायु बहने लगी उससे इस वहमके भी पैर उखड़ गये। गत राज्यशासनकी अतिशय कठोरताके कारण लोगोंमें अतिशय घृणायुक्त अश्रद्धा उत्पन्न होने, और डाकिनी-वृत्तिमें उपहासके अनेक साधन मिलनेसे, लोगोंमें इस प्रकारकी अनास्था होना एक प्रकारका शौक या फैशन समझा जाने लगा। इसी प्रकार विद्वानोंमें उच्च मानसिक भावोंके विकाशसे भी ऐसी ही प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। हॉब्स नामक तत्त्ववेत्ताने अपना सारा उत्साह अशरीरी प्राणियोंकी निन्दा करने, तथा भूत प्रेतादिकोंकी भावनाकी हँसी उड़ानेमें व्यय किया था। उसने अपने शिष्योंको भो ऐसी ही शिक्षा दी थी। उस समय बेकनका तत्वज्ञान बहुत लोकप्रिय था, उसका भी भारी प्रभाव पड़ा। रायल सोसायटी भा इसी समय स्थापित हुई। फ्रांसमें राज्यपरिवर्त्तनके पहले पदार्थविज्ञानका जैसा शौक दिखलाई देता था, इंग्लेण्डमें भी वैसाही शौक दिखाई देने लगा। अब अँगरेज़ोंका समस्त बुद्धिबल प्राकृतिक घटनाओं और उनके नियमोंकी शोधमें व्यय होने लगा। इस प्रकार प्रत्येक बनाव या घटनाके मूल कारण खोज निकालनेकी प्रवृत्ति सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगी। इसके परिणामसे किसी भी घटना या बनाव का कारण किसी देवता या शैतानका काम बतलाना मूर्खतापूर्ण समझा जाने लगा। अतएव डाकिनी सम्बन्धी विश्वास एकदम घटने लगा—लोगोंके मनसे उक्त विषयके प्रति स्वभावतः अविश्वास उत्पन्न हो चला। क्योंकि

परीक्षात्मक विज्ञानशास्त्रसे उत्पन्न हुए विचारोंसे ये बातें बिलकुल विपरीत प्रतीत होती थीं ।

इन्हीं तीन कारणोंसे डाकिनी-वृत्ति सम्बन्धी विश्वासमें अंतर पड़ गया । पहले पहल शिक्षित गृहस्थोंमें उसकी असंभाव्यताका ज्ञान फैला, जिससे डाकिनोंकी खोजका काम एकदम घट गया । सन् १६६४ ई० में दो स्त्रियोंको फाँसी दी गई । इसके १७ वर्षके पश्चात् एक ग्लेनविन नामक पादरीने इस नष्ट होते हुए विश्वासको फिर उत्तेजित किया । उक्त पादरी अपने समयमें तो प्रख्यात था ही, परन्तु वह अपने पीछे होनेवाले विद्वानोंमें भी अपनी विद्या-बुद्धिके कारण श्रेष्ठ गिना जाता था । अँगरेजोंके विज्ञानशास्त्रके इतिहासमें उसका नाम अग्रस्थानीय है ।

जो लोग ग्लेनविलको केवल डाकिनी-वृत्तिका समर्थक समझते हैं, वे यह सुनकर उलझनमें पड़े बिना न रहेंगे कि वह घोर नास्तिक भी था । उसने 'मताभिमानकी मूर्खता या मतोंपर अति श्रद्धा' नामकी पुस्तक लिखकर अपने दार्शनिक विचार प्रगट किये थे । उनसे जाना जाता है कि डाकिनोंको माननेवाले लोगोंमें जो वहम और अतिश्रद्धा दिखाई देती थी वह उसमें नाममात्रको भी न थी । उसने बेकनकी कुछ सूचनाओं को विस्तृत करके मानवी शक्तियोंका विशाल निरूपण करने, अपनी विवेक शक्तिको दूषित अथवा भ्रमित करनेवाली समस्त विकृतियोंका पृथक्करण करने, तथा अपने अल्पज्ञानके आसपास फैलेहुए अगाध अज्ञानान्धकारके अनुमान करनेका अति गहन कार्य्य अपने सिर पर लिया था । डेकार्ट्सके समान उसका भी मत था कि— 'शिक्षासे प्राप्त हुए विचारोंको अलग रखना सत्य शोधकी पहिली सीढ़ी है ।' प्रत्येक प्रजा या देशमें प्रचलित धर्म्मपंथसे

वहाँकी तात्कालीन विचार-पद्धति और मानसिक स्थितिका बहुत निकट संबंध रहता है। इसीलिए उसने सोचा कि नये विज्ञानशास्त्रके कारण मानसिक स्थितिका बदलना एक तरह से अनिवार्य्य है। ऐसी दशामें यदि धर्म्मसंस्थायें नवीन स्थित्यंतरके अनुकूल व्यवहार न करेंगी तो अँगरेजोंके मन पर से धर्मका अधिकार उठ जायगा। उसने देखा कि जो धर्म शंकाको दोषरूप गिनता है, जो निष्पक्ष शोधका उत्साह भंग करताहै और जिसका अंतिम आधार केवल अधिकार पर अवलम्बित है, वह नवीन तत्वज्ञानके आगे कैसे टिक सकेगा? क्योंकि तत्वज्ञान उपदेश देता है कि 'शंका ही बुद्धिमानीकी पहली सीढ़ी है।' उसने 'उन्मादरहित धर्म और स्वतंत्र तत्त्वशास्त्र' नामक ग्रन्थ लिखकर विचारशील और छिद्रान्वेषी जमानेकी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेवाली एक काल्पनिक धर्मसंस्थाका उदात्त चित्र दिखलाया था। उसके मतसे ऐसे धर्मके सिद्धांत बहुत अनियंत्रित होना चाहिए, उसके आचार्योंको भूतकालकी कथामें एकत्रित करनेकी अपेक्षा शुद्ध और स्पष्ट विचारोंकी प्रौढ़ता तथा औदार्य्य प्राप्त करनेकी विशेष चिन्ता रखनी चाहिए। इसी प्रकार श्रद्धाको तर्कका शत्रु न समझ कर उसे एक आविर्भावके तौर पर मानना चाहिए। स्वतः मानवी निर्बलताका गहरा भाव होने पर अंधश्रद्धा और अंध प्रतिज्ञाके झुकावका निग्रह करना चाहिए, और लोगोंको सिखाना चाहिए कि शंकाको अपराध समझाने के बदले प्रत्येक मनुष्यका धर्महै कि वह जबतक अपने सीखे हुए सिद्धान्तोंके विषयमें स्वतः निष्पक्ष विचार और परीक्षा न करले, तबतक उसका सम्पूर्ण व दृढ़ अनुमोदन न करे।

इस प्रकार प्रमाण रहित धर्म्मसम्प्रदायका दो कारणोंसे समर्थन किया जासकता है;—एक तो विचारात्मक कारणसे

अर्थात् जो धर्म अन्तःकरणको रुचिकर हो और जिसमें मनुष्य-के अन्तर हृदयकी ज्योतिका प्रतिबिम्ब दिखाई देता हो, वह अपने आप ही लोगोंके हृदय पर अधिकार जमा लेता है; दूसरे, उसकी सत्यताके विषयमें युक्तिपूर्ण प्रमाण देकर एक मतावलम्बी संस्थाके समान उसका मंडन किया जा सकता है। ग्लेनविलनने अपने मानसिक झुकाव और उस समयकी नैतिक अधोगतिके कारण नैतिकमार्गको छोड़कर युक्तिसे सिद्ध करनेका मार्ग पकड़ा। उसने सोचा कि मुझे जिस मैदान पर युद्ध करना है वह डाकिनी प्रयोग है। कारण कि उसकी अनेक समकालीन दैवीघटनायें, सुगमतापूर्वक कसौटी पर कसी जा सकती हैं। क्योंकि उसने सोचा कि प्राचीन घटनाओं पर लोगोंका विश्वास नहीं रहता है, अथवा वे उन्हें भूल जाते हैं; परन्तु ये (डाकिनी सम्बन्धी) वृत्तान्त बिलकुल ताजे और श्रद्धाजनक संयोगोंसे परिपूर्ण हैं; अतएव मुझे आशा है कि मैं इन वृत्तान्तोंके द्वारा नास्तिकोंके दुराग्रह को हटानेमें सफल हो सकूँगा।

उसका 'नास्तिक्य-पराजय' नामका ग्रन्थ डाकिनी प्रयोगके उत्तमोत्तम ग्रन्थोंमें से हैं। उसमें उसने पहले इंग्लेएडमें अनास्थाकी सहसा होनेवाली वृद्धिका मनोहर चित्र खींचा है। यह अनास्थाका प्रवाह राज्यप्रत्यर्पण (Restoration) के समयसे प्रवाहित होने लगा था, इस प्रवाहको रोकनेके लिए उसने देवताओंसे सम्बन्ध रखनेवाले वृत्तांतों के विषयमें श्रद्धाके साधारण प्रश्नकी खोजकी। वह समझता था कि प्रमाण तो बहुत हैं, परन्तु जबतक उसके विषयमें पहलेसे जमा हुआ असंभाविताका खयाल लोगोंके मनसे दूर न हो जायगा, तबतक चाहे जितने प्रमाण क्यों न दिये जायं, सब व्यर्थ हैं, लोग उन्हें हर्गिज न मानेंगे। अतएव वह

इसी प्रयत्नमें लग गया। वह लिखता है कि 'अनास्थाका प्रवाह' भी एक प्रकारका भोलापन है। सारी दुनियाँ झूठी और हम सच्चे ऐसा माननेवाले नास्तिक लोग, भूत प्रेतादिकी मान्यता स्वीकार करनेवाले लोगोंकी अपेक्षा अधिक भोले हैं।

इस 'नास्तिक्य-पराजय' नामक ग्रन्थकी असाधारण जीत हुई। उसकी सैकड़ों आवृत्तियाँ निकलीं, और अनेक समर्थ विद्वान् उसके विचारोंका समर्थन करनेके लिए उठ खड़े हुए। इस ग्रन्थने कुछ समयके लिए इंग्लेण्डमें डाकिनी प्रयोगकी चर्चाको एक मुख्य विषय बना दिया था। परन्तु इसके विरुद्ध पक्षकी ओरसे जो चर्चा हुई वह बहुत मन्द थी, उसका कोई प्रसिद्ध लेखक मैदानमें नहीं आया। उनमें केवल बेक्सटर नामक एक शस्त्रवैद्यकी पुस्तक उल्लेखनीय है। कारण कि उसमें बाइबिलमें वर्णित दैवीकृत्योंका स्पष्टीकरण करनेका प्रयत्न किया गया था। उसमें लिखा था—'इजिप्टके तान्त्रिक केवल हाथकी मामूली चालाकी दिखानेवाले जादूगर थे; एन्डारकी डाकिनोंने सेम्युएलके बदले अपने किसी साथीको खड़ाकर दिया था; प्राचीन यहूदियोंके धर्मनियमोंमें 'विच' शब्दका अर्थ डाकिनके बदले विष देनेवाला होता था; भूताविष्ट लोग केवल पागल थे,—इत्यादि' इस प्रकार अनास्थाका प्रवाह दिन पर बढ़ता हो गया।

कुछ वर्षोंके पश्चात् इस प्रवाहको रोकनेके लिए अमेरिकामें बहुत प्रयास किया गया। इंग्लेण्डसे अमेरिकामें आकर बसने वाले पूर्वपुरुष अपने साथ इस वहमका बीज लाये थे। जिस समय इंग्लेण्डमें यह वहम बड़ी शीघ्रतासे निर्मूल हो रहा था, उस समय मेसेचुसेटसमें वह भयंकररूपसे विद्यमान था। उसके फलसे हजारों आदमी कैद भोग रहे थे, कई एक

अपनी जायदाद छोड़कर देशसे भाग गये थे, और २७ आद्मियोंको फाँसीकी सजा दी गई थी । एक अस्सीवर्षका बुड्ढा क्रूरताके साथ मार डाला गया । बोस्टन और चार्ल्सटनके धर्माध्यक्षोंने इस अत्याचार करनेवाली समितिको मानपत्र दिया, जिसमें उसके उत्साहके लिए अन्तःकरण पूर्वक आभार माना गया था और आशा प्रकटकी गई थी कि यह जोश कभी ढीला न पड़ने दिया जायगा । काटन मेथेरने इस अपराधके विषयमें एक पुस्तक लिखी, उसके विषयमें रिचर्ड बेक्सटनने अपनी सम्मति देकर इस वहमको उत्तेजित किया । अमेरिकामें इसका भारी प्रभाव पड़ा, परन्तु इंग्लैण्डमें उसका कुछ भी असर नहीं हुआ; क्योंकि वहाँ सब वर्गके लोगों में जो अनास्था फैल गई थी वह शान्ति और गम्भीरताके साथ मानसिक प्रगतिकी सहायतासे आगे बढ़ रही थी, उसका प्रवाह इतना बड़ा और प्रबल था कि एक मनुष्य—फिर चाहे वह कैसाही बुद्धिमान् क्यों न हो--अपनी शक्तिसे उसे कदापि नहीं रोक सकता था । राज्यपरावर्त्तनके समय अधिक पढ़े।लिखे लोगोंमें भी यह वहम साधारण रूपसे विद्यमान था, परन्तु सन् १७१८ ई० में वह केवल कुछ पादरियों तथा अपढ़ लोगोंमें ही अवशेष रह गया था । सन् १६८२ ई० में तीन डाकिनें जलाई गईं, सन् १७१२ ई० में भी कुछ डाकिनोंके प्राण लिये गये, परन्तु वे न्यायके आदेशसे मारी जाने वाली अन्तिम डाकिनें थीं । इनमेंसे जेनवेन्हाम नाम्नी महिलाका मुकद्दमा जानने योग्य है । इस रमणी पर हर्टफर्ड प्रान्तके कुछ पादरियोंने डाकिनीवृत्तिका दोष लगया था । न्यायाधीशको स्वतः ही डाकिनोंके विषयमें विश्वास नहीं था, इसी कारण उसने अभियुक्ताका पक्ष लेकर

जूरीसे बहुत बहस की, परन्तु जूरीने अपनी अज्ञानताके
कारण उसे दोषी ठहराया ; परन्तु न्यायाधीशने उसे निर्दोष
कहकर छोड़ दिया। फरियादी पादरियोंने अभियुक्ताको अप-
राधी प्रमाणित करनेके लिए एक लेख लिखा और उसमें न्याया-
धीशके आचरण पर भी खूब चोट कीगई। सन् १७३६ ई० में
जब उक्त कानून रद्द किया गया तब किसी प्रकारकी कठिनाई
या क्षोभ उत्पन्न नहीं हुआ। अन्तमें सन् १७६८ ई० में जान
वेस्लीने एक लड़कीकी कही हुई बातें प्रकाशित कीं। उसमें
उसने लिखा कि 'इंग्लेण्ड तथा यूरोपके अनेक विद्वानोंने
डाकिनोंकी बातें मानना छोड़ दिया है, इसके लिए मैं बहुत
दुःखी हूँ; परन्तु उनको जानना चाहिए कि डाकिनोंके वि-
श्वासको झूठा कहना बाइबिलको असत्य ठहराना है।'
परन्तु इन उत्साहपूर्ण शब्दोंका प्रभाव अरण्यरोदनके
समान हुआ।

इंग्लेण्डमें डाकिनी-प्रयोगके इतिहासका सिंहावलोकन
करते समय हमको यह देखना न भूल जाना चाहिए कि
यूरोपके केथेलिक और प्यूरिटन पंथवालोंकी अपेक्षा इंग्लैंड-
की धर्मसंस्थाओंने बहुत कम जुल्म किये हैं। वहाँके उच्च-
श्रेणीके पादरियोंने जो आत्मसंयम दिखलाया है, वह प्रशं-
सनीय है, यही नहीं, वहाँके बड़े बड़े वहमी धर्म्माचार्य्य भी
यूरोपके आचार्य्योंके समान रक्तपिपासु नहीं थे। यूरोपमें
मौतसे जरा भी कम सजा देना, ईश्वरीय अपमान करना
समझा जाता था। कोई कोई लोग तो यहाँ तक कहते थे
कि डाकिनोंको जलानेके पहले फाँसी पर लटकानेका रिवाज
अनुचित है। उनके मतसे डाकिनें ईश्वरकी अपराधिनी
थीं, अतएव उनके साथ किसी प्रकारकी रियायत करना
या उनकी तकलीफ़ें कम करना ईश्वरका अपमान करना

था। इङ्गलेण्डमें प्रायः ये सब बातें नहीं थीं। डाकिनोंके शोधके समय शारीरिक यातनाओंके देनेका कोई प्रमाण भी हमें नहीं मिलता है। यहाँ भूत विसर्जनके मंत्रों या उन्माद उत्पन्न करने वाले उपदेशोंके द्वारा धार्म्मिक त्रासको बढ़ानेका उत्साह भी यूरोपकी तुलनामें बहुत कम था। परन्तु स्काट-लेण्डका हाल इससे भिन्न प्रकारका ही था। वहाँके प्यूरिटन धर्माचार्य्य, लोगोंके आचरण तथा स्वभाव पर अपना प्रभाव डालने तथा अपने निष्ठुर और तामसी सिद्धान्तोंको जन-समूहके प्रत्येक वर्गमें प्रसार करनेमें पूर्ण सफल हुए थे। जिस समय इङ्गलेण्ड अनेक प्राचीन वहमोंसे मुक्त होकर ज्ञानके मार्ग पर सपाटेके साथ आगे बढ़ रहा था, उससमय स्काटलेण्ड अपने गुरुओंके पैरों पर स्वेच्छासे काँपते काँपते प्रणिपात कर रहा था। एक ओर मानसिक अनाथता सीमा-को पहुंच गई थी और दूसरी ओर निष्ठुर निर्दयतासे त्रास फैल रहा था। स्काटलेण्डके पादरी लोकमतकी सहायतासे तमाम विरोधोंको चुप कर देने, प्रतिकूल विचारोंका एक शब्द भी न बोलने देने और गृहस्थोंके घरकी निजीसे निजी बातोंमें भी हस्तक्षेप करनेमें पूर्ण समर्थ थे। वे स्वरचित धार्मिक नियमोंको अपनी इच्छानुसार पालन करानेकी पूरी क्षमता रखते थे। लोगोंके हृदय पर उन्होंने अपना काबू इतनी दृढ़ताके साथ जमा रक्खा था कि आज हम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। वे निरंतर मनुष्योंकी दुर्दशा, ईश्वरीयकोप शैतानकी भयंकर सत्ता तथा उसकी रात दिनकी उपस्थिति और नरककी यातनाओं आदिका भान कराते थे; निरन्तर उपदेश दिया जाता था कि महारोग, प्रकृतिक उपद्रव, दुष्काल और मनुष्यों पर पड़ने वाली या जमीनकी फसल नष्ट करने वाली प्रत्येक भयानक आपत्तिका

कारण शैतान ही है। उसके पृथ्वी पर आकर अनेक रूपसे दिखाई देनेकी बात भी कही जाती थी। ऐसी शिक्षाओंका स्वाभाविक प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता है। जहाँ महान् अंधश्रद्धा सर्वत्र अपना विजयमंत्र फूकती थी, जिस देशकी बुद्धि ऐसी भयंकर चिन्तवनोंसे चेतन्यहीन और वातुल बन रही थी, जहाँ विनोदके सभी साधनोंका द्वार बन्द था, और जहाँ मनुष्योंकी विचारशक्ति एकाग्र मनसे धार्मिक विषयों-में ही उलझी हुई थी, वहाँ ऐसी शिक्षासे डाकिनी-प्रयोगका जन्म होना स्वाभाविक ही है। डाकिनी-प्रयोग चहुंओर फैले हुए उन्माद का एकमात्र स्वरूप था—विकारग्रस्त कल्पनाओंसे उत्पन्न होने वाले धर्मका प्रतिबिम्ब था। इन विषयोंमें आगे भयंकर बृद्धि हुई और उसने अपना काला स्वरूप प्रकट किया। अन्य देशोंमें इस वहमके साथ बहुत कुछ धूर्त्तता भी सम्मिलित हो गई थी, परन्तु स्काटलैंडमें वह शुद्ध उन्माद रूपमें था। पादरियोंकी शिक्षासे उसकी उत्पत्ति हुई थी और उनके जुल्मसे उसको सर्वत्र पोषण मिला था। ये लोग पूर्ण उत्साह, सच्ची उमंग और दयाहीन रक्तकी पिपासा से अपना काम बजाया करते थे। जब किसी स्त्रीपर डाकिनी-वृत्तिकी शंकाकी जाती थी, तब वह पवित्र धर्मपीठसे तुरन्त तिरस्कृत कर दी जाती थी, अनुयायियोंसे उसके विरुद्ध साक्षी देनेका आग्रह किया जाता था और साथ ही उसको आश्रय देनेकी सख्त मनाही कर दी जाती थी। ऐसी स्थितिमें डाकिनोंके मुकदमें बिलकुल पादरियोंके ही हाथमें रहते थे। पापकी स्वीकारिता पादरियों द्वारा मुकर्रर हुए मुख्याधिकारीके सामने कराई जाती थी। हाँ कहने वाले साक्षी भी पादरी ही हुआ करते थे और स्वीकारिता करानेके लिए कैदियोंको त्रास देनेका काम भी इन्हींके हाथमें सोंपा जाता था। अतएव जब हम इन सब बातोंकी

ओर दृष्टि डालते हैं और देखते हैं कि इन यातनाओंकी शिकार बहुधा निर्बल और विकल स्त्रियाँ ही हुआ करती थीं, तब हमको उनके प्रेरकों और उत्तेजकोंकी ओर गंभीर तिरस्कार उत्पन्न होता है। कोई डाकिन यदि हठीली हो और अपने अपराधको शीघ्र स्वीकार न करती हो तो कहा जाता था कि इसका सबसे अच्छा इलाज निरंतर रात दिन जागरण कराना है। चार कीलों वाली लोहेकी छड़ उसके मुंहके आस पास बाँधी जाती थी और वे चारों कीलें उसके मुंहमें दे दी जाती थीं। उक्त छड़ एक साँकल द्वारा दीवालमें इस प्रकार जड़ दी जाती थी कि बंदी सोने नहीं पाता था। ऐसी दशामें वह लगातार कई दिनरात रक्खा जाता था। कहीं पल भरके लिए आँखें बंद न करले इसके लिए पहरेदार मुकर्रर रहते थे। स्काटलेंड में कहा जाता था कि डाकिनोंको जब तक पानी पीनेके लिए मिलता रहता है तबतक वे अपराध स्वीकार नहीं करती हैं, इसी कारण बेचारी ऐसी भयंकर बेदना के मध्य प्यासी रक्खीं जाती थीं। कहा जाता है कि अनेक कैदियोंने पाँच रातके जागरणके पश्चात् और एकने तो नौ दिन के जागरणके बाद देह छोड़ी थी!

इस प्रकार निरंतर होने वाले शारीरिक और मानसिक दुःखोंसे कई लोग अपना निश्चय छोड़ बैठते थे और कई एकोंका मस्तिष्क फिर जाता था। इससे भी अधिक दुःख देनेके यंत्र प्रस्तुत थे। अँगूठा छेदने, छेनीसे धीरे धीरे पैर रेतने, पत्थरका जूता पहिनाने (जो गरम रखनेके लिए निरंतर अग्निमें रखा जाता था) तथा गरम सलाकाओंसे शरीर दागने आदिकी सजादी जाती थी।

इन उपायोंके द्वारा कितनी अधिक कबूलतें कराई गई— कितने अधिक अपराधी मारे गये, उनकी गणना करना कठिन

है। कैथोलिक देशोंमें वे जादूगर नहीं मारे जाते थे जो रोग मिटानेके लिए अपनी शक्तिका उपयोग करते थे, परन्तु स्काटलेण्डमें वे तुरन्त मार डाले जाते थे। साधारणतः डाकिनोंको जलानेके पहले फाँसी पर लटकाकर मार डालनेकी प्रथा थी, परन्तु कभी कभी यह दयायुक्त प्रथा भी ताकमें रखदी जाती थी। मार नामक गांवके एक उमरावका कथन है कि एक समय एक स्त्री धीमी आगमें से अधजली निकलकर दर्शकोंके बीच निराशासे चारों ओर घूमने लगी। परन्तु वह तुरन्त ही एक ओर तिरस्कारकी आवाजों और दूसरी ओर निरपराधिनी! निरपराधिनी! की भीषण चिल्लाहटके मध्य फिर उसी अग्नि-कुण्डमें डालदी गई। अंतमें वह भयंकर और अत्यन्त करुणाजनक चीत्कार करते करते चेतनाहीन होकर चितामें गिर पड़ी। ऐसी घटनाओंको लिपिबद्ध करना इतिहास-लेखकोंका खेदयुक्त फर्ज है, परन्तु भूतकालके सत्य अभिप्रायको प्रकट करनेके लिए उसे ऐसे फर्ज़से डरना नहीं चाहिए। स्काटलेण्डका डाकिनी-प्रयोग प्यूरिटन पंथका बच्चा था और इस बालकमें पिताके सब गुण दिखाई देते थे; धर्म्मक्रान्तिके पहले लोग अज्ञानसे वहमी अवश्य थे, परन्तु उनमें डाकिनी-प्रयोगका घोर स्वरूप इतना कम था कि वहाँ सन् १५६३ ई० तक उसके विरुद्ध कानून नहीं बना था और सन् १५८० तक उक्त कानून पूरी सख्तीके साथ अमलमें नहीं लाया जाता था। परन्तु इसके पश्चात् पादरियोंके हाथमें आसीम सत्ता आ-गई और उनसे कोई कुछ कहने सुनने वाला नहीं रहा। उनके आचरण परसे साफ़ जाना जाता है कि वे मानसिक अधोगति को प्राप्त होचुके थे, इतना ही नहीं, किन्तु चिरकालव्यापी दुर्गुणोंके अभ्याससे उनकी शुभभावनाओंको मानो लकवा मार गया था। तो भी इन लोगोंने अनेक समय पर अपने

उत्तम गुणोंका परिचय दिया था, चारों ओर फैले हुए त्राससे ये कभी विचलित नहीं हुए थे और न इन्होंने कभी किसी राजा-की प्रीति सम्पादन करनेके लिए अपने हृदयको ही बेचा था। अपने पवित्र धंदेमें इन्होंने जो अपूर्व उत्साह और आत्मोत्सर्ग दिखलाया, वह अतुलनीय था। जो लोग संसारके अन्य समस्त व्यवहारोंमें सुशीलता और प्रेमका बर्ताव करते थे, उनके सिर पर उक्त दोष मढ़नेकी अपेक्षा हम उस धर्मपद्धति-को ही दोषी कहेंगे जिसने उनको इस स्थिति तक पहुंचाया था। जिन मनुष्योंके विषयमें लोगोंका ऐसा खयाल था कि प्रभुने उनको नरकयातना भोगनेके लिए ही उत्पन्न किया है और वे प्रभुके शत्रु हैं, उनके दुःखोंके विषयमें मनमें निष्ठु-रता उत्पन्न होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

स्काटलेण्डमें इस मान्यताकी अवनतिका इतिहास पढ़ते समय दो बातोंकी ओर ध्यान जाता है, एक तो इङ्गलैण्डकी अपेक्षा स्काटलेण्डमें अनास्थाका बल बढ़नेमें बहुत समय लगा, दूसरे पादरी लोग सबसे पीछे इसके वशमें हुए। १७ वीं शताब्दीके अंत तक वहाँ डाकिनी-वृत्ति सम्बन्धी अभि-योगोंकी संख्या बहुत अधिक थी, परन्तु इसके बाद ही वहाँ उनकी कमी होने लगी। कहा जाता है कि सन् १७२२ ई० में एक डाकिनका अंतिम खून हुआ था, परन्तु कप्तान बर्ट कहते हैं कि सन् १७२७ में भी एक स्त्री जलाई गई थी।

अब मैं रोम, इंगलेण्ड और जिनोवाके धार्मिक सम्प्रदायोंके इस डाकिनी-प्रयोग सम्बन्धी सिंहावलोकनको समाप्त करता हूँ। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि इसमें जो जो फेरफार जो जो परिवर्त्तन हुए, उनका कारण खोजनेके लिए हमको उस समयकी सामान्य धार्मिक और मानसिक स्थितिका पता लगाना चाहिए। अर्थात् उक्त डाकिनी-वृत्तिका उद्भव किन्हीं

पृथक् संयोगोंसे नहीं, प्रत्युत तत्कालीन विचारों और धार्मिक सिद्धान्तोंके प्रभावसे हुआ था। उसमें प्रत्येक मानसिक परिवर्त्तनका प्रतिबिम्ब इतनी स्पष्ट रीतिसे दिखाई देता था कि जिसे देखकर आश्चर्य्य होता है। अति प्राचीन कालके अज्ञानमें उत्पन्न हुए, त्रास और अतिश्रद्धाको बढ़ानेवाले भग-ड़ासे उस (डाकिनी वृत्ति सम्बन्धी बहम) का जीवन संकु-चित होगया, अंतमें सत्रहवीं शताब्दीसे चारों ओरसे धर्म पर आक्रमण करने वाले बुद्धि-स्वातंत्र्यके महानप्रवाहसे उसका क्षय हुआ। इस वहमका क्षय बहुत विस्तारके साथ लिखा गया है, क्योंकि बुद्धि-स्वातंत्र्यके प्रवाहकी यह सबसे पहली और सबसे महत्वपूर्ण जीत थी। जिस प्रवाहका वेग साम्प्रदा-यिक उन्माद अथवा किसी व्यक्ति विशेषकी प्रतिभासे वृद्धिंगत न हुआ हो, परन्तु जिसने लोकमान्यताको बदल डाला हो, ऐसे अन्य प्रवाहका दृष्टान्त शायद कचित ही मिलेगा। इसी-लिए वह बुद्धिविकाश के नियमोंका उत्तम उदाहरण है।

इस डाकिनी-प्रयोगके इतिहासको समाप्त करनेके पहले हमारे मनमें यह विचार उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकता है कि बुद्धिस्वातंत्र्यके विस्तारसे एक कितने बड़े दुःखका अव-सान होगया। अलबत्तह जब हमें याद आता है कि धर्मके नाम पर कैसी कैसी भयंकर आपदायें खड़ी की गईं, कितने असंख्य मनुष्य जैल जाने अथवा शूली पर प्राण विसर्जन करने पर बाध्य किये गये, अथवा धर्मयुद्धोंमें कितने अगणित लोगों का संहार हुआ, कितनी उदार और सुखी प्रजाओंमें सदाके लिए कलहका बीज बोया गया, कितनी अधिक सद्वृत्तियाँ निर्दयताके साथ कुचल डाली गईं—तब इनके सामने जीवित जला दिये गये कुछ सहस्त्र निर्दोष मनुष्योंका दुर्दैव बहुत भारी प्रतीत नहीं होता। हा! इन अभागोंने कैसी प्रगाढ़ वेदनायें

सहन की हैं! जो उच्छृङ्खल उन्माद भयके समय आत्माको बल देता और दुःखके समय शरीरको वज्रतुल्य बनाता है, वह उनमें नहीं था; जिस अटूट श्रद्धाके बलसे धर्मवीर पुरुष जलती हुई प्रचंड अग्नि-शिखाको स्वर्गमें ले जाने वाले विमानके तुल्य देखते हैं, वह श्रद्धा भी उनमें नहीं थी; विलाप करते हुए स्वजनोंके सकरुण सम्भाषण या मित्रोंके सहानुभूतिपूर्ण आश्वासनसे मिलाने वाली सांत्वना भी उनके भाग्यमें नहीं लिखी थी। हा, बेचारे असहाय अवस्थामें कैसी निष्ठुरतासे मारे गये! उनके प्रति किसीको तनिक भी दया या सहानुभूति नहीं हुई! तमाम लोग उनको महापातकी, महान् अपराधी समझते थे। सगे-सम्बन्धी भी उनको शापित तथा कलंकी समझकर उनसे घृणा करते थे। बाल्यावस्थामें जो वहम उनके हृत्पटलपर अङ्कित हो गया था, वह वृद्धावस्थाकी भ्रान्ति और उनकी उत्तेजनापूर्ण परिस्थितिसे और भी बढ़ गया और वे ऐसा समझने लगे कि हम शैतानके बंदी हैं, और इस जगत्के कष्टोंसे छुटकारा पाते ही हमको अनंत नरककी यातना भोगनेके लिए जाना है! इसके अतिरिक्त उक्त विश्वासके कारण सर्वसाधारणमें जो भय फैला था वह भी कुछ कम त्रासदायक नहीं था। 'अमुक मनुष्यको नाराज करनेसे वह क्षण भरमें हमारी समस्त प्रिय वस्तुओं को नष्ट कर सकता है, ऐसी भावनायें निरंतर लोगोंके मनमें झूला करती थीं। बुढ़ापेके कारण जिनका शरीर अत्यन्त जीर्ण और कमजोर हो गया है ऐसे वृद्धजन अपने पीछे रात दिन आरोपकी परछाहीं देखकर चौंका करते थे; अपनी अनाथ और असहाय अवस्थाका ख्याल आते ही उनका दुःख और भी बढ़ जाता था। इन सब दुःखों का एक मात्र कारण वहम था, जो बुद्धिस्वतंत्र्य के उदयसे विनष्ट हो गया।

दूसरा अध्याय।

अलौकिक चमत्कारोंके विषयमें घटता हुआ विश्वास।

धर्मसंस्थाओंका चमत्कार।

जिन मनोवृत्तियोंके कारण लोग अनिच्छा पूर्वक डाकिनोंकी मान्यताको झूठ समझकर पहले उससे पराङ्मुख होने, तथा अंतमें उसे खुल्लमखुल्ला अस्वीकार करने लगे; उन्हीं मनोवृत्तियोंके कारण आधुनिक चमत्कारोंसे सम्बन्ध रखनेवाले विश्वास परभी वैसा ही प्रभाव पड़ा। परन्तु इसमें पहलेके समान पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई, क्योंकि रोमीय संस्थामें इस समय भी अनेक चमत्कारिक शक्तियाँ प्रचलित हैं; इसके अतिरिक्त अनेक रोमीय चमत्कार उस पंथके मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंसे संयुक्त रहनेके कारण डाकिनोंकी मान्यताके समान उनका पूर्ण ह्रास नहीं हुआ। इस विषयको अधिक स्पष्ट करनेके लिए यहाँ उसका संक्षिप्त वर्णन लिखा जाता है।

यदि हम यह जानना चाहें कि धर्म्मक्रान्तिके पहले उस विषयमें लोगोंके कैसे विचार थे, तो हमको अपने मनसे पहले यह प्रोटस्टेण्ट ख्याल निकाल डालना चाहिए कि दैवी चमत्कार अपवादके समान क्वचित ही दृष्टिगोचर होते हैं, और इन चमत्कारोंका हेतु उस ईश्वरीय सत्यको प्रतिष्ठित करना है जिसकी स्थापना अन्य किसी रीतिसे नहीं हो सकती है। चौथी

तथा पाँचवी शताब्दीके आदि गुरुओं (Fathers of the church) के लेखोंमें ये चमत्कार विशेष रीतिसे दिखाई देते हैं। वे यह भी लिखते हैं कि इन चमत्कारोंका आविर्भाव विविध उद्देश्योंकी पूर्त्तिके लिए हुआ करता है। बहुधा दुःख निवारण करने, रोग मिटाने या भक्तजनोंकी कमी पूरी करनेमें उनकी योजना हुआ करती थी और इसीलिए वे ईश्वरीय कृपा-स्वरूप गिने जाते थे। बड़े बड़े साधु और महापुरुषोंको ऐसे चमत्कारोंके द्वारा बहुत मान मिलता था, या उनके कठिन व्रत पालनमें उनसे सहायता मिलती थी। किसी समय एक साधु एक महान् कठिन तपश्चर्य्या करनेके लिए बनको गया। वहाँ प्रतिदिन पक्षीगण उसके भोजनके लिए सामग्री लाया करते थे। कुछ दिनोंके उपरान्त उसके आश्रममें एक और साधु आगया। पक्षीगण उस दिनसे दूना भोजन लाने लगे। अंतमें जब उसका देहान्त हुआ तब बनसे दो सिंह उसकी कबर खोदनेके लिए निकले और उसकी मृतदेहके पास आकर विलापकी करुणगर्जना करनेलगे। एक और साधु था। उसका मत था कि अपनेको कभी नग्नस्थितिमें नहीं देखना चाहिए। एक दिन नदीका पूर आजानेके कारण वह निराश होकर किनारे पर खड़ा हुआ था। इतनेमें एक देवदूत उसकी सहायताके लिए आगया और उसने साधुको उठाकर नदीके उस पार रखदिया। ईसाई और मूर्त्तिपूजक दोनों ही इन सब बातोंके सिवा जादूकी शक्ति को भी सत्य मानते थे, इस कारण वे परस्पर एक दूसरेकी चमत्कारिक बातों पर तो विश्वास रखते थे, परन्तु उनके कृत्योंको आसुरी बतलाते थे।

अब हम मध्ययुगमें प्रवेश करते हैं। इस समयका वातावरण दैवीशक्तियोंसे परिपूर्ण दिखाई देता है और जहाँ तहाँ दैवी चमत्कारोंहीकी धूमधाम सुनाई पड़ती है। अनेक समय

पुण्यशील महात्माओंके तपश्चर्य्या करते समय उन्हें कोई जमीनसे अधर उठा रखता अथवा मरियम या कोई देवदूत उनसे भेंट करनेके लिए आया करता था। गाँव गाँव में यह प्रकट किया जाता था कि अमुक महात्माके स्मरण चिन्हसे बीमार लोग चँगे होजाते हैं, या अमुक भक्त के आगे अमुक मूर्त्ति अपने नेत्र मीच लेती या अपना मस्तक झुका देती है। एकवार संत एन्टनी किसी नदीके किनारे खड़े होकर उपदेश दे रहे थे, वहाँ उनका उपदेश श्रवण करनेके लिए झुंडकी झुंड मछलियाँ एकत्रित हुई थीं। बर्गोसकी ईसाकी मूर्त्तिके बाल काटना पड़ते थे। सारागोसा नगरमें कुमारिका मरियमकी मूर्त्तिने अपने एक भक्तकी नम्रतासे प्रसन्न होकर उसके टूटे हुए पैरको जोड़ दिया था। ईसा अथवा मरियमके स्मारकचिन्हके स्पर्शमात्रसे बड़ी बड़ी असाध्य बीमारियाँ मिट जाती थीं। ये स्मारक चारों ओर कल्याणकी वर्षा किया करते थे। जो पादरी जंगली लोगोंको उपदेश देनेके लिए जाते थे, उनके शत्रु अलौकिक चमत्कारोंको देखकर घबड़ा जाते थे और उनकी तामसी शक्तियाँ उनसे दूर भाग जाती थीं। जब कोई ईसाई राजा धर्मके लिए युद्ध लड़ता तब ईश्वरीय दूत उसकी फौजकी सहायता करने और शत्रुओंमें घबड़ाहट उत्पन्न करनेके लिए उन्हें अलौकिक चमत्कार दिखलाते थे। जब किसी मनुष्यके ऊपर झूठा कलंक लगाया जाता तो वह तुरन्त दिव्य-चिन्ह ग्रहण करके अपनेको निष्कलंक सिद्ध करता था और कलंक लगानेवाला व्यक्ति तिरस्कारपात्र तथा झूठा समझा जाता था। ये सब बातें सारे यूरोपमें नित्य हुआ करती थीं और उनमें किसीको कुछ भी आश्चर्य्य या संदेह नहीं होता था। पढ़े लिखे तथा अशिक्षित सभी वर्गके लोग प्रत्येक कठिनाईके समय इन्हीं उपायोंसे काम लेते थे।

समयके परिवर्त्तनके साथ-ही-साथ ये सब बातेंभी बदल गई। जिन देशोंमें प्रोटेस्टेएट धर्मकी जय हुई, केवल उन्हींमें नहीं, प्रत्युत साम्प्रत जिन देशोंमें रोमीयधर्म प्रचलित था, और जहाँ मध्ययुगके साधुओंकी पूजा होती थी वहाँ भी वे अदृश्य होगई। इन देशोंके सभी शिक्षित पुरुष चमत्कारोंके विषयमें खुल्लमखुल्ला तिरस्कार और अश्रद्धा प्रकट करने लगे। कुछ लोग अपने शिथिल और व्यर्थ उपदेशोंके द्वारा उसकी रक्षा करनेकी चेष्टा किया करते थे; परन्तु जो लोग उनको अविश्वासकी दृष्टिसे देखते थे वे उनकी सबूतियोंपर कुछ भी ध्यान नहीं देते थे। यह नहीं समझना चाहिए कि ये चमत्कार बिना किसी आधारके व्यर्थ ही झूठ कहे जाते थे। अलौकिक होनेके कारण ही लोग उनको अमान्य समझते थे। केवल जो लोग खुली तौरसे नास्तिक थे वे ही ऐसा नहीं कहते थे, किन्तु जो लोग अपने धर्मको सच्चे हृदयसे मानते थे वे भी ऐसा ही कहते थे—उनकी भी यही धारणा थी। जिन शिक्षित पुरुषोंका महान् समुदाय अपना जीवन विशेष करके व्यवहारिक धंधोंमें व्यतीत करती था और जो कैथोलिक धर्मके मुख्य सिद्धान्तोंको बिना किसी संदेहके श्रद्धापूर्वक मानता तथा उसकी प्रत्येक आज्ञाओंका अक्षरशः पालन करता था, वह भी प्रचलित जमानेकी साधारण पवनके अनुसार अपना अपना मनोभाव संगठित करनेके कारण ऐसा ही मत रखता था। इस विषयमें उनसे कोई पूछे तो वे हँसकर उत्तर देंगे कि बीसवीं सदीमें अब भी ऐसी बातें कहीं जाती हैं—यह वास्तवमें खेदकी है, परन्तु वे बातें सभी रोमनकेथोलिकों को मानना चाहिए यह जरूरी नहीं है। इसके सिवा अज्ञान लोगोंके वहमों परसे धर्मसंस्था के शिक्षित अनुयायियोंके विषयमें अनुमान बाँधना अनुचित है। उपरि लिखित झुकाव सुधारोंका स्पष्ट परिणाम है। जिस

प्रान्तके लोग चमत्कारों को उपहासपात्र न समझकर, सत्य मानते हैं, वे वास्तवमें अशिक्षित और सुधरी हुई दुनियाँसे भिन्न होनी चाहिए। यदि हम चिरकालसे पीछे पड़ी हुई किसी वहमी प्रजाको रेलगाड़ी, छापाख़ाना और रक्षाके नियमों आदिके द्वारा स्वतंत्रता प्रदान करके यूरोपीय प्रगतिके साथ जोड़ दें तो उसमें अवश्य ही उपरिलिखित विचारप्रवृत्ति या झुकावका सञ्चार दृष्टिगोचर होगा।

इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट है कि उक्त विचारवृत्ति किसी असाधारण घटना अथवा वर्तमान समयके अल्पायुषी साक्षरवर्गकी गलतीसे उत्पन्न होनेवाला क्षणिक उथलपुथल नहीं थी, समस्त इतिहास साक्षी देता है कि जैसे जैसे जन-साधारणकी बुद्धि विकसित होती गई वैसे ही वैसे अलौकिक चमत्कारोंकी संख्या भी घटती गई और अंतमें निःशेष हो गई। इस समय प्राचीन विचारोंकी प्रवृत्ति बिलकुल बदल चुकी थी, क्योंकि जो लोग चमत्कारोंको सत्य मानते थे वे कहते थे कि अब उनके न दिखाई देनेका कारण वर्त्तमान अश्रद्धाकी वृद्धि है, परंतु जो लोग उनपर अविश्वास रखते थे—उन्हें झूठ समझते थे वे कहते थे कि ये चमत्कारिक बातें मध्ययुगकी विचारप्रवृत्तिसे उत्पन्न होने वाली एक प्रकारकी धूर्त्तता अथवा कल्पनाशक्तिको उस ओर दौड़ानेका परिणाम है। दूसरे शब्दोंमें कहें तो एक वर्गके कथनानुसार प्राचीन प्रवृत्तिमें चमत्कारोंके देखनेकी अनुकूल स्थिति गर्भित थी, और दूसरे वर्गके मतानुसार प्राचीन प्रवृत्ति ही उन चमत्कारोंके जन्मका कारण थी।

इन बातों परसे एक महत्वका सिद्धान्त निकलता है कि दैवी वर्णनोंके माननेकी मनुष्योंकी अरुचि सुधारोंकी प्रगति और ज्ञान प्रसारके समप्रमाणमें होती है। इसका कारण

केवल यही नहीं था कि धूमकेतु और ग्रहण जैसे पहले दैव-कृत माने जाने वाले कुछ विषयों पर विज्ञानशास्त्रने प्रकाश डाला था क्योंकि रोमन कैथोलिक देशोंमें भी जहाँ उस समय विज्ञानशास्त्रका जन्म नहीं हुआ था—उक्त अनास्था दिखाई देती थी। इसके सिवा प्रोटेस्टेण्ट धर्मके आधुनिक सुधार भी उसका कारण नहीं कहे जा सकते हैं, क्योंकि रोमीय संस्थाके निरंतर उनको असत्य ठहरानेका प्रयास करने भर भी उन देशोंमें उक्त प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती थी; सच बात तो यह है कि सुधारोंकी प्रगतिसे ही अमुक प्रकारके भावों या प्रकृतिका संगठन होता है—उसके लिये कैसी ही मतान्ध शिक्षा क्यों न दी जाय, परन्तु उक्त स्थितिमें लोगोंको चमत्कारोंकी ओरसे इतनी अरुचि होजाती है कि वे उस ओरकी दलीलों पर कुछ भी ध्यान न देकर उन्हें अश्रद्धेय समझने लगते हैं। इस समय मैं यह विवाद नहीं करता कि उक्त मानसिक झुकाव भला है या बुरा, परन्तु यह तो निर्विवाद है कि जहाँ जहाँ सुधारोंकी गति आगे बढ़ती जाती है, तहाँ तहाँ उक्त झुकाव अवश्य दृष्टि-गोचर होता है।

इस अनास्थाका प्रभाव पौराणिक चमत्कारोंकी अपेक्षा समकालीन चमत्कारों पर अधिक पड़ता है। जो रोमन कैथे-लिक अपने समयके चमत्कारोंकी हँसी उड़ाते थे वे ही मध्ययुगके साधुओंके किए हुए वैसे ही चमत्कारोंको अत्यन्त श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। इसका कारण ढूँढ़ निकालना कुछ कठिन नहीं है। अपने सामने होनेवाले चमत्कारोंका हमको जितना अधिक साक्षात्कार होता है उतना प्राचीन कालके चमत्कारोंके विषयमें नहीं होता, और न वे उतनी तादृश्यता से अपने अनुभव ही में आते हैं। यही कारण है कि हम इस मापसे उनको नहीं तौलते हैं। वे अपने सामने

आख्यायिक वेशसे ढंके हुए, दीर्घकालके अँधकारसे अस्पष्ट भासते और इतने अधिक भिन्न जातिके संयोगोंसे लिपटे हुए रहते हैं कि अपनी कल्पनाशक्ति वक्रीभवनको प्राप्त होती है। इसके सिवा उनकी अनेक हकीक़तें रोमन कैथोलिक बालकोंके बचपनके संस्कारोंमें ऐसी ओतप्रोत भरी हुई होती हैं कि उनके अविकसित मस्तिष्कमें उनके विषयमें पूर्ण विश्वास जम जाता है और इसी लिए वे उनके विषयमें कभी मजबूत और निष्पक्ष रीतिसे विचार नहीं करते हैं। ऐसे कारणोंसे उनके मन पर पीछेसे जो असर पड़ता है वह प्रत्यालोचन रूपसे रहता है और इसी लिए वह प्राथमिक असरके समान दृढ़ नहीं होने पाता है।

जैसा कि हम पहले कह चुके वैसा पूर्ण फेरफार होनेका अवकाश प्रोटस्टेण्ट देशोंको नहीं मिला, क्योंकि प्राचीन विचारोंकी प्रवृत्ति अधिकांशमें नष्ट हो चुकने पर ही प्रोटस्टेण्ट शाखाकी जड़ जमी थी। यह शाखा धर्म्मक्रान्तिकी आधुनिक प्रवृत्तिसे उत्पन्न हुई थी और उसी प्रवृत्तिसे रँगी हुई थी। उसके नेताओंको अपनी परस्थितिके कारण समकालीन चमत्कारोंको असत्य ठहरानेकी आवश्यकता पड़ी थी। जिन पूजन विधियोंमें उनके कथनानुसार ईश्वरनिन्दा, मूर्त्तिपूजा और वहम भरा हुआ था, उन्हींके विषयमें वे ऐसा कब कह सकते थे कि उन्हें स्वीकार करानेके लिए ईश्वर असंख्य चमत्कारोंकी सृष्टि करता है। इसीलिए हम प्रारंभसे देखते हैं कि (डाकिनी प्रयोगके सिवा) वर्तमान चमत्कारोंको प्रोटस्टेण्ट लोग अश्रद्धा और तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते हैं। यही कारण है कि यह नवप्रतिष्ठित धर्म उक्त प्रकारकी धूर्त्ततासे बिलकुल मुक्त था। उसके नेता भी स्वीकार करते थे कि जगतमें ईसाई धर्म्मकी दृढ़ स्थापना होनेके पश्चात् चमत्कारोंका एकदम अवसान हो

गया। ईसाई धर्मके उदयकालीन ग्रन्थोंमें ऐसे चमत्कारिक वर्णनोंकी बहुलता पाई जाती है। इंग्लेंडके धर्म सुधारक इन ग्रन्थोंको बहुत श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। जिस समय लॉक नामक तत्त्ववेत्ता 'धर्म-शांति' के विषयमें ग्रन्थ लिख रहा था, उस समय उसे आक्सफोर्डके धर्माध्यक्षकी यह दलील सुननेमें आई कि 'जब तक राज्यसत्ताने खिस्थि धर्म-को मान्य नहीं किया तब तक उसकी स्थिति बहुत विकट थी। अतएव उसके लाभके लिए प्रकृतिके साधारण नियमोंका उल्लंघन होता था और उसकी विजयको सुदृढ़ करनेके लिए बारम्बार चमत्कारोंकी योजना हुआ करती थी। परंतु कान्स-टेन्टाइनका मत था कि खिस्ति धर्मके हाथमें राजसत्ताके आजानेसे देवी देवताओंका जमाना चला गया; क्योंकि धर्मकी वृद्धिके लिए ईश्वरने उसके हाथमें सब तरहके जोर जुल्म कर-नेकी सत्ता प्रदान की थी। इसीलिए जब सांसारिक उपायोंके द्वारा कार्य साधित किया जा सकता है, तब दैवी उपायोंकी कोई आवश्यकता नहीं रही।' परन्तु इस दलीलको सुनकर कुशाग्र बुद्धि लॉक जरा भी विचलित नहीं हुआ। उसने इस विषयमें सर ऐज़क न्यूटनसे सम्मति माँगी, परन्तु उसका मत डाँवा-डोल था। एकबार उसने कहा था कि 'दो सौ तीन सौ वर्षोंतक जो चमत्कार होते रहे हैं वे अवश्य ही विश्वास करने योग्य हैं।' परन्तु इस विचार लॉक सहमत नहीं हुआ। उसने उत्तर दिया 'जब तुम कान्सटेन्टाइनके चमत्कारोंको मान्य समझते हो तब फिर उसके पीछे घटित होने वाले चमत्कार भी मान्य तथा विश्वासनीय क्यों न समझे जायँ?'

लॉकके पश्चात् मिडलटनने 'स्वतंत्र-अन्वेषण' नामक ग्रन्थ लिखा। इस आधी शताब्दीमें लाकके विचारोंका इंग्लेंडके धर्म-साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। गत शताब्दीके प्राचीन

गुरुओंके ग्रन्थोंके विषयमें धर्माचार्य्योंको जो मोह हो गया था, अब वह दूर हो गया। फलतः उनके ग्रन्थोंकी ओर लोगोंकी श्रद्धा घटती गई और जो लोग उनका अध्ययन करते थे उनके मन पर भी उनकी युक्तियोंका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता था। १८ वीं शताब्दीका धर्म्म-साहित्य बिलकुल उत्साहशून्य मंद और निर्वीर्य्य था। उस समय ख्रिस्ति-धर्म्म लोगोंकी रक्षा करने वाले सिपाहीके समान, अथवा जनसमाजको संयुक्त रखनेके साधन-स्वरूप या केवल शिष्टाचारके चिह्नके समान रह गया था और उसमें से समस्त आवेश तथा रहस्योंको निकाल कर मानों उसे एक प्रमाणभूत नीतिशास्त्रका ग्रन्थ बना दिया था। जिस प्रवृत्तिसे गत शताब्दीमें डाकिनी-प्रयोगका नाश हुआ, उसी प्रवृत्तिका साम्राज्य उनकी पुस्तकोंमें दृष्टि-गोचर होता था। व्यवहार-बुद्धि उनके समस्त ग्रन्थोंका प्रधान लक्षण था। प्रत्येक धर्मोपदेशक कहता था कि ख्रिस्ति-धर्म्म किसी प्रकार मनुष्यकी विवेक-बुद्धिसे विरुद्ध नहीं है। वे लोग हृदयकी सद्वृत्तियों और तर्कशक्ति को बुरी लगाने वाली समस्त बातोंको उसमेंसे निकाल देनेमें लगे हुए थे। वे यह भी कहते थे कि जनसमाजको विशुद्ध बनाकर परस्पर एक दूसरेके अनुकूल बनाने, जीवनके समस्त सम्बन्धोंको शोभाप्रद करने, मनुष्यकी विवेक, बुद्धिके आदेशोंको उच्चतर सम्मति देने और ज्ञान-दृष्टिका विस्तार बढ़ानेके लिए ही धर्मकी सृष्टि हुई है। ऐसी शिक्षाओंके परिणामसे प्राचीन गुरुओंके चमत्कारोंको—जिनकी गणना ख्रिष्टिधर्म्मके प्रामाणिक विषयोंमें नहीं थी—असत्य माननेकी प्रवृत्ति वृद्धि पाती थी।

ऐसे विचारोंकी उथलपुथलके मध्य मिडलटनने आदि गुरुओं (Fathers cf the chuach) के चमत्कारों पर भारी हमला किया। उनके ग्रन्थोंमें असंख्य चमत्कारिक वर्णन हैं।

वे उनको अपने नेत्रोंके सामने या अपने समयमें घटित हुए बतलाते हैं। उनको पढ़कर इस निर्णय पर पहुंचे बिना छुटकारा नहीं मिलता कि या तो वे बातें वास्तवमें सच होना चाहिए या प्राचीन गुरुओंने अपने वाचकोंके भोलेपनका लाभ उठाकर उनको ठगनेका प्रयत्न किया होगा। मिडलटनने खुले शब्दोंमें कह दिया कि आदि गुरु झूठे थे। इन दलीलोंमें उसने इतनी अधिक निःशंकता, वाक्चातुर्य्य और निशानेबाजीसे काम लिया कि उस वादविवादसे सारा इंग्लेण्ड गूंज उठा। उसने साफ़ कह दिया कि चौथी शतब्दीके धर्म्मगुरुओंने पवित्रताको कलंकित किया था, यही नहीं, वे पगपग पर साधारण प्रामाणिकताको भी भंग करते थे। उन्होंने असत्यकी प्रशंसाकी थी और अपने ग्रन्थोंको असत्य बातोंसे रंगा था। सच्ची ऐतिहासिक बातोंको उन्होंने झूठ कहनेका साहस किया, धार्मिक प्रवंचनासे पूरा पूरा लाभ उठाया और बारम्बार छलपूर्ण व्यवहारसे लोगोंमें भक्ति बढ़ानेका प्रयत्न किया। जिन प्राचीन गुरुओंके ललाटके आसपास सैकड़ों वर्ष तक अखंड ज्योतिपूर्ण प्रभामंडल चमकता था, जिन महापुरुषोंने यूरोपीय-धर्म सम्प्रदायोंकी रचना की थी, जिनके लिखे हुए ग्रन्थोंका प्रमाण समस्त वाद-विवादोंमें दिया जाता था और जिनको अनेक पंथ नमन करते थे, मिडलटनका यह धावा उन्हीं लोगों पर था।

इस हमलेसे एक बहुत गंभीर और भारी प्रश्न उठ खड़ा हुआ। प्राचीन गुरु केवल रोमीय मंडल ही में नहीं; बरन सुधारक मंडलीमें भी बहुत मान पाते थे। इस धावेसे उनका आसन डगमगाने लगा। इङ्गलेण्डकी धर्म-संख्यामें तो उनका मान इतना अधिक था कि उनकी गणना ईश्वरप्रेरित लेखकोंकी श्रेणीमें की जाती थी। अब लोगोंके मनमें यह प्रश्न उठने लगा

कि मिडलटनका कहना यदि सच है तो उनको इतना मान देना मूर्खता है—यदि वे सचमुच ही अत्यन्त भोले और अप्रमाणिक थे और उनके मनमें सत्यकी अपेक्षा मतान्धताकी कीमत अधिक थी तो उनको इतना मान देना व्यर्थ है। जनसाधारणने मिडलटनके ग्रन्थोंका बहुत आदर किया और उसके साहसिक, अटल और श्रद्धाहीन भावने धर्माचार्य्योंके मनमें भयका सञ्चार कर दिया। आक्सफोर्डका महाविद्यालय उसके विरुद्ध पक्षमें उतर पड़ा, परन्तु उसे बेचारे प्राचीन धर्मगुरुओंकी रक्षाके लिए चर्च और होवेलसे अधिक चतुर वकील नहीं मिल सके। यह बात भी नवीन युगकी विलक्षणता सूचित करती है।

इस उथलपुथलका एक विचित्र परिणाम यह भी हुआ कि चमत्कारोंकी असत्यता अनेक विद्वानोंके मग़ज़में न समानेके कारण वे रोमीय मंडलमें जा मिले। वे कहने लगे कि वर्तमान समयमें दैवी सामर्थ्यके विषयमें लोगोंका ख्याल बहुत जीर्ण तथा कमजोर पड़ गया है—यह ठीक नहीं है। इतिहास लेखक मि० गिबनने तो डिग्री लिए बिना ही कालेज छोड़ दिया और वे रोम सम्प्रदायमें जा मिले। चिलिंगवर्थ और पेस्नलने भी यही किया। यह सब होने पर भी इतने बड़े बड़े विद्वान् पुरुष तक समयकी गतिके विरुद्ध अपना कुछ भी प्रभाव नहीं दिखा सके। उन्होंने मिडलटनके ग्रन्थोंके संक्रामक प्रभावको रोकनेके लिए कुछ नहीं लिखा! इस परसे कहा जा सकता है कि जो लोग अपने समयके अनिष्ट स्वरूपोंको भलीभांति पहचानते थे और रात दिन उनके दोष दिखलाया करते थे, वे स्वतः ही उन प्रवृत्तियोंसे मुक्त नहीं हो सके।

यदि उपर्युक्त सद्वृत्तियोंका इससे अधिक प्रभाव देखना

हो तो उसका उदाहरण अनेक प्रोटेस्टेन्ट देशोंमें शीघ्रताके साथ फैलने वाला बुद्धि स्वतंत्र-वाद है। यूरोपखंडका प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय उस ओर कितना अधिक झुका हुआ था, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि जिन देशोंके प्रधान धर्ममंदिर प्रभावपूर्ण क्रियाओं और बाह्याचारोंको प्राधान्य नहीं देते थे, और जहाँ विचारशक्ति रूढ़िके बंधनमें न रहनेके कारण स्वतंत्रतापूर्वक अपना क्रमविकाश करनेमें समर्थ थी, वहाँ यह बुद्धिस्वातंत्र्यकी प्रवृत्ति सबसे अधिक दृष्टिगोचर होती थी। यह सच है कि 'बुद्धिस्वातंत्र्य-वाद' ये शब्द कुछ अस्पष्ट हैं और उसमें अनेक प्रकारकी मान्यताओंका समावेश हो सकता है। बस, इसी लिए प्राचीन विचारोंके प्रोटेस्टेएट उपरिलिखित दलीलको बारम्बार तिरस्कार पूर्ण शब्दोंमें प्रकट किया करते थे, परन्तु वे उस समय यह बात बिलकुल भूल जाते थे कि जब प्रोटेस्टेएट शब्द पर भी यही आरोप २०० वर्षों तक किया जाता था, तब उसके समाधानके लिए वे दो कारणोंको पेश करते थे; पहला यह कि 'भिन्न भिन्न विश्वासों या मान्यताओंका होना प्रामाणिक शोधका एक अवश्यम्भावी परिणाम है;' और दूसरा यह कि 'उसके बहुरंगी गौणभेदोंमेंसे कई एक ऐसे हैं कि जिनके द्वारा विरुद्ध शाखाओंका वास्तविक ऐक्य सिद्ध हो सकता है।' प्रोटेस्टेएट तर्कवादके विविध रूपान्तरोंमें भी ऐसा ही साधारण ऐक्य देखा जाता है। उक्त तर्कवादका उद्देश्य मनुष्यकी अंतरात्मा सदसद्विवेक-शक्ति सम्पन्न होनेके कारण उसे उच्चतम बनाना और धर्मसाधन स्वरूप गिनना है। उसका मत है कि मनुष्यका मन ज्यों ज्यों नये नये दृष्टिप्रदेशसे फैलकर अधिकाधिक निर्मल प्रकाश सहन करनेके योग्य बनता जावेगा, त्यों त्यों ईसाई धर्म अधिकाधिक उदात्त और

ईश्वरमय बनकर मनुष्यजातिकी नीतिविषयक प्रगतिमें अग्र-स्थान प्राप्त करेगा। वह स्वीकार करता है कि धर्म्म प्रगतिके साधारण नियमोंका अपवाद नहीं हो सकता है, किन्तु वह उसके आविर्भावका उत्कृष्ट स्वरूप है। अतएव उसके प्राथमिक सिद्धान्तोंको अपूर्ण विकाशकी अनिवार्य्य परिपाटी स्वरूप गिनना चाहिए। उसकी दृष्टिसे धर्म्मका नैतिकतत्व मानों आकाशमें विराजनेवाला सूर्य्य है, और मतावलम्बी सिद्धान्त मानों उसकी चमकती हुई किरणोंको ढकने वाले बादल हैं। अब घड़ी भरकी आयुवाला जीव अपने मनमें यही न समझेगा कि ये बादल निरंतर रहते हैं और सूर्य्यकी तेजोमय किरणें कभी प्रकाशित नहीं होतीं, यह जो मैली मैली चादरसी दिखाई देती है उसीसे यह सब प्रकाश निकलता है। परन्तु वह बेचारा नहीं जानता कि ये बादल पवनके प्रवाहसे क्षण भरमें तहस नहस हो जाते हैं, घड़ी भरमें सारे आकाशको आच्छादित कर लेते हैं, घड़ी भरमें बिखर जाते हैं और जब अंतमें बिलकुल अदृश्य हो जाते हैं तब मेघ मंडलके ऊपर बहुत दूर तक अनंत आकाशमें दृष्टि जा पहुँचती है।

इस स्थल पर बुद्धिस्वातंत्र्य-वादके गुण दोषोंका सूक्ष्म निरूपण नहीं करना है। जो दर्शन (Systom) मानवी श्रद्धाके समस्त गत स्वरूपोंका उत्कृष्ट विवेचन करता है, जो दुराग्रहको त्याग कर विज्ञानशास्त्रकी प्रत्येक नवीन शोधको उल्लास पूर्वक स्वीकार करता है और जो बतलाता है कि मनुष्यका मन ईश्वरीय परमज्ञान प्राप्तिके मार्गमें निरंतर उच्च विषयोंकी ओर रुचि रखने वाला है, वह बुद्धिका प्रबल आकर्षण किये बिना नहीं रहता है। जो दर्शन श्रद्धाका प्रमाण बाँधनेमें मनुष्यकी नैतिकशक्तिको मध्यस्थ गिनता है वह नीति बलसे विक-

सित हुए मस्तिष्क पर अवश्य ही गहरा प्रभाव डालता है। निर्विघ्न और निरंतर होनेवाले विकाशका यह खयाल अपने ज़मानेमें खूब ज़ोर पकड़े हुए था। तत्कालीन किसी विषयकी कोई अच्छी पुस्तक देखो तो उसमें यह ख़याल किसी न किसी रूपमें अवश्य ही दृष्टिगोचर होगा। समस्त ऐतिहासिक साहित्यमें उसने खलबली मचा रक्खी थी; धर्म-साहित्यमें तो उसका प्राधान्य इतना अधिक था कि कोई भी शाखा उसके स्पर्शसे नहीं बची थी।

यह बुद्धि-स्वातंत्र्यवाद अनेक समय अस्पष्ट भासता था और कई विरोधाभासको भी उत्पन्न करता था, तथापि १८वीं शताब्दीमें वह जैसे प्रबल वेगसे बढ़ा था उसका कारण उपरिलिखित आकर्षण ही है। उसका मुख्य लक्षण और पहला प्रयास बाईबिलके चमत्कारोंको बंद करना था। अतएव कई मनुष्य तो उसका इतना ही संकुचित अर्थ समझते थे। वह ज़हाँ जहाँ प्रकट होता था वहाँ वहाँ वह चमत्कारिक बातोंको अश्रद्धेय सिद्ध करनेके लिए उनका कुछ स्पष्टीकरण करने और हर प्रकारसे उनसे मुक्त होनेका प्रयत्न करता था। अनेक जर्मन पादरी मुक्तकंठसे कहते थे कि चमत्कार अशक्य भले ही न हों, परन्तु वे असत्य अवश्य ही हैं। यीशुका जीवनचरित लिखते हुए मि० स्ट्राँग लिखते हैं कि समस्त चमत्कार, भविष्यवाणी देवदूत, राक्षस और ऐसी ऐसी अनेक बातें जगत्के साधारण नियमोंसे विरुद्ध हैं—अतएव वे सब झूठ हैं।

इस प्रवाहमें तैरनेवाले अनेक लोग अपने ऊपर पड़नेवाले असरका कारण जर्मन साक्षरोंकी बाईबिलका सूक्ष्म विवेचन समझते थे, परन्तु वे यह बात भूल जाते थे कि जिन रोमन कैथोलिक देशोंमें जर्मन साहित्यका तनिक भी प्रभाव नहीं था, वहाँ भी निरीश्वरवादी शाखा स्थापित थी। जिसने इस प्रबल

शाखाका सूक्ष्म दृष्टिसे अवलोकन किया होगा, उसे ज्ञात होगा कि उक्त शाखाने साहित्य और नीति पर कितना अधिक प्रभाव डाला था, तथा उसके अनुयायी वाल्टरके शिष्योंके समान केवल खंडन करनेवाले ही नहीं, प्रत्युत नीति विषयमें सच्चे ईसाई थे। उनका मुख्य उद्देश्य समानता, भ्रातृभाव, युद्धोंका नियंत्रण, गरीबोंकी उन्नति, सत्यप्रेम और स्वतंत्रताका प्रसार करना था। वे ईसाई झंडेके आसपास फिरते और दुराग्रही सिद्धान्तों तथा चमत्कारी वर्णनोंका खण्डन करते थे।

इस प्रकार प्रोटेस्टेन्ट देशोंमें बुद्धिस्वातंत्र्यवाद जो कार्य कर रहा था, लगभग वही काम रोमीय देशोंमें निरीश्वरवाद भी करता था। १६वीं तथा कुछ अंशमें १७वीं शताब्दीमें यूरोपकी सभी प्रवृत्तियोंमें सर्वत्र प्रोटेस्टेण्टवादका छाया दिखाई देती थी। जो जो महान् प्रश्न मनुष्यको मस्तिष्कको चक्करमें डाले हुए थे वे सब उसकी प्रकृतिके साथ जुड़े हुए थे, परन्तु १८वीं शताब्दीमें ये सब बातें बिलकुल ही बदल गईं। अब जो लेखक या विचारक कैथोलिक पंथको त्यागते थे वे प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदायमें प्रवेश नहीं करते थे और न वे मन्दिरोंकी ही प्रतिष्ठा कराते थे। शत्रुके घरमें भारी लूट मच रही थी, परन्तु प्रोटेस्टेण्ट शाखाको उसका कुछ भी लाभ या हिस्सा नहीं मिलता था। अवश्य ही उसको धर्म संस्थायें और क्रियायें प्रचलित रहीं, परन्तु उसमें एक समय जो लोह चुम्बकके समान आकर्षणी शक्ति थी वह अब नष्ट हो गई। कैथोलिक धर्म्मकी जो हानि हुई उसका पूरा पूरा लाभ तार्किक शाखाको मिला।

अलौकिक चमत्कारोंके विशाल क्षेत्रका दिग्दर्शन कराने के पश्चात् अब हम अंतिम निर्णय पर आते हैं। धर्म्मक्रान्तिके पहले जबसे साहित्यका पुनरुज्जीवन प्रारंभ हुआ, और यूरोपका सैकड़ों वर्षका अज्ञान और तन्द्रा दूर होने लगी, तब-

से इस विषयमें मनुष्योंका मन एक समान रीतिसे अविच्छिन्न उन्नति कर रहा है। इस प्रवृत्तिमें भिन्न भिन्न प्रजाओं और धर्म्मसंस्थाओंने थोड़ा बहुत भाग अवश्य लिया था और यूरोप भरमें ऐसा एक भी देश नहीं था जहाँ उसका असर बिलकुल न हुआ हो। विरुद्ध पक्षों पर भी उसके स्वरूपका प्रतिबिम्ब पड़ा था और वे आगे जाकर उसके प्रवाह में तैरने लगे। उसकी प्रगतिके मार्गमें रूढ़ि और विद्याकी सारी प्रबलतायें तथा प्राचीन कट्टरताकी (Conservatism) समस्त शक्तियाँ बाधक हुईं; परन्तु वे सब निष्फल गईं। हर समय चमत्कारोंका घेरा छोटा होता गया और अनास्थाका क्षेत्र बढ़ता गया। डाकिनी-प्रयोग, भूतावेश और उससे होने वाले रोगोंकी कहानियाँ बहुत समय पहलेसे कल्पित कथाओं-में गिनी जाती थीं। पहले इन बातोंको न मानना कुछ इने गिने लोगों का पागलपन मात्र समझा जाता था, परन्तु पीछे से वही पागलपन सबसे आगे बढ़ी हुई प्रजाओं के शिक्षित वर्ग का प्रधान लक्षण बन गया; और अब तो वह समस्त यूरोपीय देशोंके समस्त वर्गोंका एक मामूली ख़याल बन गया है। प्रत्येकस्मरण चिन्ह और प्रत्येक ग्रामीण धर्म मंदिरों-में होने वाले चमत्कार शांति और शीघ्रताके साथ बंद होगये, यदि कोई उनको पुनरुज्जीवित करनेका प्रयत्न करता था तो सब लोग उसकी हंसी उड़ाते थे। आदि गुरुओंके चमत्कार भी अश्रद्धा, निन्दा और निस्पृहताके कारण बंद हो गये; यही नहीं, तर्कवादका प्रबल प्रवाह बाइबिलके चमत्कारोंकी कलई खोलने लगा और उसने धार्मिक सिद्धान्तोंमें उनकी संख्या बहुतही कम कर दी। सब देशों, सब सब मतों, सब मंदिरों और भिन्न भिन्न प्रकृति और विचारोंके समस्त मनुष्योंमें उक्त झुकावका अस्तित्व दिखाई देने लगा। उसका

विकाश प्रत्येक प्रजामें मानसिक जागृतिका प्रमाण समझा जाता था उसने जनसमाजके भिन्न भिन्न स्तर (Sirata) में क्रम क्रमसे प्रसार किया। १८ वीं सदी में उक्त तर्कवाद प्रबल वेगसे बढ़ा और वह यूरोपीय बुद्धिको आकर्षित करने वाला मध्यबिन्दु बन गया। जो लोग उसकी प्रारंभसे आज तक होने वाली प्रगतिका अनुसन्धान करेंगे वे जान सकेंगे कि उसने धर्मके रूप और रंगको बिलकुल बदल डाला था। उसके उदयके समय कहा जाता था कि ख्रिस्ति धर्म्म मानवी विचारशक्तिसे अगोचर है, उसके विषयमें किसी प्रकारकी शंका या प्रश्न करना महान् अधर्म है, उसके गुण दोषों का विवेचन या उसके विषयमें कुछ अन्वेषण करना प्रभुका द्रोह करना है, तो भी उस समय सर्वत्र दैवी सामर्थ्य दृष्टिगोचर होता था और सब देशोंमें छोटे बड़े अनेक चमत्कार दिखाई देते थे, परन्तु उनसे कोई अनास्था या नवीनता उत्पन्न नहीं होती थी। वर्तमान समयमें ख्रिस्ति धर्म खुशीसे सूक्ष्म अन्वेषणोंका स्वागत करता और मनुष्यकी समस्त उत्साही प्रवृत्तियोंको उत्तेजित करता है।

इस महान् प्रवृत्तिके अनेक कारण हैं। उनमें से एक भौतिक शास्त्रकी विजय है। क्योंकि उसने प्रथम दैवी समझे जाने वाले अनेक चमत्कारोंका रहस्योद्घाटन किया था; इसी प्रकार उसने ईश्वरके स्वच्छन्दी और अनियमित व्यवहार के बदले, अविच्छिन्न-अस्खलित नियमोंका ज्ञान कराया था। उसका एक कारण-वर्तमान रीतिके अनुसार गुण दोषोंके विवेचन करनेमें दिखाई देने वाले सुदृढ़, सूक्ष्म प्रमाण भी है। परन्तु इन सबके अतिरिक्त एक और भी कारण है। व्यावहारिक जमानेमें मतान्ध धर्म्म भावनायें उत्कटरूपसे नहीं रह सकती हैं, इसी लिए लोगोंके मनसे दैवी चमत्कार तिरोहित

हो जाते हैं। जीवन व्यवहारमें जब धर्म्म अग्रस्थान प्राप्त करता है और लोगोंका मन रात दिन उसी विषय में लगा रहता है, तब उनके मनमें एक प्रकारकी धार्मिक धारणा जम जाती है और वे उसी धारणाके अनुसार समस्त विषयोंका विचार करने लगते हैं। जिस समय बुद्धिका सारा प्रयास धर्म अध्ययनमें लगा हो और साहित्य, राजनीति, कला-कुशलता प्रभृति भी केवल उसीकी सेवाके लिए जीवित हों तथा जिस समय लोगोंका मन केवल धार्मिक विषयोंके चिन्तवन हीमें मुग्ध रहता हो उस समय अलौकिक चमत्कार सर्वव्यापक हों तो इसमें कुछ भी आश्चर्य्य नहीं है। परन्तु इसके विपरीत जब धार्मिक विचारोंका स्थान सांसारिक विचार छीन लेते हैं, जब प्रगति के प्रवाहमें पड़कर साहित्य, राजनीति और कलाकुशलता प्रभृति व्यावहारिकरूप पकड़ने लगते हैं, और जब हज़ारों मानसिक उपाधियोंके कारण मनुष्योंका मन धार्मिक विचारोंसे हटने लगता है, तब धीरे धीरे नवीन विचारवाद उत्पन्न होता है और संभाव्यताका माप बदल जाता है, अर्थात् धर्मके बदले व्यावहारिक माप काममें आने लगता है। पहले मनुष्योंकी सहज इच्छा प्रत्येक बातको दैवी तथा धार्मिक रीतिसे समझनेकी थी, परन्तु अब उन्हीं बातों-को विज्ञान शास्त्रके आधार पर समझनेकी इच्छा होने लगी।

यह प्रवृत्ति सब मनुष्योंके मनके सामान्य नियमोंका एकमात्र परिणाम है। सामाजिक व्यवहारमें उसके अनेक प्रमाण मिल सकते हैं। सैनिक, वकील और पंडित सब अपने अपने धंधे पर से सब विषयों पर अपना मत स्थिर करते और उन्हें अपनी दृष्टिसे देखते हैं। इसी प्रकार धार्मिक खयालों से रंगा हुआ जमाना यदि सब विषयोंका अपनी धारणाके अनुसार निर्णय करे, या व्यवहारप्रिय मनुष्य अपनी

व्यावहारिक प्रवृत्तियों परसे सब विचार बाँधे तो इसमें आश्चर्य्यकी कोई बात नहीं है। यही कारण है कि अब सर्वत्र धार्मिक प्रभाव घट गया। उसके घटनेका कारण काकतालीय न्याय नहीं, किन्तु विश्वका एक महान् नियम है। इस समय जो लोग शिक्षा और परिस्थितिसे उत्पन्न हुए खास विचारोंसे मुक्त होना चाहते थे, उनके मनको समकालीन साहित्य अपनी ओर प्रबल शक्तिसे खींचता था। और जो लोग स्वतन्त्रतापूर्वक अपना मत निश्चित करना चाहते थे, उनके मस्तिष्क पर समकालीन विचार तथा साहित्य गहरा प्रभाव डाल रहा था। उनके सब वाद-विवादों पर प्रचलित विचारोंका गहरा रंग चढ़ गया था और यह बुद्धिस्वातन्त्रका ही प्रभाव था।

अब इस उथलपुथल परसे एक और महत्वका विचार सूझता है। हम यह जान चुके हैं कि उक्त उथलपुथलने ईसाई धर्म्म संस्थाओंका स्वरूप बदल डाला था। उसने उन संस्थाओंके केवल बाह्यरूप और लक्षणोंहीको नहीं बदला, बल्कि जिस विचार प्रणाली और धार्मिक वातावरणके द्वारा उसकी अधिकांश बातें घटित होती थीं उनको भी बदल डाला। साम्प्रत रोमीय देशोंके प्रचलित विचार यदि किसी १२वीं शताब्दीके ईसाईके सम्मुख रक्खे जायं, तो वह सहसा कह उठेगा—'यह तो धर्मका सत्यानाश ही होगया।' धर्म्मसंस्थाओंको समय समय पर बाहरके दबावसे इन सब परिवर्त्तनोंको स्वीकार करनेके लिए बाध्य होना पड़ता था। तत्कालीन अनेक पादरी इन परिवर्त्तनोंसे बचनेके लिए उनकी भरपेट निंदा करते थे। वे कहते थे कि ऐसे फेरफारोंसे धर्म्म नाश हो जायगा। सुधारोंके द्वारा धर्ममें क्रमशः परिवर्तन होनेका सिद्धान्त ईसाई धर्म्मके बिलकुल विरुद्ध था। उनका मत था

कि उत्तम धर्म्मसंस्था तो भूतकाल हीमें थी। अब हम पाद्रियोंके प्रदर्शित किये हुए विरोधकी तुलना अपने अनुभवके निर्मल प्रकाश द्वारा करेंगे। अलबत्तह इस समय मतावलम्बी सम्प्रदाय बिलकुल निःसत्व हो चुके थे, जीवनप्रवाहके साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। जोर जुल्म, धर्मयुद्ध, मनको मुग्ध करने वाले शास्त्रार्थ, पवित्र जादू और वैध प्रश्नोंपर उत्साहसे झुक पड़ने वाला धर्म्मसाहित्य—यह सब लुप्त हो गया था—या पहलेके मुकाबलेमें शक्तिहीन तथा मंद पड़ गया था। समस्त यूरोपकी धर्म्म सत्ता भी प्रत्येक प्रजाकी प्रगतिके प्रमाणमें निर्वीर्य्य हो गई थी। यदि हम धार्मिक इतिहासकी दृष्टिसे ईसाई धर्मकी वर्तमान दशाकी जाँच करें, और उसे प्राचीन धर्माचार्य्योंकी कट्टरताके जोशसे मापें, तो वास्तवमें उसके भविष्यकी ओर हमें अत्यन्त खेद और भयकी दृष्टिसे देखना पड़ेगा। क्योंकि इस समय आदि गुरुओंकी धार्मिक उत्तेजना बिलकुल ठंडी पड़ गई थीं; अथेनेशिअसके आगस्टाइनके दिन भी चले गये—अब उनके लौट आने की ज़रा भी आशा नहीं थी; विचारोंका प्रवाह एक अन्य ही दिशाकी ओर प्रवाहित होने लगा; गत शताब्दीके वादयुद्धोंकी विचित्र और निष्फल झंकार कानों परसे टकराकर चली जाती थी। परन्तु जब हम धार्मिक इतिहासको छोड़कर नये धर्म्ममें वर्णन की हुई कसौटीपर ईसाई धर्मको कसते हैं—या जब हम सोचते हैं कि अब इस नये धर्म्मवृक्ष पर प्रेम, औदार्य्य और सत्यशोधके मूर्त्तिमान फल फलेंगे या नहीं, तब हम इससे बिलकुल पृथक् ही निर्णयपर पहुँचते हैं।—जो भूतदयासे प्रेरित होकर दुःख और दुर्गुणोंको दूर करनेमें ही सच्चा धर्म्म हो; जो असीम प्रेमके झरनोंसे समस्त पृथ्वीको फलवती करने, तथा गंभीर और विशाल सहृदयताके क्षेत्रमें

मनुष्य जातिके समस्त भेदोंका समावेश करनेमें ही सच्चा धर्म्म गिना जाता हो; जो भिन्न भिन्न वर्गों तथा जातियोंके भेदभावके बीजको निर्मूल या कम करने, या विग्रहके क्रूर उपांगोंको दूर करने और समस्त दैवाधीन भिन्नताको भुलाकर वास्तविक समानता तथा भ्रातृभावका आचरण करना ही सच्चा धर्म्म हो; और विशेष करके सत्यके लिए सत्य प्रेमको विकसित करना तथा अपनेसे भिन्न विचार वालोंकी ओर सरल भाव और क्षमाशीलता रखना ही सच्चे और निरोगी धर्म्मका लक्षण हो तो समझना चाहिए कि ईसाके शिष्योंके समयसे आजतक कभी खिस्ति धर्म्मकी ऐसी उन्नति नहीं हुई।

तीसरा अध्याय ।

कलाशास्त्र, विज्ञानशास्त्र और नीतिशास्त्र विषयक बुद्धिस्वातंत्र्यवादका विकाश ।

१–कलाशास्त्रका विकाश ।

आप लोग पिछले अध्यायमें जान चुके हैं और अब अधिक स्पष्टताके साथ जान सकेंगे कि दैविक चमत्कारोंका इतिहास एक महान् विस्तृत प्रवृत्तिका प्रतिबिम्ब अथवा अङ्ग है और इस प्रवृत्तिके वर्तमान स्वरूपको तर्कवाद या बुद्धि-स्वातंत्र्यवाद कहते हैं। जिस विचारक्रमके द्वारा मनुष्योंके मनमें अलौकिक चमत्कारोंके प्रति अरुचि अथवा अश्रद्धा उत्पन्न हुई, उसीके कारण अन्य कई प्रश्नोंके विषयमें भी उनके विचार बदल गये। इस अध्यायमें उक्त प्रवृत्तिके भिन्न भिन्न अङ्गोंकी गणना करनेका, तथा यह बतलानेका कि ज्ञान प्रसारके साथ ही साथ ईश्वर तथा राज्यतंत्रके विषयमें लोगोंके विचार कैसे बदल जाते हैं, और इन परिवर्त्तनोंका मूल कारण क्या है, प्रयत्न किया जायगा।

एक प्रसिद्ध विद्वान्‌का मत है कि नितान्त जङ्गली अवस्थामें रहनेवाले मनुष्य स्वभावतः जड़पूजा (Fetishism) को पसन्द करते हैं, क्योंकि जड़वस्तुओंको मान देना तथा उन्हें स्वतः शक्तिमान् समझना ही प्रारंभीय धार्मिक विश्वासका

लक्षण है। इस जड़पूजाका छोटेसे छोटा स्वरूप किसी वस्तुकी पूजा करना या किसी पवित्र जंत्र या मुद्राओंमें दैवीशक्तिका अनुभव करना है। मूर्तिपूजकोंकी जादूपद्धति भी इसी प्रकारकी थी। उनको विश्वास था कि अमुक अमुक पौधों, क्रियाओं या शब्दोंमें दैवीशक्ति है। इसके अतिरिक्त ख्रिस्तिधर्ममें उसी समय शामिल हुए ऐसे ही अनेक वहमोंका समावेश भी इसी जड़पूजामें किया जा सकता है। इनमें 'स्वस्तिक-चिन्ह' अग्रगण्य है। वह केवल एक पवित्र स्मारक, या अभिज्ञान तथा भक्तिके चिन्ह-स्वरूप नहीं, किन्तु एक महान् प्रभावयुक्त दैवीआयुधके समान गिना जाता था। आदि गुरुओंने उसके अगणित पराक्रम वर्णन किये हैं। द्वितीय शताब्दीका एक लेखक कहता है कि पतवारके बिना समुद्र नहीं लांघा जा सकता है, क्योंकि वह स्वस्तिकके आकारकी होती है। पृथ्वी तभी फलवती होती है जब उसे कुदालीसे खोदो; क्योंकि कुदालीकी आकृति स्वस्तिकके समान है। मनुष्य देह भी वही पवित्र आकृति है, उसकी आंखों और नाकके द्वारा वैसा ही आकार बनता है। बालकोंको ईसाई धर्म्ममें दीक्षित करते समय उनपर जलके छींटे डाले जाते हैं—उसमें भी ऐसा ही सामर्थ्य माना जाता है। धम्मके प्रत्येक अङ्ग-प्रत्येक विभागमें इन विचारोंकी प्रबलता बढ़ती गई और इसके फलसे ऐसे अगणित जंत्र, तंत्र और रक्षाकवच उपयोगमें लाये जाने लगे—जो समस्त आधिभौतिक और आधिदैविक कष्टोंको निवारण करनेवाले समझे जाते थे। यहाँ पर प्रश्न किया जा सकता है कि यह जड़पूजा मूर्तिपूजकोंमें अधिक थी या मध्यकालीन ख्रिस्ति धर्ममें ?

जब मनुष्य जड़पूजाकी स्थितिसे मुक्त होने लगते हैं तब वे ईश्वरकी सगुणरूपसे पूजा करना सीखते हैं। यह

स्थिति ऊपरकी स्थितिसे बहुत मिलती है और प्रायः समस्त गैरसुधरी हुई प्रजाओंमें पाई जाती है। जब वे समझने लगते हैं कि जड़वस्तुमें स्वतः कुछ भी गुण या शक्ति नहीं है, तब वे सृष्टिमें अपने जैसे दैवी या ईश्वरीय शक्तिसम्पन्न प्राणियोंकी सत्ताका अनुभव करते हैं। वे प्रत्येक विलक्षण बातको किसी अदृश्यकर्त्ताका स्वच्छन्द काम समझते और उसे किसी विशेष उद्देश्यसे हुआ मानते हैं। ऐसे ही वे गर्जना, दुष्काल और महारोगोंको दैवकोपका परिणाम तथा एकाएक होनेवाली धान्यकी समृद्धिको दैवकृपाका फल समझते हैं। यह सब होनेपर भी कल्पनाशक्ति कमजोर होनेके कारण न तो वे ईश्वरके विषयमें मनुष्यकी अपेक्षा उच्चप्रकारकी कल्पना ही कर सकते, और न उसकी साकार मूर्त्तिके बिना उसपर अपने विचार तथा भाव ही स्थिर रख सकते हैं। क्योंकि सुधरी हुई जातियोंमें नैसर्गिक शक्तियाँ जङ्गली लोगोंकी अपेक्षा अधिक रहती हैं या नहीं, यह प्रश्न संशयग्रस्त होनेपर भी, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति पर उसके आसपासके संयोगोंका ऐसा प्रबल प्रभाव पड़ता है कि जिसके कारण दोनों वर्गोंकी शक्ति तथा ज्ञानमें बहुत अन्तर पड़ जाता है। बुद्धिबल, अविरत और शान्त विचार करनेकी शक्ति, अदृश्य विषयों पर मन एकाग्र करनेकी दृढ़ता तथा इन्द्रियोंकी काल्पनिक सृष्टिसे विचारोंको मुक्त करनेका बल, प्रभृति जो जो गुण सुधरी हुई जातियोंमें होना चाहिए, इनमेंसे जङ्गली जातियोंमें एक भी नहीं पाये जाते। किसी जङ्गली मनुष्यके सम्मुख अदृश्य तत्त्वका विचार उपस्थित करने और किसी बाह्यमूर्त्तिकी सहायताके बिना उसकी भक्ति करनेको कहो तो उक्त विचार उसके मस्तिष्कमें न समावेगा और इसीलिए उसके जीवन पर भी उसका

कुछ प्रभाव न पड़ेगा। मूर्तिपूजा समस्त असंस्कृत—गैरसुधरे हुए लोगोंका साधारण धर्म्म है और जब तक उनकी उक्त स्थिति नहीं बदलती तबतक वह किसी न किसी रूपमें उनमें प्रचलित रहती है।

मूर्त्तिपूजा दो प्रकारकी हो सकती है। कभी कभी वह प्रगतिका चिन्ह समझी जाती है। जब मनुष्य पहले पहल जड़-पूजासे मुक्त होने लगते हैं तब वे जड़-पदार्थोंको काटकूट कर उसे किसी बुद्धिमान प्राणीका रूप देते हैं, और इसके अनन्तर उसमें ईश्वर-भावकी स्थापना करते हैं। ऐसी स्थितिमें भी वे निर्जीव पदार्थकी पूजा करते हैं, परन्तु वह केवल जड़-पूजा नहीं है। इसके सिवा कभी कभी ऐसा अवसर आता है कि लोग परमात्माके शुद्ध निर्गुण स्वरूप तक पहुँचने पर भी किसी सामाजिक क्षोभसे सुधारोंकी निम्न सतह पर उतर आते हैं। ऐसी स्थितिमें वे अपने पूज्यदेवके चित्रों द्वारा अपनी कल्पना-शक्तिको बढ़ानेका प्रयत्न करते हैं और धीरे धीरे उन चित्रोंको ही स्वयं शक्तिवान् समझने लगते हैं।

उक्त नियमोंसे साफ़ जाना जाता है कि सगुणवादकी स्थितिमें दृश्य-मूर्त्तियों-द्वारा भक्ति की जाती है। अतएव जब तक उक्त स्थिति बनी रहती है तब तक धर्म्म अथवा धर्म्मके कल्पनामय और साक्षात्कार होनेवाले अङ्गोंका सच्चा इतिहास कलाशास्त्रके इतिहास परसे जाना जाता है। ख्रिस्ति धर्म्मके बाहर भी कदाचित् ही ऐसा उदाहरण मिल सकेगा कि जिसमें देशके धर्म्मका प्रबल प्रभाव देशके कलाशास्त्र पर न पड़ा हो। ईरान और मिश्रकी दो महान् प्राचीन प्रजाओंमें साधारण सुधारोंकी अपेक्षा कलाशास्त्र बहुत पीछे पड़ गया था। क्योंकि ईरानके लोग अग्निकी पूजा करते थे, यह ऐसी सादी और उत्कृष्ट जड़-पूजा थी कि उसके कारण शिल्पकार्य्य-

को अवकाश ही नहीं मिला। इसी प्रकार इजिप्टके कला-शास्त्रके अनुन्नत रहनेका कारण भी वहाँका धर्म्म था; क्योंकि उसकी आज्ञा थी कि कुछ भी नया करना पाप है। इसी प्रकार शरीरके चीड़फाड़ करनेकी मनाही होनेसे वहाँका शरीर-व्यवच्छेद-शास्त्र भी आगे नहीं बढ़ सका। सौन्दर्य्यका गहरा मर्म समझनेमें ग्रीस और भारतवर्षकी प्रजा अग्रगण्य थी, परन्तु उन दोनोंके मध्य बहुत भारी अंतर था। हिन्दू-धर्म्मकी कल्पनायें सदैव भयंकर, कृत्रिम और अतिशयोक्तिपूर्ण होनेके कारण भारतीय कलाशास्त्र प्रकृतिसे इतना विमुख हो गया था कि उससे प्रकृतिकी हूबहू नकल करनेकी शक्ति साफ जाती रही और सादेसे सादा विषय भी विलक्षण मानसिक कल्पनाओंसे भर गया। इसके विरुद्ध ग्रीक-धर्म्ममें प्रायः शुद्ध नैसर्गिक पूजा प्रचलित थी। जिससे ग्रीक-कला प्रकृतिके बहुत समीप जा पहुँची थी—वह प्रकृतिकी उत्तम अनुकरण स्वरूप थी और इसी लिए वह सारी दुनियाँकी आदर्शरूप हो गई।

अब ख्रिस्ति धर्म्म और ख्रिस्ति कलाशास्त्रके परस्पर सम्बन्ध पर विचार करना है।

बारम्बार आदेश देने तथा सख्त नसीहत करने पर भी प्राचीन यहूदी लोग फिर फिर मूर्त्तिपूजासे अनुराग दरशाते थे। इससे जाना जाता है कि जन-समाजके प्रारम्भीय-कालमें यह प्रवृत्ति कैसी अनिवार्य्य थी। यहूदियोंके उदाहरणसे ख्रिस्ति-धर्म्मको अनेक शिक्षायें मिलीं, जिससे इन लोगोंने पहलेसे ही येनकेन प्रकारसे मूर्त्तिपूजाकी प्रवृत्तिको दूर रखनेका प्रयत्न किया। इस काममें पहले उनको खूब सफलता मिली, परन्तु आसपासके मूर्त्तिपूजकोंका अन्य रीतिसे उनपर बिलकुल ही प्रभाव न पड़े—यह असम्भव था। इसी लिए उनमें ग्रीक

तथा रोमन लोगोंका कबरोंमें अफसोस पैदा करनेवाले चित्रों-के न लगानेका रिवाज कायम रहा। दुःखके आविर्भावको कायम रखने, रोष अथवा असंतोषको भड़काने, या बैर भँजानेकी तृष्णा कारीगरोंमें नहीं थी। ईसाका शूली पर चढ़ाये जानेका चित्र, अथवा शोक-प्रदर्शक-दृश्य कभी अङ्कित नहीं किया जाता था। इसी प्रकार कयामतका दिन अथवा नापाक लोगोंके नरक भोगनेके दुःख चित्रित करना भी निषिद्ध था। मूर्त्तिपूजकोंको फूलोंके हारका बहुत शौक था, इस लिए ये फूलोंके हार और प्राचीन कथाओंकी अनेक आनन्ददायी मूर्त्तियाँ इस समय तक चालू रहीं, और खिस्ति आशाओंके अनेक मनोहर नामों तथा दयाके लिए घटित हुए चमत्कारोंके चित्रोंके साथ उनका सम्मेलन हो गया। जिस समय ईसाई धर्म्म-मन्दिरोंमें शोक, दुःख अथवा बैरकी मूर्त्तियाँ उत्पन्न होना चाहिए थी, उस समय वहाँ वे पूर्ण-रूपसे लुप्त हो गई; जब हम इस बातका विचार करते हैं तब हमारे मनमें प्रारंभीय चर्चोंके विषयमें बहुत ऊँचा खयाल उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। यह हकीकत धर्मके इतिहासमें बहुत महत्वकी है। उस समय धर्म्म-गुरुओंके विचार केवल खिस्ति-धर्म्मके क्रूर अंगोंमें ही सञ्चार कर रहे थे, और इस विषयमें वे उपदेश भी दिया करते थे, परन्तु दशवीं शताब्दी-के अन्त तक उनका कुछ जोर नहीं चला। चित्रकला लोक-प्रिय हुनर था, इस लिए जब तक लोगोंका सामान्य झुकाव या साधारण प्रवृत्ति नहीं बदली तब तक पादरियोंका कुछ उपाय नहीं चला।

कबरें सुसज्जित करनेकी कलामें सांकेतिक चित्रोंकी खूब वृद्धि हुई। यीशु और मरियमके चित्र क्वचित ही मिलते थे। इन चित्रोंका मूल उद्देश्य शिक्षा देना था और इनमेंसे अधि-

कांश मूर्त्तिपूजकोंसे लिए गये थे। मोरका चिन्ह अमरत्वका चिन्ह माना जाता था। आर्फियस नामक देव अपने गायनसे सबके मनको आकर्षित करता था, इस लिए उसका चित्र धर्म्मकी अकर्षण-शक्तिका चिन्ह गिना जाता था। इसी प्रकार सूर्य्य, चन्द्र तथा ऋतु-देवियोंके चित्र भी प्रचलित हुए। प्रत्येक मनुष्यकी भाग्यदेवीका पद संरक्षक फिरस्तोंको मिला। हम मूर्त्तिपूजकोंके इन संरक्षक देवोंको आज भी संत पीटरके स्मृति-मन्दिरकी शिखर पर कैथोलिक धर्म्मकी प्रभावपूर्ण क्रियाओंकी ओर निहारते हुए देखते हैं। एक दो पाषाणके कफनों पर यीशुकी प्रतिमूर्त्ति भी दृष्टिगोचर होती है। उनके पैरोंके तले आसमानका जल और मुख पर बुरका है। यह कृति मूर्त्तिपूजकोंके जलदेवसे मिलती है। इसके पश्चात् ईसाई चित्रकारोंने कई एक नवीन चित्र भी प्रस्तुत किये, परन्तु वे सब संकेत रूपमें थे और उनकी पूजा नहीं की जाती थी।

परन्तु जब ईसाई धर्म्मकी उदयकालीन विशुद्धि घट गई और रोमराज्यके छिन्न भिन्न हो जानेके कारण जंगली लोगोंके आक्रमणसे यूरोपीय संस्कृति आच्छादित हो गई, तब चित्र-कारोंमें अपने मुख्य भक्तिपात्रकी प्रतिमा बनानेकी प्रवृत्ति उत्पन्न हुई और उसमें लोग विशेष पवित्रताका अनुभव करने लगे। यह प्रतिमा ख्रिस्ति त्रिपुटीमें प्रथम पुरुष अर्थात् परमेश्वरकी नहीं, किन्तु द्वितीय पुरुष अर्थात् ईसाकी थी। इसकी प्रतिमाओंमें कहीं वह मनुष्योंको सृजता हुआ, कहीं आदम और ईवको श्रम करनेका आदेश देता हुआ और कहीं कहीं इब्राहीमका हाथ पकड़ता, नोआसे वार्तालाप करता या मूसाको पवित्र नियम सिखाता हुआ दिखाई देता था। परन्तु बादलोंमेंसे निकले हुए हाथके सिवा परमेश्वरकी मूर्त्ति कहीं

दृष्टिगोचर नहीं होती थी। इसका मुख्य कारण लोगोंकी अपने जैसे मनुष्य-देवकी कल्पना थी। ज्यों ज्यों छट्ठीसे बारहवीं शताब्दी तक हम गहरी नजर डालते हैं, त्यों त्यों हमको साफ जाहिर होता जाता है कि तत्कालीन लोगोंको परोक्ष विषयों पर अधिक प्रेम नहीं था। चाहे जैसा खराब और अरुचिकर क्यों न मालूम हो, इसकी परवा न करके वे प्रत्येक वस्तुका चित्र खींचकर उसे इन्द्रियगोचर बनाते थे। यहाँ तक कि वे अन्तमें चित्रों तथा मूर्त्तियोंमें ही देवभावना करने लगे। उस जमानेमें ईसाकी अपेक्षा ईश्वरका स्वरूप अधिक अगम्य होनेके कारण तत्कालीन चित्रकार उसकी उपेक्षा करने लगे थे। ईसाके पश्चात् संत और धर्मवीरों (Martyrs) का नम्बर था। बारहवीं शताब्दीके प्रथम एक दो अपवादके सिवा ईश्वरकी प्रतिमायें नहीं थीं। साहित्यका पुनर्जीवन होने पर, चौदहवीं शताब्दीमें ईश्वरकी प्रतिमायें अधिकताके साथ बनाई जाने लगीं और उसको प्राधान्य भी मिलने लगा। पहले तो पिता पुत्र दोनों समान उमरके अङ्कित किये जाते थे, परन्तु इसके पश्चात् रेफेलके समय तक ईश्वरकी उमर और मानमर्यादा बढ़ती गई और अन्तमें उसे सबसे उच्चपद प्राप्त हुआ। भिन्न भिन्न देशोंमें महत्ताके खयालके अनुसार उसकी मूर्त्ति भिन्न भिन्न रूपमें बनाई जाती थी, जैसे इटली, स्पेन आदि देशोंमें पोपके वेशमें, जर्मनीमें बादशाहके वेशमें और इंग्लैण्ड तथा फ्रान्सके अधिकांश प्रदेशोंमें राजाके वेशमें।

इस समय लोग ईश्वरमें मनुष्यभावका आरोप करते थे, इस कारण वे अनेक समय दोनोंके बीचके अगाध अन्तरको भूल जाते थे, और इसी लिए वे दुनियाँके उच्चपद प्राप्त लोगोंको भी ईश्वर तुल्य गिनने लगे। इस प्रकार अनेक

देवोंकी पूजाकी प्रवृत्ति उत्पन्न हुई और उसका पहला उदाहरण मरियमकी देवताके समान पूजा होने लगना है।

प्राचीन यहूदी रहस्य-वादियों (Cabalists) में स्त्री देवताका खयाल मौजूद था, और पहली सदीमें सिमन मेगसके पास एक स्त्री थी, जिसके विषयमें कहा जाता था कि वह ईश्वरीय विचार-शक्तिका अवतार है। ज्ञानवादकी समस्त शाखाओंमें भी यह खयाल किसी न किसी रूपमें मौजूद था। वे कहते थे कि ईश्वर तो मनुष्य बुद्धिसे अगम्य है, परन्तु उसके दो अंशोंको हम जान सकते हैं, और वे यीशु तथा सोफिया हैं। अनेक लोगोंके मतसे सोफिया केवल मनुष्यात्मा थी। पहले वह ईश्वर अंश अवश्य थी, परंतु पीछे उससे जुदा पड़ जानेके कारण रोते रोते वह जड़ प्रकृतिमें फँस गई और उसमें लिप्त हो गई। अब वह योगभ्रष्ट न होनेवाले दूसरे अंश अर्थात् यीशुकी सहायतासे अपनी मूल स्थितिकी पवित्रता प्राप्त करनेके लिए तड़फड़ाती फिरती है। परंतु कोई कोई कहते थे कि वह इस समय भी शुद्ध ईश्वरका अंश, और यीशुकी बहिन अथवा माँ है, अतएव उसे वही मान प्राप्त है।

इस प्रकार कैथोलिक-पंथमें मरियमकी पूजा प्रचलित हुई। वह बहुत समय पहले ईसाइयोंके दो मुख्य भक्तिपात्रोंमेंसे एक स्त्री-पात्र थी, इस लिए भविष्यमें उसकी पूजाका मार्ग सुगम हो गया। इसके सिवा सनातन-पक्षवालोंके विचारोंमें ज्ञानवादियोंने बड़ा प्रभाव डाला। एक विद्वान् इतिहासकार लिखता है कि इस मतको खिस्ति धर्मका खंडन करनेवाला नहीं, प्रत्युत उसे खिस्ति विचारोंको अग्रस्थान देनेवाला सारसंग्रहवाद समझना चाहिए। क्योंकि ज्ञानवादसे सनातन-पक्षमें विरुद्ध विचार उत्पन्न नहीं हुए, बल्कि उसमें पहले

जब नवीन प्लेटोवादका सञ्चार हुआ तब इसी ज्ञानवादके द्वारा हुआ था। ज्ञानवादी ललित कलाओंकी ओर विशेष ध्यान देते थे। उनके मधुर गीतोंने सारियाके सनातन-समाजमें प्रवेश करके लोगोंके मनको यहाँ तक मोहित कर लिया था कि अनेक प्रतिबन्ध होने पर भी वहाँ उनका गायन बन्द नहीं हुआ और अंतमें कवि एफ्रेमने उन्हीं गीतोंमें सनातन गीत जोड़ दिये। प्राचीन धर्म्मकी १४ बिना नामकी पुस्तकोंसे—जो उसकी कृति कहलाती थीं—चित्रकलाको बहुत प्रश्रय मिला। इसके सिवा ईसाकी मुखमुद्राका—जिसकी अनेक शताब्दियों तक ईसाई जगतमें पूजा होती रहीं, मुख्य डौल या ढाँचा बनानेवाला भी यही समझा जाता था। दुनियाँमें ईसाई धर्म्मकी महान् विजय हुई, परन्तु वह अन्य धर्म्मोंको कुचल डालनेसे नहीं, किन्तु उन्हें गला कर रूपान्तरित करनेसे हुई थी। प्राचीन सिद्धान्त, प्राचीन क्रियायें और प्राचीन मूर्त्तियाँ, सब नये धर्म्ममें मिला ली गईं और उनके नाम बदल डाले, परन्तु उनमें उनके मूल लक्षण कायम रहे। इस प्रकार ज्ञानवादियोंने सोफियाके विषयमें जो मत स्थिर किया था वही आगे चल कर मरियमके विषयमें लागू होने लगा। तारागण-का मुकुट धारण करनेवाली, दिन तथा सब वस्तुओंकी माता रात्रि, बसंत-ऋतुकी देवी फलारा जो मई महीनेकी अधिष्ठात्री थी, और सब देवोंकी माता साइबेल प्रभृति अनेक देवियोंका पद अब मरियमको प्राप्त हुआ।

इन बाह्य कारणोंके सिवा मरियमकी पूजाके कुछ भीतरी कारण भी थे। पहले दूसरी तथा तीसरी शताब्दी तक ईसाई धर्म्ममें नीति-विषयक भावनाओंका बहुत ज़ोर था, परन्तु चौथी और पाँचवीं शताब्दीमें यीशुके दैवी अंशके विषयमें साम्प्रदायिक व्याख्यायें होने लगीं और जिससे यह निश्चित

हुआ कि उसकी माता मरियमका चित्र कैसा होना चाहिए। धर्मके अङ्गोंके समान चित्रकला और शिल्पशास्त्रकी महत्ता बढ़नेसे मरियमकी सुन्दर छबिका मान बढ़ने लगा, और एकान्त-मठमें रह कर ब्रह्मचर्य्य और समाधि-साधन करने तथा क्रूश-युद्धमें स्त्रियोंके सम्मान और अनन्य प्रेमभक्तिका सम्मेलन होनेसे उसमें और वृद्धि हुई। इसी समय यह विचार उत्पन्न हुआ कि शुद्ध स्वयम्भू गर्भ रह सकता है। इस लिए कमल पवित्रताका चिन्ह माना जाने लगा और इस विचारके फैलनेसे कि स्त्रियाँ इसके खानेसे पुरुषके स्पर्शके बिना गर्भवती हो सकती हैं, कमलके फूलोंवाला पात्र मातृत्व-का सांकेतिक चिन्ह गिना जाने लगा।

मध्ययुगमें कुमारिका मरियमके स्मरण चिन्हकी अपेक्षा अधिक गंभीर और हितावह चिन्ह दूसरा नहीं गिना जाता था। यह पहला ही अवसर था जब स्त्री-जाति ईसाई जगत्-में अपने योग्य-पद पर प्रतिष्ठित हुई। इस समयसे वह पुरुष जातिकी दासी अथवा भोग्य-वस्तुकी श्रेणीसे पृथक् हुई, और तद्विषयक अधमता और विषयासक्तिका खयाल भी दूर हो गया। इस प्रकार स्त्री-जातिका उत्कर्ष कुमारी-माताके रूपमें एक नवीन प्रदेशमें हुआ। अब स्त्रियाँ ऐसे सन्मान और सेवाकी पात्र बन गईं कि जिसका प्राचीन लोगोंको स्वप्नमें भी खयाल नहीं था। प्रेम-भावना विशेष उत्कर्षको प्राप्त हुई और स्त्री-जातिकी उत्तमताका नैतिक आकर्षण तथा उसका लावण्य लोगोंकी समझमें आने लगा। इसके सिवा एक नवीन प्रकारके सदाचरणका लक्ष्य उत्पन्न हुआ। कठोर, ज्ञान-शून्य और तमोगुणी जमानेमें इस उच्च आदर्शसे सौजन्य और पवित्रताका ऐसा अच्छा खयाल फैला जैसा कि सुधारोंकी शिखर पर पहुँची हुई जातियोंमें भी कभी दृष्टिगोचर नहीं

हुआ था। भिन्न भिन्न देशों और भिन्न भिन्न समयके लाखों मनुष्योंका उक्त प्रतिमाके समान अपनी चालचलनको संस्कृत करनेका आदरणीय सफल प्रयत्न, मेरीके प्रेमके लिए सहस्रों कन्याओंका संसारके सब वैभवों और कीर्त्तिको तिलाञ्जलि देकर उपवास, जागरण और विनम्र उदारताके द्वारा उत्कर्ष साधन करनेका प्रयास, सद्योजात नवीन सम्मानका भान, स्त्रियोंके प्रति आदरबुद्धि होने और सम्मान करनेकी प्रवृत्ति, रीति रिवाजोंमें आनेवाली नई कोमलता, तथा जन-समाजके समस्त व्यवहारोंमें दिखाई देनेवाली सुसंस्कृत रसज्ञता प्रभृति अनेक बातें मरियमके प्रभावकी साक्षीभूत हैं। उस समय यूरोपमें जो कुछ सर्वोत्तम था, वह सब उसमें आकर सम्मिलित हो गया और उसमेंसे मानवी सुधारोंका शुद्ध बीज उत्पन्न हुआ।

यह सब होनेके लिए मरियमको सर्वशक्तिमान कृपालु देवीका पद मिलना जरूरी था, और ऐसा होनेमें देर नहीं लगी। भक्ति करते समय लोग उसे ईश्वर तुल्य विशेषण लगाने और चित्रकार उसके ललाटके आसपास देवोचित प्रभा-मंडल बनाने लगे। उसके विषयमें अनाथजनोंको दुःख-से निकालनेकी अनेक अद्भुत कहानियाँ भी संगृहीत हो गईं। अन्य साधु भी इससे कुछ कम, परन्तु इसी प्रकारका मान पाने लगे। सारांश यह कि ईसाई धर्म्ममें मूर्त्तिपूजा शामिल हो गई, क्योंकि यूरोपकी मानसिक स्थितिके लिए वह आवश्यक थी। मुँहसे तो ऐसा कहा जाता था कि मूर्त्तियाँ पूजामें केवल सहायता पहुँचानेके लिए हैं, परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो उन मूर्त्तियोंहीकी पूजाकी जाती थी और धर्म्मा-चार्य्य उसमें अपनी सम्मति दरशाते थे। जो मनुष्य अपने पूज्यदेवकी उपस्थितिका निरंतर साक्षात्कार होने या कल्पना-

शक्तिको मदद पहुँचानेकी गरजसे उसकी साकार-मूर्त्तिको व्यवहारमें लाते हों, उन्हें हम मूर्त्तिपूजक नहीं कह सकते हैं; परन्तु जो लोग ऐसा कहते हों कि अमुक मूर्त्तिमें खास शक्ति है, अमुक मूर्त्ति दैवी चमत्कार दिखलाती या वरदान देती है और इसी लिए वह सबसे श्रेष्ठ है, या जब उसके लिए लम्बी लम्बी यात्रायें कीजाती हों, या ऐसा माना जाता हो कि घिरे हुए शहरकी रक्षा उसकी उपस्थिति-मात्रसे हो सकती है या महारोग और अकाल उसकी शक्तिसे तुरंत हट जाते हैं तब उनमें और मूर्त्ति-पूजकोंमें कुछ भेद नहीं रहता।

पहले ईसाई लोग तंग किये जाते थे। उस समय वे धर्मवीरोंके स्मरण-चिन्होंको प्रेम तथा आदरके साथ संग्रह करते और चित्रोंको भी वैसा ही मान देते थे; इसके सिवा अलौकिक चमत्कारोंकी प्रवृत्ति अधिक जोरदार होनेके कारण कई मूर्त्तियोंकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई थी। इसी समय बहु-संख्यक जङ्गली लोग नये धर्म्ममें शामिल कर लिये गये; वे उपदेशसे नहीं, किन्तु अपने सरदारकी आज्ञासे इस धर्म्ममें सम्मिलित हुए थे। कुछ तो इसी कारण और कुछ उनकी संख्याकी अधिकताके कारण धर्म्म-संस्थामें उनके रीति रिवाजोंका प्रचार बढ़ता गया,—उनकी पुरानी मूर्त्तियों ही की पूजा होती रही, अंतर केवल यही हुआ कि उनका नाम-मात्र बदल गया।

इन बातोंको रोकनेके लिए बुद्धिमान पुरुषोंने बहुत चेष्टाकी, परन्तु वह सब निष्फल गई। मध्ययुगमें फैले हुए विचारोंके साथ मूर्त्तिपूजकोंका इतना घना सम्बन्ध था, तथा सब विषयोंकी ओर बढ़ते जानेवाले देहात्मवादके अभ्यासके साथ मूर्त्तिपूजाकी इतनी अधिक अनुकूलता थी कि अनेक सीधी दलीलोंसे भी उसका नाश नहीं हुआ। परन्तु जब अन्तमें

जन-साधारणकी मानसिक स्थितिमें भारी फेरफार हुआ तब वह अपने आप ही नष्ट हो गई।

परन्तु हमको इन सामान्य नियमोंका एक भारी अपवाद इस्लाम धर्ममें दिखाई देता है। मुहम्मद साहबने प्राचीन सुधारोंसे आगे न बढ़े हुए लोगोंमें अपना धर्म्म चलाया था, तौ भी उनको मूर्त्तिपूजासे बिलकुल जुदा रखनेमें उन्हें खूब सफलता मिली;–यह बात इस्लाम धर्म्मके लिए बहुत शोभा देनेवाली और उसके स्थापककी अपूर्व बुद्धिमत्ताकी परिचायक है। परन्तु जब हम इस बातका पता लगाते हैं कि यहां ऐतिहासिक विकाशके सामान्य क्रमके भंग होनेका क्या कारण है, तब हमको उसके तीन कारण विदित होते हैं। पहले तो मुसलमानोंने जिस उत्साहसे दुनियाँ जीती थी वह मुख्यतः सामरिक था, उसके अनुयायियोंके पराक्रमसे प्रभान्वित होकर—रौबमें आकर लोग एकदम बिना किसी शर्तके उसमें शामिल होते थे, तथा उनके बर्तावसे साफ जाहिर होता था कि वे विधर्मियोंसे कट्टर शत्रुता रखते हैं, इसके सिवा जिस प्रकार ईसाई लोगोंने धीरे धीरे युक्ति–प्रयुक्तिसे—समझा बुझाकर जङ्गली लोगोंको अपने धर्ममें शामिल कर लिया था, वैसा मुसलमानोंने नहीं किया। दूसरे, कुरान अदृश्यका साक्षात्कार करानेमें अधिक चतुराई और सावधानीके साथ मनुष्योंकी मदद करता था। तीसरे, मुहम्मदने सोचा कि अपने शिष्योंको हमेशा मूर्त्तिपूजासे दूर रखनेके लिए उन्हें किसी भी प्रकारकी मूर्त्ति न बनानेका सख़्त आदेश देना चाहिए; इसलिए उन्होंने धर्म्मके साथ जिन प्राणियोंका बिलकुल सम्बन्ध नहीं था, उनकी मूर्त्ति या चित्र बनाना भी निषिद्ध कर दिया। यह हुक्म ऐसा सुस्पष्ट और कड़ा था कि उसमें शिथिलताके लिए जरा भी गुंजायश नहीं थी। इस प्रकार उन्होंने अपने धर्म्ममें मूर्त्ति

पूजाका समावेश नहीं होने दिया, परन्तु ऐसा करनेमें मानों उन्होंने धर्म्म और कलाशास्त्रके साथ शत्रुता खड़ी करदी। इस विरोधसे कलाशास्त्रकी कितनी अधिक हानि हुई इसका निश्चय करना कठिन है। मुसलमानोंके लिए केवल स्थापत्य (मकान बनानेकी कला) का मार्ग खुला था। इस कार्य्यमें स्पेनके मूर लोगोंने जैसी प्रवीणता प्राप्तकी थी, तथा इब्राहीमके महल सजानेमें प्राणिवर्गको छोड़कर पुष्पों, लताओं, कुरानके फकरों और भूमितिकी आकृतियों प्रभृतिकी रचना जिस दक्षताके साथकी गई थी वह पुकार पुकार कर कहती है कि इन लोगोंमें सौन्दर्य्य-कलाकी अनुपम शक्ति होनी चाहिए।

यह सच है कि मुसल्मानोंने धर्म्मके लिए कला-कौशल्यका बलिदान किया, परन्तु मध्ययुगमें ईसाई धर्म्ममें मूर्त्तिपूजा बहुत जोरके साथ प्रचलित होने पर भी उससे कला-कौशल्य-को कुछ लाभ नहीं पहुँचा। साधारण दृष्टिसे देखनेमें यह एक नई बात मालूम पड़ती है, परन्तु गंभीर विचार करने पर वही बिलकुल स्वाभाविक प्रतीत होती है; कारण कि सुन्दरताका भान और भक्तिकी स्पृहा, दोनों इतनी भिन्न बातें हैं कि वे एक ही समय मन पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकतीं हैं और न एक ही वस्तुको लागू हो सकती हैं। श्रेणी-बद्ध चित्र देख कर न तो धर्म्म-भावना ही उत्पन्न होती है और न किसी भी धर्म्मकी लोकप्रिय मूर्त्तियाँ ही रसवृत्तिको तृप्त कर सकती हैं। कई मूर्त्तियाँ या चित्र अपनी प्राचीनता या दन्त-कथाओंके कारण, और कई अपने स्थूल और अनु-भव गम्य आकारोंके कारण पूज्यपद पाते हैं। साधारणतः मनुष्यके बराबर कदकी रंगीन काष्ठकी मूर्त्तियाँ लोकप्रिय होती हैं, परन्तु वे सच्ची कलाबुद्धिसे इतनी विरुद्ध होती हैं कि उनसे उच्चकला विधान शायद ही उत्पन्न होता हो;

और उच्चतम कला-विधानको तो उससे तनिक भी पोषण नहीं मिलता। अतएव चित्रों अथवा प्रतिमाओंका पूजन करना ही चित्रकला और मूर्त्ति-विधानके लिए हानिकारक है। मूर्त्ति-पूजक ज़मानेमें कुछ विशेष विशेष प्रकारकी मुख-मुद्राओं अथवा आकृतियोंके सम्मानकी प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ती है, यही नहीं किन्तु किसी किसी अंग, चेष्टा अथवा पोषाकके लिए भी ऐसी ही प्रवृत्ति दृष्टि पड़ती है—इससे नवीन खोज और नवीन ढंग की बाढ़ मारी जाती है।

इसके सिवा कलाशास्त्रकी अवनतिका एक और कारण था। सौन्दर्यके विषयमें ख्रिस्ति धर्ममें बहुत हल्के विचार प्रचलित थे। परन्तु ग्रीक लोगोंमें सब प्रकारकी सुन्दरताके लिए पूज्य भावना थी। वे लोग चित्रकलामें ज़रा भी विरूपता दृष्टिगोचर नहीं होने देते थे। वे मनुष्य देहकी शोभाको सबसे महत्वका विषय गिनते और नग्नतामें लज्जाके बदले गौरव अनुभव करते थे। परमेश्वर नग्न है, यह बात पूर्ण निश्चयके साथ कही जाती थी। किसी बादशाहकी नग्न मूर्ति बनाना उसे मान देनेका अच्छा तरीका था, क्योंकि वह उसके देव भावकी प्रतिमा समझी जाती थी। प्राचीन जीवन-व्यवहारमें व्यायाम सम्बन्धी खेलों पर बहुत ध्यान दिया जाता था, इससे शारीरिक बलकी वृद्धि होती और शिल्पकारोंको उत्तम उत्तम नमूने मिलते थे। उक्त स्थिति कला-शास्त्रके विकाशके लिए कितनी अनुकूल थी, वह सहज ही समझमें आजाती है। इसके विपरीत ईसाई धर्ममें देहकी समस्त वासनाओंका निग्रह करना पवित्रताका मुख्य चिन्ह समझा जाता था। इस विषयमें तत्ववेत्ता, नास्तिक और साधु सभी एक मत थे। अन्य पाखण्ड मतोंकी अपेक्षा ज्ञानवाद और शुभाशुभ

युद्ध वादका ईसाईधर्म्म पर विशेष प्रभाव पड़ा, इन दोनोंका मुख्य सिद्धान्त यह था कि 'समस्त जड़ पदार्थ दुष्ट हैं।' अनेक साधु देहकी वासनाओंको जीतनेके लिए उपवास करते करते मर जाते थे, अनेक कई वर्षों तक अपने शरीरको न देखनेका व्रत धारण करते थे, बहुतेरे विषयको जीतनेके लिए अपने शरीरका अङ्ग काट डालते थे, कोई कोई इसी उद्देश्यसे अपने शरीरको कष्ट पहुंचाते, भूखों मरते या अन्य किसी प्रकारका भयंकर तप करते थे। उनकी धारणा थी कि शरीर बहुत बुरी चीज़ है, और उसका लावण्य नाशकारी प्रलोभन है। ऐसे विचारोंके रहते कलाशास्त्र कभी पूर्णताको नहीं पहुंच सकता था। इन सब विपरीत बातोंके सिवा क्रूशवध, धर्म (के लिए प्राण विसर्जन करनेवाले) वीरों और परधर्मियोंकी नरकयातनाके चित्रोंसे कलाशास्त्र और भी दूषित हो गया।

हम पहले ही कह चुके हैं कि सुधारोंके उदयकालमें मूर्तिपूजाका होना स्वाभाविक है, और स्थूल-विचारोंसे मुक्त होना बुद्धि-विकाशका आवश्यक परिणाम है। इस लिए जब कोई जाति या समाज अमुक दरजे तक पहुँचे तब उसे मूर्तिपूजा छोड़ देना चाहिए, यह ; प्रकृतिका नियमहै, परन्तु मानव-बुद्धिके इतिहासमें दो बार इससे उल्टा परिणाम दिखाई दिया है। एक तो सगुणवाद कम होने पर मूर्तियोंकी संख्यामें वृद्धि हुई, दूसरे धार्मिकवृत्तिका, सौन्दर्यकी प्रवृत्तिद्वारा पराभव होने पर पूर्वस्थित वहम अदृश्य नहीं हुआ और उसने कलाका रूप धारण किया।

प्राचीनग्रीसप्रजाके सौन्दर्यशास्त्रके इतिहासके विषयमें हमको अधिक जानकारी होनेके कारण हम उसके विकाशकी भिन्न भिन्न कलाओंका शोध कर सकते हैं। पहले जिस समय

जड़पूजा प्रचलित थी, उस समय बिना आकृतिके बेडौल पत्थरोंकी पूजा की जाती थी। ये पत्थर शायद आकाशसे गिरे हुए ग्रहोंके टुकड़े थे। इसके बाद आनेवाले जमानेमें रंगीन काठकी मूर्तियोंको कपड़े पहिनाये जाते थे। इसके पश्चात् इसमें कुछ उच्च श्रेणीकी कलाका जमाना आया; परन्तु यह कला मिश्र और बाइजेन्श्यकी कलाके समान धर्माश्रित थी, और उसमें नवीन कल्पनाको अवकाश नहीं था। इसके बाद धीरे धीरे ग्रीककला उत्कृष्ट दशाको पहुँची और उससे मूर्ति विषयक धार्मिक मान उठ गया। अब ईश्वरके विषयमें तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे विचार होने लगा, और बुद्धिके परिवर्द्धनशील विकाश तथा सौन्दर्य्यके गंभीरभावसे धर्म्मके समस्त अङ्गोंमें नवीनरूप और नवीनभावका सञ्चार हुआ। एक समय जिन मूर्तियोंके आगे लोग श्रद्धाभक्तिसे सिर झुकाते थे, उन्हींको अब वे कारीगरी अथवा विवेचनाकी दृष्टिसे देखने लगे। अब सभी रूपकमय, काव्यमय या कल्पनामय भाषित होने लगा। नग्न वीनस देवी (रति) में विषयात्मक सौन्दर्य्यका आदर्श, डायना (सावित्री) में मुग्ध लावण्य और स्वभावसिद्ध ब्रह्मचर्य्यका भाव और कुछ प्रौढ़ मुखाकृति तथा निम्न दृष्टिवाली मिनर्वा (सरस्वती) में स्त्री जातिके विनय और जितेन्द्रियत्वका रूप माना जाने लगा। हरक्यूलिस शारीरिक परिश्रमके द्वारा मिलनेवाले गौरवको दरशाती थी। जिस समय उसके मुख पर अतिशय परिश्रमके चिन्ह अङ्कित रहते, उस समय वह मनुष्य जातिके हितके लिए अत्यन्त परिश्रम और चिन्तामें लिप्त समझी जाती थी। कभी कभी वह ओलिम्पस पर्वत पर देवसभामें दिखलाई देती थी, उस समय उसका कद्दावर शरीर शौर्य और शान्तिके आदर्श स्वरूप कोमल और तेजयुक्त बनाया जाता था। प्लेटो,

मिनोस और जुपिटरकी मुखाकृति एक ही ढंगकी बनाई जाती थी; उनमें अंतर केवल भावका रहता था। प्लूटो (यम) के मुख पर तामसीवृत्तिकी छाया (जैसे संहारक शिव मूर्तिमें) रहती थी, मिनोसकी मुखमुद्रा पर न्यायाधीशसुलभ दृढ़ता और स्पष्टवादिताका भाव अङ्कित किया जाता था, और जुपिटर (बृहस्पति) के मुखमण्डल पर निर्दोष शान्ति विराजती थी। इस प्रकार ग्रीसके पौराणिक देवता धीरे धीरे धर्म्म प्रदेशसे कविताके प्रदेशमें आ गये। ठीक ऐसा ही परिवर्तन साहित्यके पुनरुज्जीवन होनेके पश्चात् ख्रिस्ति कलाओंमें भी हुआ, और उसके तात्कालिक परिणामसे उन्होंने बाइजेन्टाइनके आदर्शको त्याग कर इटलीका आदर्श ग्रहण किया। कैसे विचारोंसे कला पर कैसा प्रभाव पड़ता है इसकी दोनों पहलूका दिग्दर्शन ग्रीक साहित्यसे किया जा सकता है। इतिहासके प्रारंभीयकालमें उसने कलाशास्त्रमें जैसी पूर्णता प्राप्तकी थी, वैसी समस्त दुनियाँके इतिहासमें आज तक कभी दृष्टिगोचर नहीं हुई। ग्रीसदेशसे हमको बहुसंख्यक सरस सौन्दर्य्य के ऐसे नमूने मिले, जो आगेके सभी जमानोंके लिए आश्चर्य्य और आनन्ददायक सिद्ध हुए, और जिन्हें प्रत्येक देशकी शिल्पकलाने अपने प्रयत्नोंका आदर्श माना। परन्तु अन्तमें ग्रीसके भी बुरे दिन आये, उसके बुद्धिरूपी वृक्षकी जड़ें कट गई, निर्माणकलाकता नष्ट हो गई; इतना ही नहीं, उसका सौन्दर्यभान और सौन्दर्याभिरुचि भी लुप्त होगई। कई शताब्दियों तक ग्रीसमें धर्म्म-संस्था, राज्यपद्धति और कारीगर सभा सौन्दर्य विकाशके मार्गमें बाधक बने रहे। मूर्तियोंको नष्ट करानेवाली ईसाको कुरूप कहनेवाली और यूरोपीय बुद्धिको अनेक शताब्दियोंके लिए गड्ढेमें डालनेवाली प्रवृत्तियाँ भी इसी देशमें उत्पन्न हुईं। इस प्रकार आधुनिक ग्रीस प्राचीन ग्रीससे विल-

कुल विपरीत बन गया और अन्तमें उसके प्राचीन आदर्शों के द्वारा ही उसका सुधार हुआ।

बारहवीं सदीके अन्तमें पिसा नगरके एक कारीगरको प्राचीन ग्रीकशिल्पका नमूना मिलने पर उसने इटलीमें उसका अभ्यास करनेके लिए एक नई शाखा स्थापित की। इस नई शाखाका धर्म संस्थापर पहले जो प्रभाव पड़ा वह केवल धार्म्मिक था; अर्थात् चित्रकार लोग धर्म्मविचारसे कलाशास्त्रका दरजा कम समझते थे। इस समय यूरोपीय साहित्यमें नवजीवनका सञ्चार अवश्य हो चला था, परन्तु बुद्धिका वह चरमविकाश—जो धार्मिक विश्वासोंको उलट देता है, अभी उत्पन्न नहीं हुआ था। प्रकृतिके नियमानुसार कल्पनाशक्तिका विकाश सदैव विवेकशक्तिके प्रथम हुआ करता है। बारहवीं शताब्दी तक जो घोर अज्ञानान्धकार छाया हुआ था, वह अब दूर हो चला था, ग्रीक साहित्यकी अनेक खूबियोंसे लोग मोहित होने लगे थे, वे सरस चित्र खींचना और शुद्ध भाषाशैलीका आदर करना भी सीख गये थे, परन्तु अभी स्वतंत्र विवेचन और तत्त्वज्ञानके आनेमें बहुत विलम्ब था। यही कारण है कि चित्रकला धर्मान्धताकी दासी बन गई थी, और चित्रकार लोग धार्म्मिक सौन्दर्य्य चित्रण करनेमें ही अपनी सारी शक्ति व्यय किया करते थे। धर्म्मके लिए बेडौल चित्र और बीभत्स प्रतिमायें बनानेमें उन्हें कुछ भी संकोच नहीं होता था। इसी समय महाकवि डान्टके काव्य-का जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसकी भूकम्प अथवा ग्रहणकालकी कालिमामें डूबी हुई लेखनी भयानकता और नरक-यातनाके चित्र अङ्कित करनेमें बहुत अनुरक्त रहती थी। उसके इन भयावह दृश्योंसे लोगोंकी कल्पनाशक्ति उन्मत्त बन गई। चित्रकारोंके मगज पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ा और

इसी समयसे धार्म्मिक चित्रोंमें त्रास तथा विषादभावने प्रवेश किया ।

चित्रकलामें जीवन-सञ्चार होनेके पहले ऐसी ही दशा थी और वह उस समयकी मानसिक स्थितिके लिए अनुकूल थी। परन्तु कुछ समयके उपरांत यूरोपकी इस पुनरुद्धृत मानसिक-शक्तिने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उन्नतिकी ओर पैर बढ़ाया। स्वतंत्र और अप्रतिबद्ध विवेचन करनेका झुकाव, सूक्ष्म पृथक्-करण करनेकी शक्ति, धर्म्ममें जड़वाद और व्यवहारमें वैराग्यके प्रति अरुचि, दंभ तथा अज्ञानकी ओर तिरस्कार, सर्वत्र फैली हुई अगणित क्रियाओं और छोटे छोटे वहमोंके प्रति अश्रद्धा, बड़ी बड़ी जगहोंके पाखण्ड और अज्ञानकी खुली तौरपर हँसी उड़ानेकी प्रवृत्ति, और मानवी योग्यताके विषयमें बढ़ता हुआ ज्ञान—ये सब बातें सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगीं। नवीन युग-का प्रकाश चारों ओर फैल गया और साहित्यके सब भावों तथा धर्म्म सम्प्रदायको अधिक पवित्र—आध्यात्मिक रूप देनेके सब प्रयत्नोंमें यह उथल पुथल दिखाई पड़ने लगी। प्राचीन धर्म्मके सब अङ्ग मोरचा चढ़ जानेसे उत्साह शून्य हो गये और उनकी चेतना शक्ति जाती रही। एक समय जिन मठोंमें वैराग्य और शक्तिका उत्तम स्वरूप दिखाई देता था, उन्हींमें अब मौज शौक, व्यभिचार और द्रव्यलोलुपताकी धूम दिखाई पड़ने लगी। जिन पवित्र स्मारकों और चमत्कारी-मूर्तियोंके द्वारा आज तक लाखों—करोड़ों आदमियोंको सद्गति और शान्ति मिली थी, उन्हीं की अब अधम बिक्री होने लगी या वे निर्लज्ज धूर्त्तता साधित करनेकी सामग्री बन गईं। निराशामें डूबे हुए लोगोंको धीरज बँधाने या धार्मिकोंकी भक्तिमें उत्तेजन पहुँचानेकी गरजसे जिन प्रायश्चित्त क्षमाकी चिट्ठियों (Indulgences) का प्रचार हुआ था, अब वे ही सच्चे धर्मके बदले अवशेष रह

गई। स्वयं पोपका सिंहासन अत्यन्त नीच दुर्गुणोंसे भ्रष्ट हो
गया और उसके महलमें मूर्त्तिपूजकोंके दरबारका दृश्य दिखाई
देने लगा; परन्तु उसमें वह मूर्त्तिपूजकों जैसी प्रामाणिकता
नहीं थी। जहाँ दृष्टि डालो, वहीं अव्यवस्था, भ्रष्टता और
क्षीणताके चिह्न दिखाई देने लगे, कारण कि अब मध्ययुगकी
सुदीर्घ रात्रि पूर्ण होनेको आई थी, और पुनरुत्थानके पहले
जो सम्भ्रम या धाँधली हुआ करती है, वह इस समय पूरे
जोशके साथ फैल रही थी। उस समय मानो प्राचीन ग्रीसकी
आत्मा कबरसे निकलकर खड़ी हुई थी। उसके स्पर्शसे भोले-
पन और वहमकी इमारत थरथर काँपने लगी। मनुष्य-
बुद्धिने भी अनेक युगोंके अन्धकारसे बाहर निकलकर अपने
आसपास फैले हुए सब बन्धनोंको तोड़ डाला और पुनः
प्राप्त की हुई स्वतंत्रताके प्रकाशमें अपनी नवीन श्रद्धाका भवन
खड़ा किया। प्राचीनकालके विवेकी महात्माओंकी प्रेरणासे
उत्पन्न होनेवाले सत्यप्रेम, स्वतंत्रताकी भूख और मनुष्य
गौरवके भानने चेतनाहीन, मृतप्राय व्यक्तियोंके हृदयमें जीवन-
का सञ्चार किया; यही नहीं, उसने खीस्तिधर्मकी शोभा
बढ़ानेवाले और सारभूत विस्तृत उदारताके विचारों तथा
उत्कृष्ट नीतिके सिद्धान्तोंके साथ उनका सम्बन्ध करा दिया।
इस प्रकार मनुष्यजातिकी प्रगतिका नवीनयुग प्रारम्भ हुआ;
उसमें नवीन आशा, नवीन प्रेम, नवीन विचारप्रणाली और
नवीन जीवनस्थितिने प्रवेश किया। इसके परिणामसे धार्मिक
जीवनने भूलकालकी छिन्न भिन्न इमारतोंसे निकल कर उससे
अधिक प्रशस्त धर्म-भवनमें प्रवेश करके अपने अखण्ड विका-
शकी आशा प्रकट की।

उस समय मानवीबुद्धिका झुकाव ऐसाही था और उसका
तादृश्य प्रतिबिम्ब तत्कालीन कलाशास्त्रके इतिहासमें दिखाई

देता है। ज्यों ज्यों प्राचीन रोमीय विचार-प्रणाली लुप्त होती गई, त्यों त्यों चित्रोंमें से धर्म भावना घटती गई और लोग उनको व्यावहारिक दृष्टिसे देखने लगे। पहले कलाशास्त्र धर्मका गुलाम था, परन्तु अब धर्म ही स्वतः उसका गुलाम बन गया। साम्प्रत चित्रकारोंका मुख्य उद्देश्य येनकेन प्रकारसे सौन्दर्य्य चित्रित करना हो गया। उनका काम अब बिलकुल सांसारिक गिना जाने लगा और उसकी परीक्षा भी उसी दृष्टिसे होने लगी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यूरोपमें नवीन विचार-प्रणाली उत्पन्न होनेके कारण ही कलाशास्त्र धर्मके घेरेसे हटकर सांसारिक कृत्योंके घेरेमें आया था। चित्रकार लोग सदैव अपने समयके विचार दरशानेका प्रयत्न किया करते हैं और उनकी लोकप्रियता ही उनकी सफलताका प्रमाण समझी जाती है। जिस समय सर्वत्र दृढ़ धर्मश्रद्धा फैली हुई थी, और तत्सम्बन्धी विचार चित्रकलाके द्वारा दरशाये जाते थे, उस समय उसमें किसी नवीन शैलीका प्रवेश होना कठिन ही नहीं, वरन अशक्य था। उस समय कोई चित्रकार चित्रकलामें तनिक भी नवीनता या सांसारिक भाव लाता तो वह धर्म्मभ्रष्ट कहा जाता और उसपर चारों ओरसे घृणा तथा तिरस्कार की वर्षा होने लगती थी; टिशियन तथा माइकेल एंजेलो जैसे सुप्रसिद्ध चित्रकारों की अगाध बुद्धि भी उनको निन्दासे बचानेमें असमर्थ थी। इस समय नवीन शैलीके लोकप्रिय होनेका यह कारण था कि समस्त शिक्षित लोगोंने चित्रोंको धर्म-दृष्टिसे देखना छोड़ दिया था और उन्हें वे व्यावहारिक दृष्टिसे देखने लगे थे।

यह तो उक्त प्रवृत्तिका मुख्य कारण था, परन्तु इसके सिवा उसके दो महत्वपूर्ण गौण कारण और भी थे, जिनसे कलाशास्त्रका भाव बदल गया और उसकी पूर्ण उन्नति हुई।

उनमें से एक रंग सम्बन्धी और दूसरा आकृति सम्बन्धी था।

इसमें से पहला कारण हमको इटालियन जनसमाजकी नीतिविषयक स्थितिमें दिखाई देता है। उस देशके समग्र साहित्य और रीतिरिवाजोंमें नीतिका लक्ष्य बहुत कम था। और इस बातको छिपाने या उसके लिए चिन्ता करनेकी प्रवृत्ति भी किसीमें नहीं थी। इटालियन-अनीतिने रमणीयताके समस्त स्वरूपोंके मध्य जन्म लेकर पहले सौन्दर्यका रूप पकड़ा, और फिर सौन्दर्यकी उच्च तथा प्रबल प्रवृत्तिकी सहचरी बनकर उसने कलाशास्त्रको अपना मुख बना लिया। इटलीके कलाशास्त्रकी पूर्णताका यही मुख्य कारण था, क्योंकि चित्रकलामें मनुष्य देहकी आकर्षक-शक्ति और उसके परम लावण्यको दरशाना ही चित्रकारोंका मुख्य उद्देश्य होनेके कारण इस कलाको विषयवासनासे बहुत उत्तेजन मिला।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि इटालियन कलाशास्त्रकी अनेक शाखाओंमें विषयभाव बहुत शीघ्र प्रवेश कर गया था, परंतु उन सबोंमें एक ऐसी शाखा थी, जो कि अन्य सब शाखाओंकी मूल अथवा आदर्श कही जा सकती थी। यह शाखा वीनस शहरके चित्रकारोंकी थी और वह अपनी शानमें अजोड़ थी। इस समय एक वीनस शहर ही ऐसा था कि जहां एक ही समय विषयभाव और चित्रकलाको पोषण करनेवाले सब प्रकारके अनुकूल संयोगोंकी भरमार थी। प्राचीन वीनसदेवीके समान यह नगरी भी अपने जनक समुद्रके ऊपर सोती हुई प्रतीत होती थी। उसकी उन्नतिके समय उसकी मनोहर रूप-रेखा तथा मोहक परिस्थितिसे सहज ही सौन्दर्य-भान जागृत होता था और नीतिकी प्रवृत्ति दब जाती थी। जहाँ दृष्टि डालो, वहीं अनेक, विचित्र

और मादक लावण्यकी छटा दृष्टि पड़ती थी; कानोंपर पड़ने वाली प्रत्येक आवाज़ नीचे बहनेवाले जलसे कोमल और मधुर बन जाती थी; संत मार्ककी सुनहरी गुम्बजके आस-पास चमकने वाले सहस्त्रों प्रदीपों, लहरोंके ऊपर पड़नेवाली अपनी कोमल छायाके आधार पर खड़े दिखाई देनेवाले अनुपम कारीगरीयुक्त महलों और मंदमंद चालसे बहने वाली नहरोंसे-जिनमें कामोजनोंके गीतोंका अनुसरण करनेवाली क्रीड़ा, नावें हिलती डुलती हुई आगे बहती थी; तथा सुरम्य अट्टालिकाओंके झरोखोंसे रमणियोंके माथेकी लहराती हुई काली काली सुन्दर अलकों, परस्पर अनेक खूबियों और सौन्दर्य्यके संमिश्रणसे उत्पन्न होनेवाले अनुपम दृश्यों, एवं चारों ओर फैली हुई मंद विषयोद्दीपक मनोहरतासे लोगोंके आचरण पर एक अतिशय गंभीर और विषाक्त प्रभाव पड़ता था। इटलीके इतिहासमें प्रायः सभी समय—परन्तु विशेष करके कलाशास्त्र-की उन्नतिके समय—वहाँके लोग तीव्र सौन्दर्य्य-भान और सर्वव्यापी निरंकुश अनीतिके लिए मशहूर थे।

ऐसी जगह विषयात्मककलाकी शाखा खड़ी होना बिलकुल स्वाभाविक था। इसके सिवा अन्य संयोग भी अनुकूल थे जैसे कि, एक जगह बहुसंख्यक उच्चश्रेणीके कारीगरोंका उत्पन्न होना, विलासप्रिय धनवानोंसे मिलने वाला विपुल आश्रय, तैलचित्र (Oil Printing) कलाकी शोध, वेनसके रंगरेज़ोंकी चतुराई, पूर्व देशोंसे आनेवाला अच्छे रंगका कीमती माल,—प्रभृति बातोंका चित्रकला पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। नग्न देहका अध्ययन जोकि ग्रीककलाका मुख्य साधन था, और जिसे ईसाईधर्म्म अभी तक बन्द किये था—फिर जाग्रत हो उठा और उसके फलसे एक चित्रशाला

स्थापित हुई कि जिसकी विषयोद्दीपक रंगाईके कामकी समता करने में कोई समर्थ नहीं हुआ।

कलाशास्त्रके व्यावहारिक बनने और उसके पूर्णताको पहुँचनेका दूसरा कारण मूर्त्तिपूजकों की शिल्पकारी थी। गत शताब्दियोंमें वह बिलकुल अदृश्य हो गई थी, क्योंकि ख्रिस्ति-धर्मके विजयके पश्चात् होनेवाले धर्म और बुद्धिके विकारोंके परिणामसे पादरी लोगोंको यह विश्वास हो गया था कि मूर्त्तियोंमें राक्षसोंका निवास रहता है और इसी लिए उनको तोड़ना फोड़ना उनका मुख्य धंधा बन गया था। प्राचीनग्रीक-शिल्पमें पाषाणकी अपेक्षा काँसेका अधिक उपयोग होता था। अधिकाँश मूर्त्तियाँ काँसे ही की बनती थी, और प्रसिद्ध प्रसिद्ध कारीगरोंकी मूर्त्तियाँ हाथीदाँत या सोनेकी हुआ करती थीं। ग्रीक-राज्य अन्य खर्चोंको कम करके शिल्पकलाकी उन्नतिके लिए भारी भारी रकमें खर्च किया करता था; यही नहीं, वह प्रजाके दुःखसुख, आक्रमणों, युद्ध अथवा अन्य उपद्रवोंके समय उसकी प्राणोंके समान रक्षा करता था। इस रक्षाका एक कारण प्राचीन लोगोंका सौन्दर्य्य-प्रेम कहा जा सकता है, परन्तु उसका मुख्य कारण अनेक देवपूजकोंका पारस्परिक सौहार्द या उदारभाव था। ऐसा होनेके कारण वे लोग उन पर भी प्रेम करना सीखते थे कि जिनकी पूजाविधि अपनी पूजाविधिसे भिन्न होती थी। रोमन लोगोंकी ऐसी ही प्रकृति थी। वे विजित प्रजाके मन्दिरोंको नहीं तोड़ते थे, क्योंकि उनका ख्याल था कि अपने सिरजने वाले परमपिताकी ओर मनुष्योंके भक्ति दरशानेके अनेक मार्ग हैं। ख्रिस्तिधर्म्मने इन दोनों सद्वृत्तियोंकी जड़पर कुठाराघात किया। लगभग १५०० वर्षों तक यह बात ईसाई लोगोंके बिलकुल खयाल ही में नहीं आई कि परधर्म्मियोंको मान देने या उन्हें

नमा करनेका क्या मतलब है? इसके सिवा देहदमनके नियमों-से उनका सौन्दर्य्य-भान बिलकुल नष्ट हो गया था। उन्होंने काँसेकी मूर्त्तियोंको गलाकर चलनी सिक्के बना लिए, सोना चाँदी लूट लिया और संगमर्मरकी मूर्त्तियोंको पीसकर चूना बना लिया या उनके टुकडे टुकड़े करके फेंक दिया। हाथीदाँत और सुवर्णको जुपिटर (बृहस्पति) की मूर्त्ति-जो शिल्पशास्त्री फिडियसकी सर्वोत्तम कृति समझी जाती थी और ईसाईधर्म्म उत्पन्न होनेके समय ओलम्पियामें मौजूद थी, वह ज्युलिन बादशाहके पश्चात् नष्ट करदी गई। रोम पर जंगली लोगोंके आक्रमण, उनकी सत्ता जमनेके बाद रसज्ञता-की कमी और भयंकर दावानलसे—जिससे वह विशाल परगना ऊजड़ हो गया था—प्राचीन वस्तुएँ बिलकुल नष्ट हो गईं; और इस्तम्बोलमें जो मूर्त्तियाँ मिली थीं या पादरियोंके कोपसे जो बच गई थीं, वे भी मूर्त्तिद्रोहियों, क्रूशचिन्हधारी धर्म्म-युद्धके वीरों अथवा मुसलमानोंके हाथमें पड़ कर नष्ट हो गईं।

हम पहले कह चुके हैं कि बारहवीं शताब्दीके अंतमें पिसा नगरके निकोलसनामी कारीगरने प्राचीन-कलामें निपुणता प्राप्त करके मध्ययुगकी सोती हुई कलाको जागृत किया था। परन्तु उस समय उसे उच्चश्रेणीके नमूने नहीं मिले थे। निकोलसने जिस कामको आदर्श मानकर अभ्यास किया था वह काम कारीगरीकी दृष्टिसे तीसरी अथवा चौथी श्रेणीका था। यह काम उस पत्थरकी पेटी पर किया हुआ था जिसमें कौन्टेस-माटिलकी माँका शव रक्खा था। यह पेटी उस समय पिसा नगरके उपाध्यक्षके मन्दिरमें थी। उस समय गेटो, मासासियो प्रभृति अन्य कई तत्कालीन चित्रकार भी उत्तम काम बनाते थे, परन्तु उनको प्राचीन नमूनोंकी सहा-

यता नहीं मिली थी। पन्द्रहवीं सदीके प्रारम्भमें लेख लिखने-वाले पोगियों नामक एक लेखकने रोमतट पर बनी हुई मूर्तियोंकी संख्या केवल ६ बतलाई थी, परन्तु उसी सदीके अन्तमें एकके पश्चात् एक—कई बादशाहों और पोपाचार्योंके प्रबल उद्योग, और उसके परिणामसे साहित्यमें पुनः जीवनका संचार होनेके पश्चात् प्राचीनताके विषयमें बढ़े हुए अनुराग या आदर-भावके कारण कई जगह जमीन और खंडहर खोदनेका काम शुरू हुआ। इसके परिणामसे असंख्य मूर्त्तियों-का पता लगा और लोगोंके हृदयमें कलाशास्त्रके विषयमें एक विषम खलबली और असीम उत्साह उत्पन्न होगया। इस प्रकार कलाशास्त्र विषयक ख्रिस्ति-धर्म्मके पुराने विचार बदल गये और उनके बदले उसने प्राचीन इटालियन आदर्श को ग्रहण किया।

इस प्रकार इटालियन-कला सर्वत्र फैल गई। परन्तु कुछ ही समयके उपरान्त उसके प्रसारमें एक भारी विघ्न उपस्थित हुआ। सेवोनेरोलानामक एक महा बुद्धिमान उप-देशक प्राचीन धर्मभावोंको पुनः जागृत करनेवाली चित्रकलाके उद्धारके लिए प्रबल प्रयत्न करने लगा। उसकी ओजस्विनी वक्तृतासे फ्लारेन्समें इकट्ठे होनेवाले नामी नामी चित्रकारों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और इसके परिणामसे इटलीकी चित्राङ्कन-क्रियामें बहुत फेरफार हो गया।

परन्तु उसकी मृत्युके पश्चात् कलाशास्त्र फिर शीघ्र ही सांसारिक स्वरूप पकड़ने लगा। माइकेल एञ्जेलो पदार्थ-शास्त्रका बड़ा भक्त था, उसने अपने पूर्ववर्त्ती चित्रकारोंके धार्मिक विचारोंको नाश करके कलाशास्त्रको व्यावहारिक-भावोंसे भर दिया। उसने कयामत (अन्तिम न्यायासन) के दृश्यको नग्न-चित्रोंका स्वरूप देकर, और मरे हुए लोगोंको

नरकमें ले जानेके लिए 'केरन और उसकी नौका' का दृश्य दिखाकर, तथा ईसाको मूर्त्तिपूजक जैसा रूप देकर लोगोंको यह विश्वास करा दिया कि ये सब दृश्य काल्पनिक हैं। इसके फलसे धार्मिक-दृश्योंकी कलाशास्त्रकी दृष्टिसे विवेचना होने लगी। मध्ययुगके प्रथम भागमें चित्रकला बिलकुल धार्मिक थी, उस समय उसमें सुन्दरताका ख़याल नामको भी नहीं था, मध्यभागमें दोनों बातें समान रूपसे चालू रहीं और अन्तिम भागमें धार्मिकवृत्ति बिलकुल लुप्त हो गई और सुन्दरताका खयाल सर्वोपरि बन गया।

यह बात जानने योग्य है कि जिस समय चित्रकलामें जो फेरफार होता है, उसी समय वही फेरफार स्थापत्य (गृह-निर्माण-कला) में भी दिखाई देता है। यह सच है कि इस कलाका ईश्वरके विषयमें कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है, तो भी जिस समय लोगोंकी प्रवृत्ति दृश्य अचेतन पूजाकी ओर झुकती है उस समय विस्मय-जनक दृग्विषयोंसे धार्मिकवृत्तिको बहुत उत्तेजना मिलती है। ईसाई-धर्म्म-संस्थाने ऐसी तीन वस्तुयें निर्माणकी हैं जिनको धार्मिक साहित्यने अपनी धार्मिक-प्रवृत्तिका विशिष्ट नमूना या उसके प्रकाशनका साधन स्वीकार किया है। ये वस्तुयें हैं—धर्म्ममन्दिरका घंटा, सुषिरवाद्य और गॉथिक ढंगका प्रार्थना मंदिर। बारहवीं शताब्दीमें सौन्दर्य्या-भिरुचि जाग्रत होने पर गॉथिक भवन-निर्माण-पद्धति शुरू हुई और वह चित्रकलाके साथ साथ आगे बढ़ने लगी। नये चित्रों और नये धर्म्ममंदिरोंने लोगोंको उत्कट भक्तिमें प्रवृत्त किया। जब फ्लारेन्सके एक प्रसिद्ध चित्रकारने मरियमकी एक उत्तम मूर्त्ति बनाई, तब उसे देखनेके लिए उस नगरके सब आदमी ऐसे जुड़ आये जैसे किसी बड़े धार्मिक उत्सवके लिए जुड़ते हैं। उस मूर्त्तिको वे लोग ईश्वरकी प्रार्थना करते

और उसका आभार मनाते हुए मंदिरमें ले आये। सब लोगोंने हर्षके गीत गाये, क्योंकि उनको उच्चश्रेणीकी धार्मिक कल्पनाका साक्षात्कार हुआ था। इसी प्रकार समस्त यूरोपमें बहु-संख्यक भव्य धर्ममन्दिरोंके बननेसे ईसाई लोगोंकी भक्ति वर्षाकालीन नदियोंकी नाईं प्रबल वेगसे प्रवाहित होने लगी। इन मंदिरोंके बनानेमें लोगोंने आत्मोत्सर्ग और स्वार्थत्यागका उत्तम नमूना दिखाया। ये मन्दिर उस समय सर्वत्र धार्मिक-वृत्तिके शुद्ध आविर्भाव-स्वरूप गिने जाते थे। जिसे कला-शास्त्रके इतिहास और उसके लक्षणका कुछ भी ज्ञान होगा, वह स्वीकार करेगा कि इन भव्य मंदिरोंसे सादरभीति और शान्तिके संमिश्रणका भाव उत्पन्न होता है, बुद्धिकी क्षोभ उत्पन्न करनेवाली वृत्तियाँ निद्रित हो जाती हैं, मनके आस-पास कृत्रिम, व्यवहार विरुद्ध और हृदय भेदक आवरण छा जाता है, त्रास तथा परोक्षताकी कल्पना दीप्त हो उठती है, और गंभीर तथा आकर्षक मूर्त्तियाँ बनने लगती हैं। इससे जैसा प्रभाव पड़ता है वैसा दूसरे किन्हीं साधनोंसे नहीं पड़ता। जब जब इस प्रवृत्तिका सार्वत्रिक प्रसार हुआ, तब तब गॉथिक गृह-निर्माण-कला भी उन्नति पर पहुँची और जब उक्त प्रवृत्त नष्ट हो गई तब गाथिक-कला भी उसी दशाको प्राप्त हुई।

इस स्थल पर स्थापत्यकी दशा बदलने या उसके ऐहिक-रूप धारण करनेका इतिहास नहीं लिखना है, यहाँ केवल यही कहना है कि जब यूरोपका गहरा अज्ञान दूर होकर धार्मिक जोश उत्पन्न हुआ तब यह कला धार्मिक-वृत्तिके अधीन हो गई। इसके पश्चात् यह कला ज्यों ज्यों धर्म्म-बन्धनसे मुक्त होती गई, त्यों त्यों इमारती कामोंमें भी वैसा ही वैसा फेरफार होता गया। अनेक स्थानोंमें गाथिक ढंग बदल कर उसकी

जगह ब्रुनेलेस्कीकी नवीन पद्धति जारी हुई। यह पद्धति पहलेकी अपेक्षा अधिक सुन्दर और धार्मिकगंधसे सर्वथा शून्य थी। इस समयसे भव्य, नेत्राकर्षक और समानरूपके भवन बनानेका जो ढंग प्रचलित हुआ, वह वास्तवमें प्राचीन कालके बड़े बड़े मंदिरोंके नमूनों परसे लिया गया था और उसकी सुन्दरताका लक्ष्य ग्रीक अथवा रोमकी शैली पर था।

'मनुष्य बुद्धिका इतिहास' लिखने वाले सज्जनका मत है कि मानवी हाथोंसे आज तक जितनी भव्य इमारतें निर्मित हुई हैं उन सबमें सैंटपीटरके मंदिरसे अधिक कौतूहल उत्पन्न करनेवाली अन्य कोई इमारत नहीं है; इसी तरह मानवी प्रयत्नोंकी निष्फलता और मानवी आशाका वंध्यात्व भी इसकी अपेक्षा अधिक खेदजनक रीतिसे अन्य कोई इमारत नहीं बतलाती है। इस मंदिरकी ऐसी अचिन्त्य और अभूतपूर्व उन्नति करनेवाला एक कीर्तिलोलुप बादशाह (द्वितीय जूलियस) था, परन्तु इस मंदिरके स्तम्भके नीचे उसके मृत्युलेखको भी स्थान नहीं मिला। कैथोलिक धर्मकी दिग्विजय और विश्वप्रचारकी स्मृतिरक्षाके लिए इसकी रचनाकी गई थी, परन्तु वह उल्टा उसी पंथकी अवनतिका भव्य और हृदयभेदी स्मारक बन गया! इसे देख-कर धर्मचिंतकोंके मनमें लूथर, पापक्षमाकी चिट्ठियां और धर्म्मक्रान्तिकी स्मृति जागरित होती है और इसीलिए उनकी दृष्टिसे उसका महत्व अधिक है; परन्तु तत्त्वदृष्टिसे देखने-वाले ऐतिहासिकोंको उससे उनसे भी अधिक महत्व पूर्ण बातें प्रकट होती हैं, क्योंकि प्राचीन सुधारोंके सगुणवादके अभ्या-ससे उत्पन्न होनेवाले आवेशके कारण शताधिक वर्षोंतक मनुष्य भयानक, गंभीर और भव्यस्वरूपवाली साकार मूर्त्ति-योंके द्वारा ही अपनी धार्मिकवृत्ति प्रकट किया करते थे। इस

आवेशकी पूर्णाहुतिकी स्मृति करानेवाला यही मंदिर है। अब मंदिरोंका युग पूर्ण हुआ और उसकी जगह छापाखानेका युग आया।

इस जगह कलाशास्त्रके इस अंगका विस्तारके साथ वर्णन करनेके दो कारण हैं—एक तो वह स्वतः ही बहुत रोचक और कौतूहलजनक है, दूसरे वह तत्कालीन धार्मिक विकाशका स्पष्ट प्रतिबिम्ब है। जिस समय किसी मान्यता या विश्वासका रुख बिलकुल बदल जाता है, उस समय ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि वह जिस विचारसारणीका बाह्य रूप है उसमें कुछ उसी प्रकारका फेरफार अवश्य हुआ होगा। छापेकी कलाका शोध होनेके पहले, जिस समय कि ईश्वरके विषयमें सभी लोगोंके मनमें स्थूल सगुणबुद्धि थी, उस समय धर्म्मके इतिहासका सच्चा हाल धर्म्मचार्य्योंकी पुस्तकोंमें नहीं, किन्तु कारीगरोंकी कृतियोंसे मिलता है; और सौन्दर्य्यशास्त्रकी प्रवृत्ति जोकि मुख्यकरके उच्चवर्गके लोगों तथा बहुत सुधरे हुए देशोंमें थी, तथापि वह भिन्न भिन्न रूपसे दूसरी अधिक फैली हुई प्रवृत्तियोंको प्रकट करती थी। वह बतलाती है कि एक समय बुद्धिके समस्त प्रदेशों पर धर्म्म-संस्थाका राज्य था—जोकि धीरे धीरे निर्मूल हो गया। इसके सिवा वह शिक्षितों और अशिक्षतोंके धर्म्म-साक्षात्कारमें बढ़नेवाले अंतर और शिक्षित लोगोंमें सगुणवाद या मूर्त्ति-पूजाकी क्रमशः होनेवाली विलुप्तिको भी दरशाती है।

२-विज्ञानशास्त्रका विकाश।

इस प्रवृत्तिका मुख्य कारण पहले कहे अनुसार बुद्धि पर पड़नेवाले पृथक् पृथक् प्रभावोंके सब संयोगोंसे उत्पन्न होनेवाली लोकशिक्षा है। इस शिक्षाके प्रभावसे स्थूल विचारोंके

मैदानसे ऊपर चढ़नेकी शक्ति और इच्छा—दोनों प्राप्त होती हैं और धार्मिकश्रद्धाके सब अंग उत्कृष्ट बन जाते हैं। परन्तु इसके सिवा एक पृथक ज्ञानकी शाखा है कि जिसके द्वारा उक्त प्रवृत्ति पर बहुत गहरा और स्पष्ट प्रभाव पड़ता है; अतएव उसका पृथक् वर्णन करना ज़रूरी है। यह शाखा विश्वशासनके विषयमें हमारे विचार बदल देनेवाली भौतिक विज्ञानकी प्रगति है।

ईसाई धर्म्मके प्रारंभीय कालमें धार्मिक विषयों पर इतना अधिक ध्यान दिया जाता था कि जिसके कारण सांसारिक विषयोंका अभ्यास करनेके लिए फुरसत ही नहीं मिलती थी। यदि कभी कभी वैज्ञानिक सिद्धान्तोंकी चर्चा होती थी तो वह केवल धार्मिकप्रश्नोंका स्पष्टीकरण करनेके लिए ही वाद-विवाद भी धर्म्म ही के लिए हुआ करते थे। बाइबिलके अर्थ करनेके विषयमें दो मत थे एक—लाक्षणिक और दूसरा वाच्यार्थ। पहला यहूदी टीकाकारोंको बहुत प्रिय था और इसी लिए उनको विश्वास था कि सभी धार्मिक आख्यानोंमें साधारण अर्थके सिवा दूसरा गूढ़ार्थ या विशेषार्थ भी रहता है और जो केवल दिव्यचक्षुओं या धर्म्मके अमुक अमुक सिद्धान्तोंके अनुसार सूक्ष्मबुद्धिसे जाना जा सकता है। आरगन नामक लेखकने लाक्षणिक अर्थके द्वारा स्वतंत्र विचारकी नवीन पद्धति निकाली। कभी कभी इस स्वतंत्रविचारकी ढिठाई बहुत बढ़ जाती थी। मूसा पैगम्बरके विश्वोत्पत्तिके मत पर शुभाशुभ-युद्धवादिओंके भारी हमला करनेके कारण आरगनने वाच्यार्थ पद्धितिके सम्बन्धमें उनका कहना खुशीसे कबूल कर लिया और सर्प, ज्ञानवृक्ष तथा जीवनतरु प्रभृतिकी वार्त्ताओं को कौए-कुत्ते आदिकी कल्पित कहानियोंके समान हास्यास्पद ठहराया, और कहा कि जब इन वार्त्ताओंको आध्यात्मिक सत्य दरशानेवाले रूपक गिने

तभी इनका औचित्य स्वीकार किया जा सकता है। परन्तु साधारण पादरियोंका यही मत था कि बाइबिलके आख्यानों-के दोनों प्रकारके अर्थ सत्य हैं, इसलिए दोनों स्वीकार करना चाहिए। संतआगस्टाइनने शुभाशुभयुद्धवादके खंडनमें एक पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने प्राचीन धर्मपुस्तकके मतानुसार विश्वोत्पत्तिका ६ दिनमें होना सत्य ठहराया, पीछे उसका लाक्षणिक अर्थ करके उसमें मनुष्यके भावी इतिहासके छह विभाग बतलाये और छट्ठा दिवस ख्रिस्ति न्यायका बतलाया अर्थात् इस दिन पुरुष रूपसे यीशु, और स्त्रीरूपसे धर्म्मसंस्था—दोनोंका पृथ्वी पर संयोग होगा। यह भविष्य कथन था। इसके सिवा इन छह दिनोंको ख्रिस्ति जीवनके छह विभागोंमें विभक्त करके कहा—पहले भागमें पापके समुद्रमें डूबे हुए मनुष्योंके मन पर श्रद्धाका प्रकाश पड़ता है, दूसरे भागमें इंद्रियनिग्रह रूपी आकाशके द्वारा पार्थिव और स्वर्गीय, या जड़ और चेतन वस्तुएँ पृथक् होती हैं, तीसरेमें शुद्ध बनी हुई आत्मा सांसारिक वस्तुओं से मुक्त होकर सद्गुणोंकी अधिकारिणी बनती है, फिर चौथे दिन आध्यात्मिक विचार तारागणोंके समान इन्द्रियनिग्रह रूपी आकाशमें यथाक्रम उदित होते हैं, इसके पश्चात् समुद्रकी मछलियोंके समान कसौटीकी लहरोंसे सत्कृत्योंकी उत्पत्ति होती है और अंतमें जिस प्रकार आदम और ईवका शुभ संयोग हुआ, उसी प्रकार शुद्ध विचारों और शुद्ध कर्मोंके संयोगसे आत्मा अपने भविष्य विश्रामकी अधिकारिणी बन जाती है।

'प्रभुने साँपको भूमि पर पेट और छातीके बल चलने-की शाप दी थी'—इस धर्म्मवाक्यमें साँपका अर्थ लोभवृत्ति, पेटका अर्थ विषयवासना और छातीका अर्थ अहंकार किया जाता था, क्योंकि विषयवासना और अहंकारसे लोभवृत्ति

उत्पन्न होती है। इसी प्रकार बाइबिलके इन वचनोंका कि 'एक समय ऐसा था जब पृथ्वी पर मेघ नहीं बरसते थे और पृथ्वीके भीतरके झरने ऊपर आकर भूपृष्ठको आर्द्र करते थे' लाक्षणिक या रूपकार्थ इस प्रकार किया जाता था कि उस समय भविष्यत्‌वादी और प्रेषितोंकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि आविर्भावके झरने प्रत्येक हृदयमें झरते थे। इस तरह आगस्टाइन दोनों प्रकारके अर्थोंको ठीक बतलाते थे, परन्तु साथ ही यह भी कहते थे कि जब वाच्यार्थ धर्म सिद्धान्तोंसे विरुद्ध जाता हो या उससे ईश्वरकी लघुता प्रकट होती हो तब उसे न मान कर उसके अलंकारिक अर्थ ही को ग्रहण करना चाहिए।

इसके सिवा कुछ धर्म्माचार्य्य काव्यके निरे अलंकारोंको भी अक्षरशः सत्य मानते थे; उदाहरणार्थ—जब गेलीलियोने कहा कि पृथ्वी सूर्य्यके आसपास घूमती है, तब उसके विरोधियोंने बाइबिलसे प्रमाण देकर कहा कि सूर्य्य आकाशके एक छोड़से दूसरे छोड़ तक दौड़ता है और पृथ्वीकी जड़ें ऐसी मजबूत जमी हुई हैं कि वह अपनी जगहसे ज़रा भी चलविचल नहीं हो सकती है' इत्यादि।

ईसाई धर्म्मके प्रारंभीय कालमें जिन थोड़े बहुत वैज्ञानिक प्रश्नोंकी चर्चा हुआ करती थी उनमें एक ध्यान देने योग्य प्रश्न यह था कि पृथ्वी की पीठ पर विरुद्धपाद (antipodes) अर्थात् पृथ्वीकी दूसरी बाजू अपने पैरोंकी ओर पैर रखकर चलने वाले मनुष्य हैं या नहीं? शुभाशुभयुद्धवादियोंके इस मतका प्रारम्भीय धर्म गुरुओंने खंडन किया। सन् ५३५ ईसवीमें अलेकजेन्ड्रियाके एक मठमें कास्मस नामक एक बूढ़ा साधु रहता था। इस विषयमें उसका मत जाननेकी अभिलाषा अनेक लोगोंकी थी। जवानीके समय वह व्यापार

करता था। उस समय वह भारतवर्ष और इथिओपियाकी ओर बहुत जाया आया करता था। उसकी बुद्धि बहुत प्रखर थी, धर्मशास्त्रके ज्ञानके विषयमें भी उसकी बहुत प्रसिद्धि थी। इसलिए कुछ धर्म्माचारियोंके विशेष अनुरोधसे शरीर अस्वस्थ रहने पर भी उसने एक महान् ग्रन्थ लिखने का भार अपने सिर पर ले लिया। उसने इस ग्रन्थ का नाम रक्खा—'विश्वरचनाके विषयमें खिस्तिसिद्धान्त'। इसकी प्रस्तावनामें उसने बड़ी श्रद्धा और आडम्बरके साथ लिखा कि 'इस ग्रन्थकी रचना ईश्वरप्रणीत पवित्र धर्म्मशास्त्रके आधार पर की गई है, इसलिए इसके विषयमें ईसाई मात्रको किसी प्रकारकी शंका करना उचित नहीं है।' जिसकी प्रस्तावनामें ऐसी बातें लिखी हुई हैं उस पुस्तकके भीतरी भागका किञ्चित दिग्दर्शन करना पाठकोंको अरुचिकर न होगा। वह पुस्तकके प्रारम्भमें लिखता है कि यह पृथ्वी चपटी और चौकोन है, उसके पूर्व-पश्चिमकी लम्बाई, उत्तर-दक्षिणकी चौड़ाईसे दुगनी है, उसके चारों ओर समुद्र है, उस समुद्रके आसपास दूसरी पृथ्वी है—जिसमें कि प्रलयकालके पहले मनुष्य रहा करते थे। इस बाह्य-पृथ्वीके उत्तरमें एक शंकुके आकारका ऊँचा पर्वत है, इसके आसपास सूर्य चन्द्र भ्रमण किया करते हैं। जब सूर्य उस पर्वतके पीछे जाता है तब रात होती है और जब सामने आता है तब दिन। बाह्यपृथ्वीके छोड़ोंसे आकाश जुड़ा हुआ है। आकाशकी चार ऊँची दीवाले हैं जो ऊपर जाकर एक दूसरेसे मिलकर गुम्बजके आकारकी बन गई हैं। इस पृथ्वीको गुम्बजकी तली या फर्श समझना चाहिए। यह गुम्बज दो मंजिला है—आकाश और पृथ्वीके मध्य अंतरिक्षके द्वारा ये विभाग होते हैं। अंतरिक्षके ऊपरी भागमें एक बड़ा भारी समुद्र है—जिसे आकाशगङ्गा कहते हैं,

और वह पृथ्वीसे बहुत दूर है। इस समुद्रसे ऊपर आकाश-के शिखर तकका खाली प्रदेश पुण्यात्माओंके लिए है और अन्तरिक्षसे नीचे पृथ्वी तककी जगह देवदूतोंके लिए। अब विरुद्धपादजनोंके विषयमें उसका मत सुनिए—षड्-दिनात्मक सर्गावधिमें 'द्यावापृथ्वीसर्ग' नामक प्रकरण है, जिसका उद्देश्य आकाश और पृथ्वीके मध्यकी समस्त चीजों-का वर्णन करना है। इसपर कास्मसका यह आक्षेप है कि यदि यह मान लें कि हमारे पैरोंकी ओर पैर रख कर चलने वाले मनुष्य पृथ्वीकी दूसरी बाजू पर रहते हैं तो कहना होगा कि पृथ्वी के चारों ओर आकाश है और पृथ्वी आकाशके पेट में समाई हुई है। परन्तु जो ऐसा होता तो उक्त ग्रन्थमें 'द्यावा पृथ्वी-सर्ग' (१) न लिख कर केवल 'द्युसर्ग' (२) ही लिखते*। अतएव शुभाशुभ-युद्धवादियोंका मत झूठा है—यह कहनेमें कोई हरकत नहीं है। इसके सिवा ऐसा लिखा है कि पृथ्वी अपने पाये पर खूब मज़बूत कसी हुई है इससे हम इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि वह हवामें अधर नहीं लटकती है, और संतपालके कहे अनुसार सब मनुष्य भूतल पर रहनेके लिए ही बनाये गये हैं, फिर वे उसकी पीठ पर कैसे रह सकते हैं?

धर्म्मग्रन्थोंके अर्थ करनेकी ऐसी रीतिसे विज्ञानशास्त्रकी उन्नतिमें कितनी बाधा पहुँची होगी यह सहज ही अनुमान

१—द्यावा-पृथ्वी = मिले हुए स्वर्ग और पृथ्वीका इकट्ठा नाम।

२ द्यु = आकाश।

* कहनेका मतलब यह है कि पृथ्वीके दूसरी बाजू भी आकाश होता तो उस प्रकरणका नाम जिसमें समस्त सृष्टि का वर्णन किया गया है (दो सीमाओंका बोध कराने वाला) द्यावा-पृथ्वी न रक्खा जाता, बल्कि द्यु या आकाश सर्ग ही उसका नाम उचित होता, क्योंकि जब पृथ्वी आकाश-के पेटमें समाई है तब आकश शब्दमें ही उसका समावेश हो जाता है।

किया जा सकता है। उस समय यह बात किसीके ध्यान ही में न आती थी कि धर्म्मशास्त्र और विज्ञानशास्त्र दो बिलकुल भिन्न भिन्न शास्त्र हैं। साम्प्रत समदृष्टिसे देखनेवाले सभी मनुष्य प्रतिदिनके अनुभवसे भलीभाँति जानते हैं कि विज्ञानवेत्ताओंकी शोधका खंडन करनेके लिए धर्म्मग्रन्थोंके फकरे खोजना बिलकुल व्यर्थ है। परन्तु यह बात उस समय स्वप्नमें भी किसीके खयालमें नहीं आती थी। ज्यों ज्यों यूरोपीय वहमकी वृद्धि होती गई, त्यों त्यों ईश्वरप्रेरणाका सिद्धान्त विस्तार पाता गया और उसने मानवबुद्धिकी समस्त शक्तियोंको कुचल डाला। इससे जब कोपरनिकसके सिद्धान्तोंका प्रचार हुआ, तब बहुत झगड़े हुए। यद्यपि पोप वगैरहने उसे आश्रय दिया था और विद्वानोंमें उसके मतका वजन भी पड़ने लगा था, तौभी कुछ रोमीय पादरी उसकी ओर संशयकी दृष्टि से देखते थे। उन्होंने कोपरनिकस और उसके दो शिष्योंके विषयमें अधिकारियोंकी ओरसे तिरस्कार प्रदर्शित कराया था और इसके १७ वर्ष पश्चात् गेलीलियोंको अपराधी ठहरा कर कैद में डलवा दिया था।

इस प्रकार धर्माधिकारियोंके डाले हुए भयंकर विघ्नोंके मध्य विज्ञानशास्त्र कैसे आगे बढ़ा, यह बात सचमुच ही आश्चर्यमें डालने वाली है। वे विज्ञानशास्त्र से बिलकुल विरुद्ध प्रकारके विचार प्रवाहको फैलानेका प्रयत्न किया करते थे। अंधश्रद्धाकी निरन्तर प्रशंसा और अगणित दैवी चमत्कारों या विचित्र दंतकथाओं आदिसे घोर अज्ञान छा गया था, लोग इतने मूर्ख, नीच और भयभीत होगये थे कि उन कैसी निम्न अवस्था बिलकुल जङ्गली अवस्थामें रहनेवाले लोगोंके सिवा अन्य कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती थी। उस समय प्रत्येक प्रकारकी नवीनताकी गणना भारी अपराधमें होती थी, अधिक ज्ञान

भी भय और शंकाकी दृष्टिसे देखा जाता था; इस कारण जब किसी विचारप्रदेशमें नवीनता या ज्ञानकी प्रखरता दृष्टि पड़ती थी तब उसे पाखंड संज्ञा दी जाती थी। ये ही बातें जब प्रकृति सम्बन्धी अध्ययनमें दिखाई देती थी तब वे जादूके नामसे पुकारी जाती थीं। पोपकी महान पदवी धारण करनेवाला गर्बर्ट जैसा विद्वान् भी जादूगरीके आरोपसे नहीं बच सका, और रोजरबेकन जैसे पुरुषको १४ वर्ष कैद भोगना पड़ी। समाजकी अन्य स्थितिमें जिन विद्वान् पुरुषोंकी बुद्धि विज्ञानशास्त्रके शोधमें लगनी चाहिए थी, दुर्भाग्यसे धार्मिक प्रबलताके कारण उनका चित्त धार्मिक झगड़ोंमें ही फंसा रहा। ज़िस समय लार्ड बेकन ज्ञानक्षेत्रका सारी नकशा खींच रहा था, उस समय उसका मन बलात् मध्ययुगकी हीनताकी ओर झुक गया। मनुष्य मनका इतने अधिक समय तक स्तब्ध और निश्चेष्ट अवस्थामें रहना साधारण दृष्टिसे उसकी बुद्धिके विषयमें हल्का खयाल पैदा करता है। परन्तु बेकनने इस प्रश्नका तुरन्त निश्चयपूर्वक उत्तर दिया। खिस्तिधर्मकी छाती पर रति सुखभोगी—पिशाचके समान धर्मसम्प्रदाय चढ़ बैठा था, और एकाध अन्य किसी कारण की अपेक्षा उसकी अत्यन्त प्रबलताके कारण सर्वत्र स्तब्धता उत्पन्न हुई थी।

अन्तमें जब साहित्यकी उन्नतिका समय आया, तब उसके साथ साथ विज्ञानशास्त्रकी उन्नति भी शीघ्रताके साथ हुई और उसके परिणामसे शीघ्र ही लोगोंके विचारोंमें बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस विचारक्रान्तिका पहला कार्य सृष्टिमें मनुष्यकी योग्यताका प्राचीन ख़याल बदलना था। जंगली लोगोंको स्पष्ट रीतिसे भासता है कि विश्वमें अपनी ही दुनियाँ मुख्य है, उसके आसपास सूर्य्य चन्द्र दोनों एक

समान रूपसे घूमा करते हैं और तारागण अपने आकाशको अलंकृत करनेके लिए ही उत्पन्न हुए हैं। ऐसे विचारोंके कारण सुधारणाके प्रारंभीयकालमें अनेक अद्‌भुत विचार और वहम उत्पन्न हुए। ये वहम उस समय धार्मिक विश्वास-में अग्रस्थानीय थे।

सब वस्तुओंका केन्द्रस्थान मनुष्य माना गया है इसलिए प्रत्येक आश्चर्य या घबराहट उत्पन्न करनेवाली घटनाका कुछ न कुछ परिणाम उसके कृत्यों पर अवश्य ही पड़ना चाहिए। ग्रहण, धूमकेतु उलका, झंझावात आदि सब उसीके निमित्त उत्पन्न हुए हैं, विश्वके समग्र इतिहासका रुख उसी-की ओर है और विश्वमें जो कुछ गड़बड़ी या विकार उत्पन्न होता है वह सब उसीके भले बुरे कृत्योंके कारण होता है।

इस सब प्राचीन विचारोंको बदलने वाला खगोलशास्त्र है। परन्तु बहुत समयसे इस खगोलशास्त्रसे उल्टे उन्हीं विचारों-को पुष्टि मिलती थी, क्योंकि फलित ज्योतिषसे उसकी मिलावट होगई थी। विश्वके अनन्त विस्तारसे उत्पन्न होने वाली अपनी क्षुद्रताके सम्मुख ज्योतिषशास्त्रको मनुष्यके अहंभावका अन्तिम युद्ध कह सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवनको दूसरी दुनियाओंकी गतिके साथ जुड़ा हुआ गिनता और अपनेको बड़े बड़े ग्रहोंके प्रभावका केन्द्रस्थान मानता था, इस कल्पनाकी अपेक्षा मनुष्यकी महत्ताको बेहद बढ़ानेवाली दूसरी कोई कल्पना मनुष्यके मनमें आना अशक्य है।

कुछ समय तक ऐसे विरुद्ध विचार प्रचलित रहने पर भी खगोलविद्याकी अन्तमें विजय हुई, क्योंकि वह सिद्ध करती थी कि अपनी दुनियाँ विश्वका बहुत छोटेसे छोटा हिस्सा है, और उसकी गतिपरसे जाना जाता है कि जैसे

कद्में उसका कोई हिसाब नहीं है, वैसे ही उसकी स्थिति भी किसी लेखेकी नहीं है। ऐसे शोधोंका आत्मिक महत्व जितना कहा जाय उतना थोड़ा है। जो लोग पृथ्वीको विश्वका केन्द्र समझते हैं वे नीतिविषयक योजनामें भी उसे वही स्थान देते हैं; परन्तु जब पहली स्थिति असत्य सिद्ध हुई तब दूसरी भी असङ्गत ठहरी।

कोपरनिकस और गेलिलियोकी शोधके उपरान्त भूस्तर विद्याकी शोधसे भी धार्मिक विश्वासोंपर गहरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना था, क्योंकि उसके आगे यह ख़याल नहीं टिक सकेगा कि यह दुनियाँ आदमसे ही शुरू हुई है। अनन्तताकी उच्चतम कल्पना करनेवाला मनुष्य कालके अनन्तत्वको पहाड़ोंकी चट्टानों पर और स्थलके अनन्तत्वको तारागणोंमें देख सकता है। परन्तु शिष्ट वैज्ञानिक सृष्टिकी अति प्राचीनता सिद्ध करने या मूसाके सृष्टि-वर्णनको असत्य ठहरानेमें भूस्तर विद्याकी सफलता नहीं, किन्तु मृत्युके कारणके विषयमें फैले हुए विश्वासको निर्मूल करनेमें उसकी सफलता समझते हैं। एक समय एक मनुष्यने स्वर्गमें ईश्वरके हुक्मका अनादर किया, इसीलिए सृष्टिमें यह भयङ्कर (मृत्यरूपी) आपदा आगई; जीवधारियोंके शरीर सम्बन्धी प्रत्येक कष्ट, क्षोभ, दुःख प्रेरणा और तंगी प्रभृति सब इसी अनादरका परिणाम हैं। यह कल्पना सुदीर्घ समय तक बहुत विश्वासके साथ मानी जाती थी, और आज भी जिनको बिलकुल अपढ़ या मूर्ख नहीं कह सकते हैं ऐसे अनेक लोग उसे मानते हैं। इस साधारण सिद्धान्तकी इतनी महत्ता बढ़ गई कि वह ऐसे ही असंख्य विश्वासोंका चक्रवर्त्ती शासक बन गया; जब एकंदर मृत्यु या यातना आदमके पापका फल समझी जाती थी, तब प्रत्येक मृत्यु और पीड़ाका भी कुछ अर्थ होना ही चाहिए;

और जब इन भारी आपदाओंका कारण मनुष्य स्वतः ठहराया गया तब ऐसा विश्वास होना स्वाभाविक ही है कि अन्य कष्टोंका कारण भी वही है।

परन्तु अब भूस्तर विद्याने यह अच्छी तरह सिद्ध कर दिया कि उक्त कल्पना बिलकुल भ्रमपूर्ण है। वह सिद्ध करती है कि पृथ्वी पर मनुष्योंके उत्पन्न होनेके असंख्य युग पहले भी पार्थिव जीवोंकी मृत्यु हुआ करती थी। जिस समय मस्तोदन और दिनोथोरियम नामके हाथीसे भी बड़े और विकराल प्राणी इस दुनियाँमें निवास करते थे उस समय भी मृत्युसे ध्वनित होनेवाली दुर्बलता आजहीके समान ज्ञात होती थी। इस बातको अस्वीकार करना अब असम्भव है, क्योंकि ऐसा करनेसे भूतकालके एक मूल सिद्धान्त पर पानी फिरता है। इस तरह भूस्तरविद्याके अध्ययनसे मृत्यु विषयक भारी भ्रम दूर होगया।

वैज्ञानिक शोधसे एक दूसरे प्रकारका असर यह हुआ कि अमानुषीशक्तिके द्वारा होनेवाली रुकावटों या दैवीअन्तरायोंकी कल्पना धीरे धीरे दूर हो गई और उसकी जगह क्रमशः नियमबद्धताका खयाल आने लगा। इस फेरफारके विषयमें हम पहले ही लिख चुके हैं परन्तु उसे यहाँ अच्छी तरह समझानेके लिए फिरसे लिखनेकी आवश्यकता है। जंगली मनुष्यों अर्थात् गैर सुधरे हुए लोगोंकी खास पहिचान यह है कि उनके मनकी कौतूहलवृत्ति और विशेष करके धार्मिकवृत्ति पर प्रकृतिके नित्य नियमोंकी अपेक्षा असाधारण घटनाओंका अत्यधिक प्रभाव पड़ता है और इसी लिए वे लोग खास करके ऐसी घटनाओंको दैवीअंतराय समझते हैं। इसी प्रकार जुआ प्रभृति भाग्यके खेल बहुत प्राचीन समयसे निषिद्ध थे। इनके कारण अनेक अनर्थ उत्पन्न होते हैं इस

लिए नहीं किन्तु उनसे ईश्वरका अपमान होता है इस लिए उनकी मनाही की गई थी। क्योंकि वे कहते थे कि इन छोटे मोटे खेलोंमें ईश्वरको मध्यस्थ बनाकर बुलाना उसका अपमान करना है। पांसा कैसा पड़ेगा इसका अनुमान मनुष्य नहीं कर सकता है, इस लिए ऐसा समझा जाता था कि उसका निर्णय ईश्वरीय मध्यस्थतासे होता है।

धार्मिक-वृत्तिके साथ इन विलक्षण बातोंके जुड़ जानेसे नीचे लिखे हुए विज्ञान और धर्म्मसम्बन्धी दो अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम घटित हुए। पहला यह कि जब तक अनियमित और कौतूहलजनक घटनायें प्रत्यक्ष ईश्वरीयलीला समझी जाती थीं, तब तक वैज्ञानिक ढँगसे उनका स्पष्टीकरण करना कठिन था, क्योंकि ऐसा प्रयत्न करना मानो खुदाकी अकलमें दखल देना समझा जाता था, और यदि ऐसे प्रयत्न सफल होते तो उनसे धर्म्मकी जड़ें ही उखड़ जातीं। दूसरा यह कि मानवी सुधारोंमें प्रारम्भीय कालमें ईश्वरके विषयमें जो खयाल था, आगे चलकर उसमें बहुत हेरफेर हुआ। प्राचीन समयमें —जबकि विज्ञानशास्त्रका जन्म नहीं हुआ था—ईश्वरकी उपस्थितिका खयाल उसके अनियमित और कौतूहलवर्धक कामों परसे किया जाता था, परन्तु अब वैज्ञानिक युगमें उसका खयाल निश्चित और अखंड नियमों परसे बाँधा जाने लगा। दोनों युगमें धार्मिकवृत्तिका स्वरूप बिलकुल जुदा जुदा होनेके कारण उनका मूलभूत ईश्वर सम्बन्धी खयाल भी जुदा जुदा था। पहले खयालमें अंतराय, अनियमितता, विकार और चमत्कारोंकी भरमार थी और दूसरेमें नियमितपन, स्थायित्व, भविष्यदर्शन और नीतिकी पूर्णता गर्भित थी।

चौदहवीं सदीमें प्राचीन पुस्तकोंके अभ्यास और विशेष करके अरबी साहित्यके प्रभावसे ज्योतिषशास्त्रकी बहुत

उन्नति हुई। इससे खगोलविद्याका महत्त्व भी बहुत बढ़ गया। कोपरनिकसके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ, और केप्लर तथा गेलीलियो जैसे विद्वानोंका एक ही समय आविर्भाव होने, तथा दूरबीन की शोध और उसमें होने वाले सुधारों आदिसे वहमके प्रदेशमें प्रकृतिके नियमित कायदोंने प्रवेश किया। पहले लोगोंको विश्वास था कि आकाशमें दिखाई देनेवाले ग्रहोंको गति पृथक् पृथक् और सम्बन्ध रहित है, और इन ग्रहों तथा वायुमंडलमें होनेवाले समस्त फेरफारोंके कर्त्ता देवदूत हैं। ये सब बातों डेकार्टस और न्यूटनके बुद्धिवैभवके सम्मुख नहीं ठहर सकीं। सर्वत्र नियमित कायदोंकी सत्यता दिखाई देने लगी और आकाशमंडलके प्राचीन खयालोंसे उत्पन्न होने वाले विश्वास मिटने और लुप्त होने लगे।

परन्तु यह मरणोन्मुख वहम बहुत वर्षों तक पूछलतारामें निवास करता रहा। उसके क्वचित होने वाले आगमन, उसकी कक्षाकी अनियमितता, उसके स्वरूप पहिचाननेकी कठिनाई और उसके दर्शनकी भव्यता तथा भयंकरतासे मनुष्योंके मन पर दैवीप्रकृतिके विषयमें गहरा प्रभाव पड़ता था। बहुत प्राचीन समयसे धूमकेतुसे किसी भारी अनिष्टकी पूर्वसूचना समझी जाती थी और इसके विषयमें ढेरों प्रमाण पेश किये जाते थे। सीजर, सुप्रसिद्ध कान्स्टेन्टाइन तथा पांचवें चार्ल्सके मरणके पहले धूमकेतु दिखाई दिया था। इसी प्रकार ग्रीस देशपर जर्किस बादशाहकी चढ़ाई स्पार्टाके विग्रह, सीजर और पोम्पीके जनप्रकोप, जेरूसेलमके पतन और एटिलाकी चढ़ाईके पहले, तथा मनुष्यजातिमें हाहाकार मचा देने वाले भयंकर दुर्भिक्षों और महारोगोंके पूर्व ये पूछलतारे दृष्टिगोचर हुए थे। आनेक पादरी इन पूछलतारोंके अनिष्टको स्वीकार करते थे, परन्तु उसका स्पष्टीकरण करनेमें कुछ विवेकसे

काम लेते थे, अर्थात् वे कहते थे कि आकाश अथवा पृथ्वीमें-से निकलनेवाली एक प्रकारकी विषैली भाफसे ये धूमकेतु बने हुए हैं, इस लिए वे उदित होने पर वायुमंडलको ख़राब करके अनेक संक्रामक रोगोंको फैलाते हैं; राजा लोग खास तौरसे इनके बलि होते हैं इसका कारण यह है कि वे विला-सितामें लिप्त रहकर अपने शरीरको बहुत कमज़ोर बना डालते और अपनी शक्तिसे अधिक श्रम करते हैं। तथापि साधारण रीतिसे धूमकेतुमात्र आपत्तिसूचक दैवीसंकेत समझे जाते थे। दो तीन बड़े आदमियोंने धर्म्मशास्त्र और तत्त्वज्ञान दोनों रीतिसे इस विश्वासको दूर करनेके लिए प्रयत्न किया, परन्तु जब तक धर्म्म और तत्त्वज्ञान दोनोंको विज्ञान-शास्त्रकी मदद नहीं मिली थी तब तक वे दोनों निर्वीर्य्य थे और इसी लिए उनका प्रयत्न निष्फल गया। परन्तु जब हेलीने अपना यह मत प्रकट किया कि धूमकेतु वर्तुलाकार मार्गमें घूमता है, तब सब लोग नियमकी सीमाके भीतर आगये और उनका एक बहुत पुराना वहम नाश हो गया।

सत्रहवीं सदीमें खगोल विद्या का जो हाल था, वही विज्ञानशास्त्रका भी था। जगह जगह दैवी अंतरायोंकी जगह प्राकृतिक नियमोंका ज्ञान बढ़ता जाता था और लोगोंको विश्वास हो चला था कि यद्यपि हम अमुक घटनाका कारण खोज नहीं सकते हैं, तथापि उसका कुछ ना कुछ प्राकृतिक नियम होना ही चाहिए। यह सच है कि बेकनकी पुस्तकोंका महत्व कुछ अँगरेज प्रजाके अभिमानके कारण और कुछ उसके अपने समकालीन पुरुषोंके विषयमें बाँधे हुए हलके खयालोंके लोकमान्य होनेके कारण बहुत बढ़ गया था, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उसने नवीन प्रवृत्तिको योग्यमार्गसे आगे बढ़ानेमें अन्य किसी कारणकी अपेक्षा विशेष काम किया था।

इङ्गलेंडमें तो उसकी पुस्तकें सर्वश्रेष्ठ गिनी जाती थीं। जिस प्रकार ज्योतिषशास्त्रसे खगोलशास्त्र जुदा हुआ, उसी प्रकार कीमिया विद्यासे रसायनशास्त्र भी जुदा हो गया। सन् १६५७ से १६६६ तक टस्कनी, लंदन और पेरिसमें वैज्ञानिक शोधके लिए पाठशालाएँ और राज्यमान्य विद्वन्मंडल स्थापित हुए। एक ही समय पृथक् पृथक् शास्त्रोंके अध्ययनसे प्रकृतिके भिन्न भिन्न विभाग वहमसे मुक्त हो गये, यही नहीं, किन्तु सब जगह सब लोग चमत्कारोंमें ईश्वरको प्रत्यक्ष करनेकी आशा छोड़ कर नियमित कायदोंमें उसका अस्तित्व अनुभव करने लगे। छोटेसे छोटे जन्तु तथा एक दिनकी आयुवाली मक्खीमें भी उसकी उत्तम रचनाकी सबूती मिलने, तथा दुर्बलसे दुर्बल प्राणियोंके सुखके लिए अनुकूल साधनोंकी योजना करने वाले ईश्वरकी रक्षणशैलीको देखकर लोग आदर और आश्चर्य्यके साथ उसका चिन्तवन करने लगे।

इस फेरफारका उत्तम फल यह हुआ कि धर्मके सिद्धान्तोंका अत्यन्त कठोर और त्रासजनक स्वरूप दूर हो गया। जब तक मनुष्य असाधारण घटनाओं परसे ईश्वर विषयक कल्पना करता है, तब तक उसका ध्यान मुख्यता: संकटों ही की ओर रहता है, कारण कि संकट बहुधा अपवादके समान हुआ करते हैं और सुखके साधन बहुत साधारण घटनाओंमें रहते हैं। इसके सिवा मनुष्य प्रकृतिका एक बुरा लक्षण यह है कि उसपर कृतज्ञताको अपेक्षा भयका असर सदैव अधिक पड़ा करता है। तदनुसार अपने पूर्वजोंकी भक्ति मुख्यतः तूफान, उपद्रव, दुष्काल और मृत्युके साथ आबद्ध थी; क्योंकि ये बातें अपने किये हुए पूर्व अपराधों के दंडस्वरूप गिनी जाती थीं, और इसोलिए वे भयसे विह्वल हो जाते थे। धर्मके सब अङ्गों पर भी ऐसा ही रंग चढ़ा था, क्योंकि इस

लोककी कष्टमय स्थिति और परलोकमें मिलने वाली भयंकर गति—यही उसका मुख्य सिद्धान्त बन रहा था। परन्तु यह स्थिति मानवी सुधारोंके प्रारंभीय कालमें बिलकुल स्वाभाविक थी – जोकि धर्मके विकाश पर आधुनिक विज्ञानकी छाया पड़ते ही शीघ्र विलुप्त होगई। क्योंकि मनुष्यका मन मुख्यतः सृष्टिके समस्त जीवोंके कल्याणके लिए निर्मित असंख्य योजनाओंकी ओर खिचने लगा और जब इस लोककी आपत्तियोंके विषय में ऐसा बतलाया जाने लगा कि वे ब्रह्माण्डकी एकत्र रचनासे संलग्न साधारण नियमोंके कारण ही होती हैं, और इनमें की अनेक आपत्तियाँ मनुष्योंकी उत्पत्ति होनेकी पूर्व बहुत कालसे प्रचलित थीं, तब उनसे पैदा होने वाला वहम बहुत कुछ घट गया।

इसके सिवा मनुष्यके विचारों पर प्रभाव डालनेवाली वैज्ञानिक प्रगतिकी दूसरी शाखा सृष्टिके रचना-क्रमकी अभिवृद्धि है। सत्रहवीं सदीके बड़े बड़े विद्वानोंके मतसे यह ब्रह्माण्ड ईश्वरकी सहसा दी हुई आज्ञाके अनुसार शीघ्र बनने और तत्क्षण वृद्धिको प्राप्त होनेवाला एक विशाल और संमिश्र यंत्र है। परन्तु १८वीं और खास करके १६वीं सदीमें रसायन-शास्त्रकी उन्नति, शक्तियोंके विनिमय, अविनाशत्वके सिद्धान्त और भूस्तर-विद्याकी अनेक शोधोंसे यह मत बहुधा वदल गया। विज्ञान-शास्त्रकी कई शाखाओंमें पदार्थोंके स्वरूपोंमें निरन्तर होनेवाले परिवर्त्तनों और अमिश्रसे मिश्र-रूप बनानेवाले प्राकृतिक नियमोंके प्रभावसे निरंतर होनेवाली प्रगतिके विचार सर्वोपरि हो गये, और ऐसा कहनेके लिए भी यथेष्ठ कारण मिल गये कि एक समय यह पृथ्वी वाष्परूप थी, धीरे धीरे वह ठौस होकर स्थलरूपमें आई है, और उसकी वर्तमान स्थिति अनन्त युगोंके क्रमागत परिणामको

दरशाती है। इस खयालके अनुसार यह दुनियाँ जड़यन्त्रके समान नहीं, किन्तु सेन्द्रिय-पदार्थके समान है और उसके मिश्ररूप तथा योग्य संविधान बाह्यकृतिके बदले उसके अन्तर विकाशके परिणाम हैं।—यह कल्पना इतनी अपरिचित और नवीन मालूम पड़ती है कि अनेक मनुष्य यह समझ कर इससे पीछे हटते हैं कि इसमें विचार-पूर्वक कृतिकी कल्पनाका खण्डन होनेसे परमेश्वरकी बुद्धि-शक्तिके विषयमें नास्तिकता आती है। परंतु हमारी समझके अनुसार उक्त भय बिलकुल निष्कारण है। यह विश्व-रचना चाहे एक ही क्षणिक इच्छा-शक्तिका तात्कालिक कार्य्य हो, या क्रमशः, मंद और सतत परिणामवादका कार्य्य हो—परन्तु इसके कारण इस सिद्धन्तमें कुछ भी बाधा नहीं पहुँचती है; अर्थात् जड़-प्रकृति चैतन्य-शक्तिके अधीन है और सृष्टिकी अनेक रचनायें तथा बड़े बड़े प्रयत्नोंसे सिद्ध होनेवाले कार्य्य बुद्धिके परिणाम हैं। व्यापक और संवर्धक चैतन्य, तथा संयोजक और संघातकबुद्धि दोनोंके प्रमाण अबाधित हैं और इस ओर विज्ञान-शास्त्रकी चाहे जितनी उन्नति क्यों न हो जाय, तौ भी उससे इन प्रमाणोंका नाश नहीं होगा। यदि यह तर्क प्रमाणसे सत्य ठहरे कि सब जीवों और वनस्पतियोंकी उत्पत्ति एक ही जीवन-परमाणुसे विकाशकी नैसर्गिक क्रिया-के द्वारा हुई है, तौ भी हम प्रमाणबद्ध तथा प्रगतिशील विकाश और केवल अंधदैवयोग या काकतालीय न्यायसे न बन सकनेवाली सर्वांगपूर्ण देह-रहना प्रभृति सर्वोत्कृष्ट कृत्यों-में दिखाई देनेवाले ईश्वरीय बुद्धि-चातुर्य्यके प्रमाणोंकी ओर उँगली उठा कर दिखा सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि इस समयसे बुद्धि-पूर्वककी हुई सृष्टि-रचनाकी दलील बदलने और नये रूपमें लिखी जाने लगी, परन्तु उसका सामर्थ

पहले जैसा ही रहा। ऐसा कहनेमें कुछ अत्योक्ति नहीं है कि सर्वव्यापी परिणामवादकी यह कल्पना ज्यों ज्यों अधिक विस्तृत होती जायगी, त्यों त्यों परम-चैतन्य या ईश्वरीय योजनाके सम्बन्धमें वैज्ञानिक सिद्धान्तोंकी स्थापना दृढ़ होती जायगी और भावी-प्रगति-सम्बन्धी अनुमान भी अधिक दृढ़ हो जायगा।

मनुष्योंके तात्त्विक विचारों पर भौतिकशास्त्रका जो प्रभाव पड़ता है वह प्राचीन-मतको हटा देनेवाले सरल तार्किक प्रमाणके रूपमें नहीं, किन्तु आकर्षण करनेवाले नवीन सादृश्य रूपमें होता है। हम पहले कह चुके हैं कि बड़े बड़े मतोंका निष्पक्ष रीतिसे निरीक्षण करने पर जाना जाता है कि सीधी दलीलों या वाद-विवादके प्रमाणोंकी दृढ़ता पर कोई प्राचीन-मत नहीं बदलता है, किन्तु अपने ज्ञानके दूसरे भागोंके साथ पुराने सिद्धान्तोंका विसंवाद या अघटित-पन सिद्ध होनेसे बदल जाता है। प्रत्येक मनुष्य नानाप्रकारके विचारोंका मिलान किया करता है, उन विचारोंमें सदैव एक प्रकारका मेल, संगति अथवा सादृश्यता रहती है। संभाव्यताके साधारण मापसे श्रद्धा या मान्यता उत्पन्न होती है और यह संभाव्यताका माप ज्ञानकी भिन्न भिन्न शाखाओंसे मिलता है। इस लिए जब जब भौतिक-शास्त्रमें नई शोध होनेके कारण मनुष्य और परमेश्वरके मध्यका स्वरूप दिखाने-वाला कल्पनाका नया फूल खिलता है, तब तब धर्म्मशास्त्रमें तत्सम्बन्धी दूसरे स्वरूप दिखलानेवाली वही या वैसी ही दूसरी कल्पना आ खड़ी होती है। क्योंकि ये दोनों शास्त्र ईश्वर और मनुष्यके भिन्न भिन्न प्रकारके सम्बन्धोंको दरशाते हैं।

भौतिक-शास्त्रके शोध अनेक मनुष्योंकी समझमें धर्मको हानि पहुँचाने वाले हैं। क्योंकि ईश्वरीय कार्य्योंका खयाल चमत्कारोंकी ओर इतना अधिक झुक गया है कि उन चमत्कारोंको प्रकृतिके सामान्य नियमोंकी हद पर ले आनेवाले प्रत्येक शोध अनेक मनुष्योंको अधर्मरूप प्रतीत होते हैं। इस कल्पनाके दृढ़ होनेका एक और कारण मौजूद है। वह यह है कि भौतिकशोधकी मर्यादा या अन्तिमसीमा प्राकृतिक नियमोंका ज्ञान है; इसी लिए किसी घटनाका नियम जान लेनेसे उसके कारणका ज्ञान नहीं हो जाता है—यह बात कभी कभी वैज्ञानिक भी भूल जाते हैं। जिस समय हम यह बात साबित करते हैं कि समस्त आकाशस्थित पदार्थ गुरुत्वाकर्षण-के महान् नियमके अधीन हैं, उस समय स्वतः गुरुत्वाकर्षण ही एक अभेद्य प्रश्नके रूपमें खड़ा हो जाता है। अर्थात् हम यह नहीं जानते हैं और शायद कभी जान भी नहीं सकेंगे कि एक जड़-वस्तु दूसरी जड़-वस्तुओंको क्यों—किस लिए खींचती है। जीवन-वृद्धिके नियमों पर विज्ञान-शास्त्र बहुत प्रकाश डाल सकता है, परन्तु जीवन क्या वस्तु है? उसका मूल कारण क्या है? इस बातको खोजनेमें वह बिलकुल असमर्थ हैं। मनुष्यकी जो बुद्धि धूमकेतुके मार्गका पता लगा सकती है और प्रकाशके वेगको माप सकती है, वही आज-तक छोटेसे छोटे जन्तुके जीवन, अथवा एक मामूली अंकुरकी वृद्धिका खुलासा करनेमें समर्थ नहीं हो सकी है। घटनाओं-का वर्गीकरण करनेमें, उनके परिणाम और सादृश्य पहि-चाननेमें उसकी सफलता आश्चर्य्य-जनक है, परन्तु उनके मूलकारण खोजनेमें वह नितान्त अशक्त है। प्रत्येक अस्तित्व-वान् पदार्थके मूलमें कुछ अभेद्य-रहस्य रहता है। आद्यतत्त्व, गत्यात्मक-बल, जीवनदात्री-शक्ति, जिन्हें हम परम्परासे

प्राकृतिक नियम कहते हैं उनके निमित्त कारण—ये सब बातें अपनी शोधके बड़े बड़े प्रयत्नोंसे भी नहीं जानी जा सकती हैं। इस जगह शरीर व्यवच्छेदककी चीड़फाड़ और रसायन-शास्त्रीका पृथक्करण दोनों कुछ काम नहीं देते हैं। जो सूक्ष्म-दर्शक-यन्त्र रक्तके एक बिन्दुमें सर्वव्यापी और सर्व-नियामक चित्प्रभावका चिन्ह बतलाता है और जो एक एक रज-कणमें सेन्द्रिय, सजीव जन्तुओंसे भरी हुई सारी दुनियाँ प्रत्यक्ष कराता है, वह भी आज-तक इस रहस्यकी कुंजी नहीं पा सका है। हम स्वतः ही अपने शरीर अथवा अपने आसपासके जगत्में जड़ और चैतन्यके सम्बन्धके विषयमें कुछ नहीं जानते हैं, अथवा जो जानते हैं वह नहींके बराबर है।

हमको यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जिस प्रकार अनेक लोग प्राकृतिक नियमोंके बढ़ते हुए ज्ञानको ईश्वरीय कृतिके सत्यका अस्वीकार करना समझते हैं, उसी प्रकार जड़ प्रकृतिके नाना प्रकारके कार्य्योंके ज्ञानकी वृद्धिसे अनेक समय चैतन्यशक्तिके अस्तित्वको इन्कार करनेकी ओर भी लोग झुक जाते हैं। एक गणितशास्त्री कहता है कि आत्माका अर्थ; स्थल विस्तार है, और सारंगीवाला कहता है कि वह एक स्वरता है इस तरह एक विषयमें रुचि रखनेवाले पंडित दुनियाँकी समस्त बातोंकी तौल अपने अपने लक्ष्यके अनुसार किया करते हैं। प्रायः प्रत्येक नये शास्त्रको प्रारंभमें दो प्रबल शत्रुओंके साथ लड़ना पड़ता है। कुछ आदमी तो इस मत के होते हैं कि जो नया है वह सब झूठा है, और कुछ ऐसे होते हैं कि किसी नये शोधके हाथ लग जाने पर वे उससे दुनियाँकी सभी बातोंकी उलझन सुलझाने या उससे सभी बातोंका स्पष्टीकरण करनेका दावा करने लगते हैं। कहा जाता है कि हार्वेकी रुधिराभिसरणकी शोध बहुत झगड़े और बहुत

समयके बाद डाक्टरोंके मगज़में उतरते हों, उन्होंने एक ऐसी परिषद् स्थापित की कि जिसका मत था कि मनुष्य जाति के समस्त रोगोंका कारण अपूर्ण रुधिराभिसरण है। ऐसा ही हाल सर्वत्र दिखाई देता है। वर्तमान समयमें जड़प्रकृतिके नियमोंका अध्ययन बहुत तेजीके साथ बढ़ने तथा शरीर सम्बन्धी कार्य्योंको समझनेके लिए देह और आत्माका सम्बन्ध बहुत कुछ खोजा जा रहा है इस कारण यदि देहात्मवादकी प्रवृत्ति बढ़ती जाती है तो इसमें डरने या आश्चर्य्य करनेकी कोई बात नहीं है।

इसके सिवा भौतिकविज्ञानके अध्ययनसे बाइबिलके अर्थ करनेकी पद्धति भी बदल गई। इसका पहला पहला उदाहरण एक फ्रेंच प्रोटस्टेएट सम्प्रदायके ला पीटर नामक लेखकके ग्रंथमें—जो सन् १६५५ ई० में प्रकाशित हुआ था—मिलता है। उसके मतके अनुसार आदम मानवजातिका पिता नहीं था, वह केवल यहूदीजातिका पूर्वज था; और प्रलयकालके पूर्वका समस्त वर्णन केवल एकदेशीय लोगोंका इतिहास था। इस प्रकार पूर्व देशीय प्रजाकी अति प्राचीनता मान्य की जा सकती है और प्रलयकाल संबंधी कठिनाइयाँ भी दूर होजाती हैं। यदि यह कहा जाय कि प्रलय सारी दुनियाँमें हुआ था तो वह असंभव है, पर यदि उसे एक स्थानीय गिनें तो उसकी सत्यता स्वीकार की जा सकती है। इसी तरह कहना सरासर झूठ है कि दुःख रोग या मृत्यु आदमकृत ईश्वरकी आज्ञोलंघनका फल है। इसके सिवा यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि बाइबिलमें स्पष्टरूपसे रूपक तथा अतिशयोक्तिकी भाषा काममें लाई गई है। इसलिए उसका केवल वाच्यार्थ करनेसे भ्रम उत्पन्न होता है, और ईश्वरीयरक्षाके खास उदाहरणोंको

शुद्ध चमत्कारोंके तौरपर माननेमें भी भूल की जाती है। उदाहरणार्थ—'यहूदियोंके कपड़े बनवासके समय ४० वर्ष तक जीर्ण नहीं हुए' इस ईश्वरीय चमत्कार दरशानेवाले वाक्यका स्पष्टअर्थ यह है कि यहूदियोंके मेढ़ोंकी ऊन उनके कपड़ोंके लिए यथेष्ठ थी और इसी लिए उन्हें ४० वर्ष तक कपड़ोंकी तंगी नहीं भोगना पड़ी। ऐसे ही जोशुआके हुक्मसे दिन बढ़ गया था, इसका मतलब यह नहीं है कि सूर्य अथवा पृथ्वीके मार्गमें कुछ फेरफार हो गया था, बल्कि यह केवल एक वातावरणकी घटना है जो कभी कभी उत्तर-ध्रुवप्रान्तमें दिखाई देती है। ईसाको शूली पर चढ़ानेके समयका अंधकार भी केवल स्थानिक ही था। ईसाके पालने पर जो प्रकाश पड़ता था वह धूमकेतु या उल्काका होना चाहिए, क्योंकि ताराओंका प्रकाश किसी एक घरको लक्ष्य करके नहीं पड़ सकता है।

उक्त कौतुकमय पुस्तक लिखनेके पश्चात् वह कई कारणों-से रोमन सम्प्रदायमें मिल गया और इस कारण उसके विचार भी बदल गये। परन्तु उसने बाइबिलके अर्थ करनेकी जो शाखा स्थापित की थी वह आजतक जोरके साथ चल रही है। उसका विस्तारपूर्वक वर्णन लिखना इस ग्रंथका उद्देश्य नहीं है, यहाँ केवल इतना ही कहना है कि धर्मोंकी उत्पत्ति जाननेके लिए मनुष्य दो प्रकारकी प्राकृतिक कल्पनाओंको काममें लाते हैं और ये दोनों कल्पनायें विशिष्ट समय और विशिष्ट देशमें अत्यन्त लोकप्रिय हुई हैं। प्रथम कल्पनाका कर्त्ता यूहेमेरस है। वह कहता है कि मूर्त्तिपूजकों (रोमीय धर्म) के देवता पहले प्रसिद्ध राजा थे, उनके मरनेके पश्चात् उनके विषयमें लोगोंकी स्वाभाविक आदरबुद्धि या राज्य-कर्त्ताओंकी धूर्त्तताके कारण पीछे उन्हें देवत्व प्राप्त हुआ।

इस सम्प्रदायमें धूर्त्तता, नेत्रभ्रांति अथवा प्राकृतिक घटनाओंके विषयमें नासमझी उत्पन्न होनेके कारण या अन्य कई छोटे छोटे संयोगोंसे चमत्कारोंके माननेकी प्रथा प्रचलित हुई। दूसरी कल्पना पौराणिक हैं—यह कल्पना पिथागोरसके शिष्यों, नये मतवाले प्लेटोके अनुयायिओं और ज्ञानवादियोंने स्वीकार की थी। वह भिन्न भिन्न वैध सम्प्रदायके लोगोंमें फैली हुई धार्मिकवृत्ति या उदात्त नैतिकविचारोंकी मुख-स्वरूप गिनी जाती थी; अथवा दूसरे शब्दोंमें कहें तो यह कल्पना जिस जनसमाजमें उत्पन्न होती थी उसकी अभिलाषाओंको स्पष्ट और स्थूलरूप देनेवाली थी। इसी कारण इस शाखाके अनुयायी धर्मोत्पत्तिका सच्चा कारण प्रचलित मानसिक वातावरणमें खोजा करते थे। वे यह समझानेका ढोंग नहीं करते थे कि भिन्न भिन्न चमत्कारों पर लोगोंका विश्वास कैसे जमा, परन्तु वे कहते थे कि किसी विशिष्ट मानसिक स्थितिमें अद्भुत या चमत्कारिक कही जानेवाली घटनायें अवश्य हुआ करती हैं, और उन घटनाओंका साधारण स्वरूप प्रचलित मानसिक झुकावके अनुसार हुआ करता है। ऊपर कही हुई प्रथम कल्पना प्राचीन रोमन लोगों तथा १७वीं और १८वीं सदीके अङ्गरेज तथा फ्रेंच लोगोंमें अधिक फैली थी, और दूसरी कल्पना १९वीं सदीमें प्रचलित हुई थी—जिनके अनुयायी जर्मन लोग थे।

चमत्कारोंका प्राकृतिक रीतिसे स्पष्टीकरण करनेमें कई लोगोंने इससे भी अधिक उत्साह दिखलाया था, परन्तु वह उत्साह बहुधा खिस्तिधर्मको ध्वंस करने वाला था। वे लोग खुल्लम खुल्ला कहते थे कि हमारा हेतु स्वतंत्ररीतिसे प्राप्त किये हुए विचारों का बाइबिलके साथ येनकेन प्रकारसे सादृश्य

दिखलाना है । स्पिनोजा, लेसिंग और कान्ट इस शाखाके प्रवर्त्तक थे । लेसिंग जोर देकर कहता था कि बाइबिलके जो अंश विवेकबुद्धिके प्रतिकूल हों उन्हें कदापि नहीं मानना चाहिए । कान्टका मत इससे भी स्पष्ट था । वह कहता था कि प्रत्येक धर्मसंस्थाके स्थापित किये हुए मतको शुद्ध धर्मका द्वार या अवरण रूप समझना चाहिए । धर्मसंस्थाओंके स्थापित किये हुए मतों अर्थात् धार्मिक मान्यताओंका होना ज़रूरी है, क्योंकि अधिकांश मनुष्य केवल विशुद्ध नैतिकमतको ग्रहण नहीं कर सकते हैं—वे उसके केवल स्थूलरूपको ही ग्रहण कर सकते हैं । परन्तु शुद्धधर्मसे साम्प्रदायिक मान्यता कम दरजेकी होनेके कारण उसका अर्थ शुद्धधर्मके अनुरूप ही होना चाहिए अर्थात् यह मानना चाहिए कि धर्मशास्त्रके सब मतों और सब वचनोंका उद्देश्य कुछ न कुछ नीति उपदेश करना है ; और कोई भी अर्थ जो अपनी न्यायबुद्धिके विपरीति हो-फिर चाहे वह कैसा ही स्वाभाविक क्यों न दिखता हो—उसे हर्गिज़ नहीं मानना चाहिए ।

३—नीतिशास्त्रका विकाश ।

अब हम इस बातकी खोज करते हैं कि बुद्धिके विकाशसे नैतिकविकाश पर क्या प्रभाव पड़ता है । पहले हमको एक ऐसी शाखा मिलती है जो कहती है कि नीति ही सब धर्मोंका सारतत्व है, परन्तु वह उसमें प्रगतिके तत्वको स्वीकार नहीं करती है ; क्योंकि उसके मतसे नीतिशास्त्र बिलकुल अपरिवर्तनशील है । सत्यासत्य, योग्यायोग्य, और पाप पुण्यका अंतर सदैव सबको मालूम पड़ता है, इस विषयमें आज हमारे जो विचार हैं-वही आगे रहेंगे, उनमें उदारता आनेकी कोई संभावना नहीं है ।

परन्तु जो हम 'नीति' शब्दमें भले और बुरे कृत्योंके विवेकके उपरान्त उत्तमताके लक्ष्यका समावेश करें, तो हम कह सकते हैं कि बुद्धिका जैसा उत्कर्ष होता है वैसा ही नीतिका उत्कर्ष भी सदैव हुआ करता है और जनसमाजके ऊपर इस नैतिक प्रगतिका भी उतना ही महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है जैसा कि बौद्धिक प्रगतिका।

यह बात आप लोगोंको विदित ही है कि कई एक सद्गुण अन्य सद्गुणोंसे उच्चतर होते हैं और वे बहुधा पूर्ण सुधार होनेके पश्चात् ही प्रकट हुआ करते हैं। उदाहरणार्थ—सत्य पर प्रेम करना एक सद्गुण है, इस बातको सभी जमानेके लोग खुशीसे स्वीकार करते हैं, परन्तु जब हम इस बातकी खोज करते हैं कि उक्त सत्यप्रेम किस जमानेमें कहाँ तक व्यवहारमें लाया जाता था तब हमें उसमें बहुत भारी अंतर दिखाई देता है। प्राचीन समयमें इष्टमित्रोंके समस्त सद्गुण अन्तःकरणपूर्वक स्वीकार किये जाते थे, परन्तु जिस समय पक्षपात और साम्प्रदायिक आवेश ज़ोर पकड़ता था उस समय कोई मनुष्य यदि सत्यप्रेमके कारण अपनी पसंदगीका मार्ग पकड़नेमें उच्चतर सद्गुण दरशाता था तो उस समय कोई भी मनुष्य उसकी कीमत नहीं समझता था; यही नहीं उस समय इस प्रकार सद्गुण दरशाना एक तरहसे अशक्य ही था; हाँ, विचारोंकी पराकाष्ठापर पहुँचे हुए कुछ लोग अवश्य ही उसके उच्च सद्गुणको स्वीकार करते थे। इसी तरह साधारण लोग भी जब उक्त कुछ लोगोंकी मानसिक स्थितिपर पहुँच जाते हैं, तब वे भी उच्चतर सद्गुणोंके मूल्यको समझने लगते हैं। ऐसे ही बदलेकी आशा या दंडके भयसे सदाचरण पालन करनेकी अपेक्षा 'सद्गुणके लिये ही सद्गुणोंका आचरण करना' अधिक उत्तम है। परन्तु निष्काम सद्गुणका

खयाल बहुत सुधरी हुई प्रजाकी ऊँचीसे ऊँची श्रेणियोंमें ही दिखाई देता है और मानसिक सोपानकी जितनी सीढ़ियाँ नीचे उतरते जाते हैं त्यों त्यों बदला और दंडकी अधिकाधिक प्रवृत्ति दिखाई देती है।

इसी तरह पहिले भूतदयाका लक्ष्य भी परिवर्तनशील नहीं मालूम पड़ता है, परन्तु जब हम उसके उदाहरणोंकी ओर दृष्टि डालते हैं तब वह सदैव बदलने वाला सिद्ध होता है। साँढ़, रीछ, तीतुर अथवा कबूतरोंकी लड़ाई और इसी प्रकारके अगणित विनोदपूर्ण खेल एक समय यूरोपमें बहुत लोकप्रिय थे; खूब सुशिक्षित, सुसभ्य और अत्यन्त दयालु पुरुष भी इनमें भाग लिया करते थे। उस समय ये खेल बिना अपवादके-सर्वत्र वैध तथा जायज़ समझे जाते थे। बड़े बड़े प्रसिद्ध विद्वान और गुणी पुरुष भी इन विनोदपूर्ण खेलोंके द्वारा अपना जी बहलाना बुरा नहीं समझते थे। उस समय इन खेलोंको कोई जंगली या निर्दयी कहता तो उस समय उसका कथन अत्यन्त असम्बद्ध और मूर्खतापूर्ण समझा जाता। निस्सन्देह उस समय इस विषय पर कुछ चर्चा नहीं होती थी, परन्तु धीरे धीरे मानवी सुधारोंकी निःशब्द प्रेरणासे लोकमतमें बहुत भारी फेरफार हो गया। यह फेरफार ज्ञानकी बाढ़ अथवा वादविवादकी पद्धतिसे नहीं, किन्तु नैतिक ध्येयके क्रमशः उच्चतर होनेसे हुआ था। एक समय जो खेल सर्वत्र प्रचलित थे वे धीरे धीरे स्त्रियोंसे हटकर पुरुषोंमें, उच्च-वर्गसे निकल कर नीच वर्गमें और सज्जनोंसे तिरस्कृत होकर दुष्ट लोगोंमें दिखाई देने लगे, इस तरह क्रमशः उनका प्रचार घटता गया और अंतमें वे सरकारी कानूनके द्वारा बिलकुल बन्द कर दिये गये। इस समय जब इस तरहके खेलोंका होना कहीं सुना जाता है तब घृणासे लोगोंके शरीरमें

रोमांच हो आता है। जादू और डाकिनोंके दमन, दंडोंकी योजना, युद्धमें पकड़े हुए शत्रुओंके साथ व्यवहार और गुलामोंके इतिहाससे साफ़ जाना जाता है कि एक समय जो आचरण बिलकुल शुद्ध और स्वाभाविक समझे जाते थे वही दूसरे जमानेमें अत्यन्त निर्दय और क्रूर ठहराये गये। बुद्धिके उत्कर्षसे मनोवृत्तियोंकी एक खास तरहसे जागृति होने और उसके परिणामसे नैतिक विवेकशक्तिकी वृद्धिसे सभी विषयोंमें फेरफार हो गया; अतएव १५० वर्ष पहले इंग्लेण्डमें जो आचार प्रचलित थे वे इस समय यदि किसी देशमें प्रचलित देखे जायँ तो कहना होगा कि उस देशमें अभी पूर्ण सुधारोंका उदय नहीं हुआ है। प्रत्येक जमानेमें प्रतिष्ठाका लक्ष्य—जो पहले उस जमानेकी नीतिके ध्येयको दरशाता है और फिर उस पर असर डालता है, वह सदैव भिन्न भिन्न तरहका हुआ करता है। जंगली लड़ाकू लोगों और सुधरे हुए शान्त प्रकृतिके लोगोंमें सद्गुणका लक्ष्य बिलकुल जुदा जुदा हुआ करता है, अर्थात पहले लोग जिस चालचलनकी तारीफ़ करते हैं, दूसरे लोग उसीको निन्द्य समझते हैं। इस बातकी सत्यतामें कुछ भी सन्देह नहीं है कि मानवी सुधारोंकी प्रत्येक तहमें नीतिका आदर्श स्पष्ट रीतिसे अदला-बदला करता है।

परन्तु इस नियममें एक प्रसिद्ध अपवाद है, और वह नैतिक प्रतिभा है जो यदा कदा दिखाई देती है। जिस प्रकार कुछ बुद्धिमान पुरुष अपने समयकी बुद्धिविषयक परिस्थितिसे बहुत बढ़े चढ़े दिखाई देते हैं; उसी तरह कभी कभी ऐसे पुरुष भी प्रकट हुआ करते हैं जो अपने समयके नैतिक विचारोंमें बहुत आगे बढ़े हुए होते हैं। उनका नैतिकलक्ष्य तत्कालीन परिस्थितिसे बहुत उच्च श्रेणीका होता है और वे निस्पृह सत्कर्मों, विश्वप्रेम, भूतदया और स्वार्थ त्यागके विचारोंका

बीज चारों ओर बोते हैं। उनकी ये बातें उस समय ऐसी मालूम उनका उस समयकी हवासे कोई सम्बन्ध ही न हो। इसके पड़ती है जैसे मानो सिवा कर्तव्य और कार्य्यके उद्देश्यके विषयमें वे इतने उच्चतर उपदेश देते हैं कि जो अनेक मनुष्योंकी समझमें हवाई किलेके समान प्रतीत होते हैं। तथापि उनके महान गुणों और प्रखर प्रतिभाके कारण समकालीन पुरुषों पर उनका बहुत भारी प्रभाव पड़ता है, उनमें नवीन उत्साह जागरित होता है, अनुयायिओंका दल खड़ा होजाता है और परिणाममें अनेक मनुष्य अपने समयकी नैतिक परिस्थितिसे मुक्त हो जाते हैं। परन्तु इसका असर चिरस्थायी नहीं होता है, कुछ ही समयके उपरान्त पहलेका उत्साह नष्ट होने लगता है और आसपासके संयोगोंका बल बढ़ जाता है; शुद्धश्रद्धा स्थूलरूप धारण करने लगती है और उस पर प्रतिकूल विचारोंकी काई जम जाती है; फिर वह श्रद्धा स्थानभ्रष्ट हो जाती है—उसमें विकारोंकी माया बढ़ने लगती है और अंतमें उसका स्वरूप ही विकृत हो जाता है। जिस समय नैतिक उपदेश जमानेको रुचिकर नहीं होते उस समय अनुकूल सुधारोंके उदय होने तक ये प्रतिभाशाली पुरुष कार्य करनेमें असमर्थ ही रहते हैं, अथवा बहुत हुआ तो वे हठवादी मतोंकी थालीमें पवित्र नीतिशिक्षामृतकी कुछ बूंदे टपका कर अनुकूल परिस्थितके आगमनके वेगको कुछ अंशोंमें वृद्धिगत करते हैं।

उपरिलिखित विचारोंसे यह अनुमान करना कुछ कठिन नहीं है कि हठवादी-मतोंका नीतिके सिद्धान्तोंके साथ क्या सम्बन्ध है? अर्ध-जंगली अवस्थामें नीति अथवा सत्यका प्रकाश इतना क्षीण और अस्पष्ट होता है कि वह आचारमार्गको दिखलानेमें बिलकुल असमर्थ रहता है। इसी कारण हठवादी

सिद्धान्त आगे आते हैं और वे अपने अनुरूप तथा उस समय जायज़ समझे जानेवाले कामोंके करनेकी प्रेरणा करते हैं। परन्तु नैतिक तत्त्वज्ञान रूपी सूर्यका उदयहोने पर इन मतोंका प्रभाव घटने लगता है, ऐसी स्थितिमें धर्म, नीतिका अधार-स्थल भी नहीं रहता है और इस प्रकार उसकी सत्ता घट जाती है। ग्रीस और रोममें धर्मके इन दोनों भागोंमें इतना अन्तर पड़ गया था कि नीतिका उपदेश देना केवल तत्त्व-ज्ञानियोंका ही काम समझा जाता था और पुरोहितोंका काम प्रायश्चित्त कराना तथा भविष्य बतलाना था।

प्रत्येक धर्ममें कुछ दन्तकथायें या कई एक सिद्धान्त अपनी न्याय-बुद्धिके विपरीत भी रहा करते हैं। क्योंकि परमेश्वरके विषयमें अपने ऊँचेसे ऊँचे विचार नैतिक-उत्कर्ष-सम्बन्धी होनेके कारण मनुष्य अपने उत्तमताके ध्येयका समावेश अपने धार्मिक सिद्धान्तोंमें करने लगते हैं; परन्तु प्रारंभमें वह ध्येय बिलकुल अपूर्णावस्थामें रहनेके कारण उसके प्राथमिक सिद्धान्त भी वैसे ही हुआ करते हैं। ये सिद्धान्त एक पक्षीय होनेके कारण किसी समय समाजके नैतिकविकाशमें भारी विघ्न डालते हैं, परंतु अंतमें उनसे उत्पन्न होनेवाला विरोध इतना प्रबल हो जाता है कि वह इन सिद्धान्तोंको या तो तोड़ मरोड़ डालता है या धीरे धीरे उनका नाम ही शेष कर देता है।

ऊपर लिखे हुए नियम ईसाई-धर्मके परिवर्तनोंके साथ लगा-नेसे हमें तीन प्रकारका जुदा जुदा परिवर्त्तन दिखलाई देता है। प्रथम, अपनी नीति दृष्टिके विरुद्ध होनेवाले सिद्धान्तोंका धीरे धीरे लुप्त होना; दूसरे, अपने अन्तःकरणके विरुद्ध होने पर भी नैतिकसीमासे बिलकुल बाहर होनेके कारण अनेक विधियों और विचारात्मकसिद्धान्तोंका ह्रास होना, और तीसरे सदा-चरणके मुख्य कारण दंड-भयके बदले न्यायान्यायका भान होना।

इसमेंसे पहिले परिवर्त्तन या फेरफारका सम्बन्ध अगले प्रकरणके साथ होनेके कारण उस पर उसी प्रकरणमें विचार किया जायगा। दूसरा फेरफार इतना सुस्पष्ट है कि उसे विस्तारके साथ लिखनेकी ज़रूरत ही नहीं है। इतिहास-प्रेमी पाठकोंको मालूम होगा कि प्राचीन समयमें काल्पनिक सिद्धान्तों तथा विधियोंकी ओर कितना अधिक ध्यान दिया जाता था और अब कितना कम दिया जाता है। चौथी तथा पाँचवीं शताब्दीमें लोगोंका लक्ष्य विशेष करके ईसाके द्वैत स्वरूपकी ओर झुका हुआ था। इसी तरह मध्ययुगमें क्रियाओं तथा यात्राओंकी ओर, और धर्मक्रान्तिके समय सात संस्कारोंकी ओर ही लोगोंकी अधिक प्रवृत्ति दिखाई देती थी। वर्तमान समयके ऐहिक प्रवृत्तिवाले लोगोंकी समझमें ये बातें बिलकुल क्षुद्र और व्यर्थ मालूम पड़ती हैं, क्योंकि वे कहते हैं कि इन बातोंसे नीतिका कोई सम्बन्ध नहीं है।

परंतु तीसरा फेरफार बहुत ध्यान देने योग्य है, क्योंकि उसमें धार्मिक जुल्मके इतिहासका समावेश होता है। यूरोपकी मानसिक और नैतिक प्रगतिका अभ्यास करनेवाले सज्जनोंको यह इतिहास बहुत गम्भीर और अत्यन्त करुणारससे परिपूर्ण ज्ञात होगा।

आप लोग जानते ही हैं कि ईसाई आदिगुरु नरककी यातनाओंके विषयमें कैसे कैसे भयंकर उपदेश दिया करते थे और मध्ययुगके पुरोहितोंने उसे कैसा बढ़ाया था। परन्तु अब उस सिद्धान्तका माहात्म्य इतना अधिक घट गया है और वह इतने नरम स्वरूपमें समझाया जाने लगा है कि अब उसमें पिछली उग्रताकी गंध भी नहीं रही है। उस समय कैसे उपदेश दिये जाते थे, इसके उत्तरमें केवल इतना ही कहना बस है कि परमेश्वरने अपने पैदा किये हुए प्राणियों-

मेंसे अधिकांशके भाग्यमें 'नरक-यातना' लिखी थी। यदि उस नरकमें कोई असाधारण सुख नहीं होता तो भी गनीमत थी, परंतु वहाँ सुखका नाम ही नहीं था, और वहाँ बड़ी बड़ी दारुण यातनायें भोगना पड़ती थीं। मनुष्यको अग्निमें जलनेसे जैसा दारुण कष्ट होता है वैसा और किसी तरह नहीं होता है। आदि-गुरुओंके मतानुसार यह दुःख एक बहुत बड़े जन-समूहके लिए निर्माण किया गया था। इस सिद्धान्तका वाच्यार्थ अक्षरशः सत्य सिद्ध किया जाता था। इसके विरुद्ध-पक्षमें आरिगन और उसका शिष्य था। इन दो व्यक्तियोंके सिवा समस्त आदि-गुरु एक-मत थे। उस ज़माने-के धर्म पर इस सिद्धान्तका गहरा असर पड़ा था, परंतु उस समयका कलाशास्त्र इससे साफ़ बचा हुआ था। प्राचीन यहूदी-धर्ममें भी ये बातें बिलकुल नहीं थीं; अलबत्तह मूर्त्ति-पूजकोंकी पुरानी दन्तकथाओंमें नरकके विषयमें कुछ बातें आया करती थीं और पिथागोरसने उनमें कुछ वृद्धिकी थी। इसी तरह प्लेटोने भी पापोंकी सज़ा भोगनेका ख़याल अन्य समस्त तत्त्वचिन्तकोंकी अपेक्षा अधिक जागरित किया था। ईसाई-धर्मके उदयकालमें लोगोंके मन पर इन बातोंका कुछ असर नहीं था, परंतु ईसाई-धर्म्मने नरकको जैसा स्वरूप दिया था वैसा मूर्त्तिपूजकोंने कभी नहीं दिया। कारण कि उनके मतानुसार अपराधियोंके लिए केवल पारलौकिक यातनायें निर्माणकी गई थीं—वे भी बड़े बड़े भयंकर पाप करनेवाले अपराधियोंके लिए ही। परन्तु ईसाईधर्म्माचार्य्योंके कथनानुसार ईसाईधर्मवालोंके सिवा अन्य सब धर्मवालोंको—चाहे वे कैसे ही उदार और सदाचरणी क्यों न हों—नरकमें ऐसे दारुण कष्ट भोगना पड़ते थे कि जिनकी इस समय कल्पना करना भी कठिन है। धर्मक्रान्तिके पहले समस्त ईसाई-

धर्ममन्दिरोंमें यह सिद्धान्त सिखलाया जाता था कि धर्म-सम्बन्धी ना-समझी या प्रमाद एक भारीसे भारी अपराध है। फिर कुछ लोग यदि इस सिद्धान्तको शुभ-संदेशके तौर पर माननेके लिए तैयार नहीं हुए तो इसमें आश्चर्य्य करनेका कोई कारण नहीं है।

जब हम मध्ययुगकी ओर दृष्टि डालते हैं तब हमको नारकीय-अग्निका यह सिद्धान्त बड़ी तेजीके साथ फैला हुआ दिखाई देता है। दशवीं शताब्दीमें इस विषयमें अपना मतभेद प्रकट करनेवाला आयर्लैण्डका स्कोटस नामक एक पंडित था। इसकी अधिकांश आयु देशाटनमें व्यतीत हुई थी। अपने अलौकिक बुद्धिबल, विलक्षण-चातुर्य्य और ग्रीकभाषा तथा तत्त्वदर्शनके सम्यकज्ञानके कारण उसे अपार कीर्त्ति मिली थी। इस एक उत्तम अपवादके सिवा और सब देशों और सब वर्गोंके लोग इस सिद्धान्तको सत्य मानते थे। मध्ययुगके स्थूल विचारोंके साथ इस स्थूल सिद्धान्तका खूब जोड़ मिला था। बारहवीं शताब्दीके पश्चात् होनेवाले धार्मिक ज़ुल्मोंके कारण इसका विस्तार और भी अधिक हो गया। उस समय 'नरकके दुःख' यही एक धर्मका मुख्य विषय बन रहा था और लोग रात दिन इसी विषयका चिन्तवन किया करते थे; इस विषयका साक्षात्कार करनेके लिए यूरोपके तत्कालीन सभी विद्वान् प्रयत्नशील थे; साहित्य, चित्रकला और वक्तृताशक्ति—सभी इस भयङ्कर विषयकी ओर झुके हुए थे। अनेक समय संतोंको स्वप्नमें नास्तिकों या पापी-जनोंकी नरक-यातनाका दृश्य दिखाई देता था और वे लोग अपने देखे हुए दृश्योंका वर्णन अन्य लोगोंको सुनाते थे। वे उत्साहके साथ कहते—'हमें चिरकालिक अग्निज्वालाके मन्द प्रकाशमें करोड़ों मनुष्य नानाप्रकारकी यातनायें भोगते हुए दिखाई दिये हैं, वे लोग असहनीय दुःखके मारे छटपटाते,

नानाप्रकारके जखमोंकी पीड़ासे कराहते, और चीखें मार-मार कर करुणाहीन प्रभुसे दयाके लिए प्रार्थनायें करते हैं। इन यातना भोगनेवाले प्राणियोंके आसपास भयंकर दृश्य दिखलानेवाले भूत-प्रेतादि घूमा करते हैं और वे उनके दुःखों-की दिल्लगी उड़ाते हैं। ये लोग उन्हें खौलते हुए गंधकके कढ़ावमें डालते और उन्हें अधिकाधिक त्रास देनेके लिए नये नये उपाय खोजा करते हैं। इन सबके बीचमें एक गंधककी नदी बहती है जिसमें निरंतर खौलता हुआ गंधक बहा करता है। इसी नदीके कारण अग्निज्वाला सदा जीवित रहती और भड़का करती है। वहाँ जीवोंको क्षण भर भी विश्राम या शान्ति नहीं मिलती है, वरन उन्हें निरंतर एक समान दारुण दुःखाग्निमें जलना पड़ता है।'

इस विषयका अधिक विस्तार करना व्यर्थ है। तत्कालीन उपदेशों और आख्यानोंसे एकत्रित होनेवाली भयंकर कल्पनाओंका मर्म बतलाया जा चुका है; कैथोलिक आचार्य्य कैसी उमंगके साथ रातदिन मानवजाति पर होनेवाले अति जुल्मी कृत्यों और नई नई यातनाओंको खोज कर उन्हें ईश्वर-के सिर मढ़ा करते थे, इसका अनुमान कदाचित् आप कर सकेंगे, परन्तु लोगोंके मस्तिष्क पर इन विचारोंका कितना अधिक साक्षात्कार होता था—इनसे कितना अधिक दुःख और उन्माद उत्पन्न होता था—इसकी ठीक ठीक कल्पना करना कठिन है। कारण कि उस समय वर्तमान-कालके अनुसार बुद्धिभेदके कारण नहीं थे, इसी लिए सब लोग केवल धर्मकी ओर ही अपनी कल्पना-शक्तिको दौड़ाते थे। उस समय विवेक-शक्ति पंगु होनेके कारण कल्पना-शक्तिको उत्तेजित करनेके लिए सब तरहके उपाय काममें लाये जाते थे। भक्त लोग जहाँ जहाँ दृष्टि डालते वहीं वहीं उनको

यातना देनेकी नई नई रीतियाँ दृष्टिगोचर होती थीं। वे इन रीतियोंको इतनी सख्तीके साथ अमलमें लाते थे कि उनका भय लोगोंके मन पर सदैव बना रहता था। मनुष्योंसे कहा जाता था कि सर्वशक्तिमान् परमेश्वरने अपनी निरंकुश-सत्ताके बलसे असंख्य प्राणियोंको पैदा किया है, तथा उनके लिए दोज़खकी गहरी खाई निर्माण करके उसमें निरंतर चैतन्य रहनेवाली दुःखाग्नि प्रज्वलित कर दी है। यही नहीं, इस दुःखाग्निमें जीवात्माओंको अधिक समय तक डाले रखनेके लिए उसने उनको अखंड आयु भी प्रदानकी है। इन अभागी प्राणियोंके दुःखोंका चिन्तवन करके स्वर्गके प्राणी सुखी हुआ करते हैं। ऐसे सिद्धान्त और किसी भी धर्मके उपदेशकोंने प्रकट नहीं किये हैं। ये सिद्धान्त जब तक ज़ोरके साथ प्रचलित रहे तब तक नये धर्म्म नियम का शांत तथा नम्र लक्ष्य लोगोंके मन पर कुछ भी असर नहीं डाल सका। इस तरह ईश्वरकी भलाईका खयाल नष्ट हो जानेसे प्राकृतिक-धर्मकी इमारत गिर कर जमीनदोस्त हो गई और तभीसे धर्मका नैतिक-रूप मिट कर उसमें मतान्धता, भोलापन, वहम, जुल्म, देह-दमन, धमकी आदि बातें शामिल हो गईं। इस समयसे धर्मके मुख्य आधार या रक्षक केवल पादरी लोग रह गये और वे नानाप्रकारके त्रास तथा धमकियोंके द्वारा उसकी रक्षा करने लगे।

इस सिद्धान्तका एक बुरा प्रभाव बतलाना और बाकी रह गया है। यह बात सभी जानते हैं कि जब दूसरोंके दुःखोंका विना किसी लोभके सदा चिन्तवन किया जाता है तब उसके परिणामसे हृदयकी सद्वृत्तियाँ जड़ हो जाती हैं। यह नियम चीड़फाड़ करनेवाले डाक्टरोंको भी लागू होता है, क्योंकि वे दूसरोंके लाभके लिए दुःखका चिन्तवन किया करते हैं

पहले कार्यारम्भके समय उनके मनमें भयका संचार होता है, फिर उसकी जगह लापरवाही आती है, धीरे धीरे उस काममें उनकी रुचि बढ़ने लगती है और अंतमें चीड़फाड़ करनेमें उन्हें बहुत आनन्द मालूम पड़ने लगता है। संसारमें जितने भूतदयाके कार्य्य होते हैं वे सब हृदयकी इन्हीं सद्वृत्तियोंके द्वारा हुआ करते हैं। मध्ययुगमें दुःखोंके सतत चिन्तवनसे लोगोंकी सद्वृत्तियाँ बिलकुल कुम्हला गई थीं, इस लिए उस युगमें इसका क्या परिणाम हुआ होगा इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

विचारोंकी ऐसी स्थितिमें इस सिद्धान्तका सीधा और बलवान असर मानवजातिके दुःखोंकी तरफ न केवल लापरवाही पैदा करता था, बरन कभी कभी वह अमानुषी-क्रूर-कृत्योंके करनेके लिए भी लोगोंको उसकाता था। परन्तु यह उसके असरका अधूरा चित्र है; क्योंकि मनुष्य इन भयानक चित्रोंका विस्तारके साथ वर्णन करके ही नहीं रह जाते थे, बरन वे उसमें हर्ष भी मनाते थे। ईसाई लोगोंको विश्वास था कि अपने मानव-बन्धुओंका बहुत बड़ा भाग चिरकालिक-यातना भोगनेवाला है और इसी लिए वे 'ईसाईधर्म झूठा है' ऐसी भावना करना भी महा-भयंकर पाप समझते थे। सन्त आगस्टाइनके समान इन लोगोंको भी विश्वास था कि धर्म्म-का अंतिम हेतु आराध्य देवताका सारूप्य प्राप्त करना है; उस परमेश्वरका वर्णन करते समय वे यह भी कहा करते थे कि केवल मानवजातिके एक बहुत छोटे भाग (ख्रिस्ति-धर्म) पर प्रभुकी कृपा है, बाकी समस्त लोग उसकी अनकृपासे निरंतर दुःख भोग करते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जब ऐसे सिद्धान्तोंका अत्यन्त साक्षात्कार होता है तब जन समाजकी साधारण

दशामें रहनेवाली धर्मविषयक लापरवाही दूर हो जाती है; और इस कारण अपूर्व उत्साह, महान् स्वार्थत्याग और एक-विषयनिष्ठा उत्पन्न होती हैं। परन्तु ऐसा असर बहुत थोड़े उदार-हृदयों पर ही पड़ता है, शेष अधिकांश मनुष्योंकी चाल-चलन उससे निष्ठुर बन जाती है, जिससे दूसरोंके दुःखोंकी ओर कठोरता और निर्दयता उत्पन्न होती है और इसके परिणामसे मनुष्य-जाति महान् अधमताको प्राप्त होती है। यदि हम असंख्य मनुष्योंकी तीव्र वेदनाओंको लोगोंकी कल्पनाके सम्मुख रक्खें तो अवश्य ही उनके मनमें मनुष्योंके दुःखकी ओर धीरे धीरे लापरवाही उत्पन्न हो जायगी और उनमेंसे कुछ मनुष्य ऐसे भी निकल आवेंगे जिनको इन यातनाओंके विषयमें वास्तवमें आनन्द मालूम पड़ने लगेगा। इसके सिवा वे जिन आविर्भावोंको ईश्वरीय शुभ-संदेशके तौर पर मानते हैं, यातनाओंको भी उन्हींका एक अंश समझने लगते हैं। इस तरह वे अपने मनके दयालुताके भावोंको कुचल डालते हैं और निर्दयताको ही सद्गुण समझने लगते हैं। अंतमें उन्हें ऐसा मालूम पड़ने लगता है कि हमारे जीवनका परम लक्ष्य—परमेश्वर है, वह केवल एक ही धर्मके अनुयायिओंको चाहता है, तथा बाकी सब लोगोंको सदैव दुःख सागरमें डाले रखता है, और उस प्रभुकी प्यारी संतान (ईसाई लोग) उनके दुःखोंके विषयमें केवल आनंदसे चिन्तवन किया करती है। इस समझका परिणाम यह होता है कि वे लोग भिन्न धर्मवालोंके लिए नानाप्रकारके कष्ट और संताप पहुँचानेका मार्ग तैयार करने लगते हैं। जिन लोगोंके मस्तिष्कमें ये सिद्धान्त घूमा करते हैं वे या तो इन विचारोंसे बहुत दुःखी होते हैं या वे बहुत ही निष्ठुर बन जाते हैं। जिसे मानव-स्वभावका किञ्चित् ज्ञान होगा उसे यह समझने-

में देरी नहीं लगेगी कि संत जेवियरके वचनोंकी अपेक्षा टार्कोमेंडाकी वाणी बहुत साधारण है और दुनियाँमें उसीके अधिक उदाहरण पाये जाते हैं।

जो लोग ईसाई-धर्मके इतिहासकी ओर समझ बूझ कर आँख मीच कर नहीं देखते, उन्हें मालूम हो जाता है कि उपरि-लिखित सिद्धान्तका क्या परिणाम हुआ है। दूसरी शताब्दीके एक लेखकने इस सिद्धान्तका खास उपयोग लोगों-को धमकी देनेके साधनके तौर पर किया है। उसके समयमें ईसाइयोंको सार्वजनिक तमाशे देखनेका बड़ा शौक था, इस लिए उसने सोचा कि उनको इन तमाशोंसे विरत करनेके लिए एक दूसरी तरहका विरुद्ध तमाशा खड़ा करना चाहिए-यह तमाशा अपने ज्ञाति-भाइयोंकी नरकयातना दिखलाना है। वह लिखता है—"मैं आप लोगोंसे इस तमाशेकी महिमा क्या कहूँ? किस तरह हसूँ और कैसे आनंद मनाऊँ? जब मैं देखता हूँ कि सुप्रसिद्ध और स्वर्गमें गये हुए कहलाने वाले अगणित राजा अपने देवता जुपिटरके साथ नरकके घोर अंधकारमें पड़े हुए तलफ रहे हैं, तब मैं अपने धर्मकी सफलता कैसे दरशा सकता हूँ। इस तमाशेके मुकाबलेमें राजालोग पृथ्वी पर जो तमाशा कराते हैं--वह किस गिनतीका है? यदि तुम्हारे हृदयमें श्रद्धा है तो तुम इस तमाशेको जब चाहो तभी अपनी कल्पनामें देख सकते हो।" किसी तरहके साक्षात्कार या आत्मविश्वासका मनोवृत्तियों पर कैसा प्रभाव पड़ता है, यह बात ऊपर लिखे हुए दृष्टान्तसे जानी जाती है। यूरोपके मानस-शास्त्रका इतिहास पढ़ते समय हमें सदैव एक बड़ा विरोधाभास दिखाई देता है। इस बातको सब पक्षके लोग स्वीकार करते हैं कि ईसाईधर्मकी योजना भूतदया—विश्वप्रेम फैलानेकी गरजसे की गई थी और उसके साँचे अनुयायिओं-

की कसोटी 'प्रेम' ही है ; तो भी अनेक शताब्दियों तक उसके धर्म्माचार्य्योंने अपनेसे भिन्न मत-वालोंके साथ जैसी कठोरता और निर्दयताका व्यवहार किया वह सारी दुनियाँके इतिहासमें अद्वितीय है । जुलियन कहता था कि कुपित आचार्य्य जंगली हिंस्र-पशुओंकी अपेक्षा अधिक भयंकर थे। आल्बीजेन्सिस और बार्था-बार्थोलोम्यस (विरोधी लोगों) की भीषणहत्या पर आभारके गीत गानेवाले यही आचार्य्य थे। क्रूश-युद्धों और धर्म-युद्धोंकी अग्नि प्रज्वलित करके उनमें घी होमनेवाले, और उनके द्वारा होनेवाले रक्तपात पर आनंद मनानेवाले भी यही थे। वीरोंका आवेश कम हो जाने पर उन्हें उत्तेजित करनेके लिए 'अब धर्मकी अवनतिका समय आ गया' ऐसा कह कर विलाप करनेवाले और अपने दिये हुए दूसरोंके दुःखोंकी ओर निर्दय-संतोषके साथ देखनेवाले भी ये धर्म्माचार्य्य ही थे। इसके सिवा जिन धार्मिक जुल्मोंके कारण यूरोपका प्रत्येक प्रान्त यहूदियों और नास्तिकोंके रक्तसे कलंकित हुआ था और जो कृत्य मानवी इतिहासमें अत्यन्त निर्दय और समझबूझकर की हुई क्रूरताओंको दरशाते हैं—उन सबके कर्त्ता या प्रवर्तक भी ये आचार्य्य लोग ही थे।

इस तरह जब अपनी निःसंशय कर्त्तव्य-बुद्धिके अनुसार बर्ताव करनेवाले लोगोंमें सदैव ऐसी प्रवृत्ति दिखलाई देने लगे तब समझना चाहिए कि इसका कारण या तो एकाध धार्मिक सिद्धान्त होगा या उनके आसपासकी नैतिक हवा दूषित हो गई होगी। पारलौकिक-यातनाकी कल्पनाओंका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि जिन लोगोंका जीवन एक तरफसे सद्गुणोंका आदर्श स्वरूप था, वही दूसरी ओरसे बहुत समय तक बर्बरताका आदर्श भी बना रहा और अपनेसे भिन्न मत-वालोंके दुःखोंकी ओर लापरवाही दरशाता रहा। इय

नहीं समझना चाहिए कि यह क्रूरता केवल नास्तिकोंके लिए ही दरशाई जाती थी, बरन उस समय दी जानेवाली तमाम सजाओंकी धारामें उसका प्रतिबिम्ब दिखाई देता था। अपराधियोंको देह-कष्ट देनेके इतिहासका पता लगानेसे यह बात खूब स्पष्ट हो जाती है। प्राचीन ग्रीसमें राजविद्रोहके सिवा अन्य किसी अपराधके लिए देह-कष्ट देनेका नियम नहीं था। रोमकी उन्नतिके समय वहाँके निवासी निर्दयताके लिए बहुत प्रसिद्ध थे, तथापि उस समय वहाँ पर भी देह-कष्टकी योजना केवल गुलामोंके लिए ही की जाती थी, परन्तु मध्य-युगके ईसाइयोंमें इस सजाका बेहद उपयोग होता था, और जो मुकद्दमें ईसाई पादरियोंके हाथमें जाँचके लिए आते थे वे उन सबमें अपराधियोंको देह-कष्टकी सजा दिया करते थे। मध्ययुगमें दी जानेवाली देह-कष्टकी सजा पर विचार करते समय हमारा ध्यान जितना उसकी क्रूरताओंकी ओर नहीं जाता है, जितना कि उसके विविध प्रकारों और उसके व्यव-हारमें लानेके कौशलकी ओर जाता है। मार्सिलियस गर्वसे फूल कर कहता था कि मैंने देहकष्ट देनेका ऐसा यंत्र बनाया है कि जिसके कारण कैदी क्षण भर भी निद्रा नहीं ले सकता है। प्रत्येक कैदखानेमें क्रूश और यातनायंत्र रक्खे जाते थे। अंतमें प्रत्येक देशमें इन यातनाओंका प्रतिबन्ध उन लोगोंने ही किया जो धर्म्म-संस्थाओंकी ओरसे शापित किये गये थे। यह सच है कि इंग्लेण्डमें देह-कष्ट देना पहलेसे गैर-कानूनी समझा जाता था, तथापि धर्म-सम्बन्धी मुकद्दमोंमें वह बारम्बार उपयोगमें लाया जाता था; बाकी समस्त देशोंकी स्थिति ऊपर लिखे अनुसार ही थी। फ्रान्समें पहले पहल देह-कष्ट देनेका विरोध सबसे पहिले फ्रेन्च नास्तिक मान्टेनने किया था। पीछे तुरंत ही केरन और बेल भी उससे मिल

गये। इसके पश्चात् वाल्टर, मान्टेस्कू और विश्वकोष सम्पादकने भी इनके पक्षका समर्थन किया और जब अंतमें राजक्रान्तिके कारण धर्म्मसंस्था छिन्न भिन्न हो गई, तब इस कार्य्यमें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। स्पेनमें जब धर्म्मसंस्थाके साथ सरकारकी तकरार हुई तब देशमें देह-कष्ट देनेका कानून रद कर दिया गया। इटलीमें देह-कष्ट-सम्बन्धी कानूनका भारी शत्रु बेकेरिया था,—वह रूसोके सिद्धान्तोंका प्रतिपादक था। उसकी पुस्तकका भाषान्तर मोलरेटने किया, वाल्टर और दिद्रोने उसकी टीका लिखी और समस्त फ्रेन्च तत्त्वज्ञोंने उसका अनुमोदन किया; इससे सारे यूरोपमें उसका भारी प्रचार हो गया और जिस प्रवृत्तिको उसने जन्म दिया था उसको आगे बढ़ानेमें वह (पुस्तक) बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। इस आन्दोलनके कारण रशियाकी महारानीने अपने देशमें देह-कष्ट देना बंद कर दिया और उसके साथ ही साथ सहिष्णुता-सम्बन्धी आज्ञा-प्रचारितकी। प्रशियाके बादशाह फ्रेडरिककी रुचि तत्त्वज्ञानके सिद्धान्तोंकी ओर होनेके कारण उसने भी यही किया। इसी प्रकार टस्कनीके ड्यूक लियोपोल्डने भी इनका अनुकरण करके देह-कष्ट देना बंद कर दिया। विचार-पूर्वक देखनेसे जाना जाता है कि इन सब बातोंके होनेमें कुछ भी आश्चर्य्य या नवीनता नहीं थी। जिस प्रवृत्तिके कारण देह-कष्टका विरोध किया गया था वह बुद्धिकी नहीं—हृदयकी प्रवृत्ति थी; अर्थात् इस आन्दोलनसे तार्किक दलीलोंकी शोध या विवेक-शीलताकी वृद्धिकी अपेक्षा अनुकम्पा या सहानुभूतिकी वृद्धि अधिक हुई थी। इस प्रकार सुधारोंकी प्रगतिसे मनुष्योंमें सहानुभूतिकी प्रवृत्ति बढ़ गई, दूसरेके दुःखोंका भान होने लगा, विवेक-शक्ति प्रौढ़ हो गई और उनके कार्य्योंमें अधिक उदारता तथा

नम्रता आ गई.—देह-कष्ट बंद होनेका यही कारण था। इस लिए अब वास्तविक अपराधियोंको भी यातना-यंत्रमें डाल कर पीड़ित करना अत्यन्त क्रूर और अमानुषी-कार्य्य समझा जाने लगा—इसी लिए वे यातनायंत्र तोड़ डाले गये। जिस महान् प्रवृत्तिके परिणामसे निर्दय खेल बंद हो गये, सर्वत्र कठोरता-के बदले मृदुता दिखाई देने लगी और सब श्रेणीके लोगोंके रीति-रिवाजोंमें सुधारोंकी धूम मच गई, उसी प्रवृत्तिका यह एक अंश था कि जिसने उक्त देह-कष्ट-रूपी विशाल पापतरु-को जड़से उखाड़ डाला। अब यहाँ पर केवल यह कहना शेष रह गया है कि जिस मानसिक प्रवृत्तिके कारण लोगोंने देह-कष्ट-सम्बन्धी कानून पर हमला किया था उसी प्रवृत्तिके कारण उन्होंने पारलौकिक यातना-सम्बन्धी सिद्धान्त पर भी हमला किया। ये दोनों बातें एक ही प्रकारकी सामाजिक स्थितिसे उत्पन्न हुई थीं, दोनों एक ही साथ एकसे कारणोंसे बढ़ीं और दोनों एक ही साथ नष्ट भी हुईं। कारण कि प्रत्येक जमानेमें अपराधोंकी महत्त्व-सम्बन्धी गणनाके अनुसार दंड-विधानकी धारायें बदलती रहती हैं। क्योंकि यदि ऐसा न हो तो अधिक समय तक उनको अमलमें लाना कठिन हो जाय। १८वीं सदीके अन्तिम भागमें खून करने और घोड़ा चुरानेवाले—दोनों किस्मके अपराधियोंको फाँसी देनेका विधान था। खूनके मामलोंमें पंच लोग तुरंत ही अपना निर्णय सुना दिया करते थे और लोगोंको उनका यह निर्णय मान्य भी होता था; परंतु घोड़ा चुरानेके अपराधमें अपराधी-गण प्रायः छोड़ दिये जाते थे और कदाचित् कोई अपराधी उक्त अपराधके कारण फाँसी पर चढ़ा दिया जाता था तो इससे जनतामें अत्यन्त क्षोभ और असंतोष फैलता था। इसका कारण यह है कि खूनके अपराधके लिए फाँसीकी

सजा अधिक प्रतीत नहीं होती थी, परंतु चोरीके लिए वह बहुत सख्त थी। सुधारोंकी प्रगतिसे सजाकी सख्ती सदैव कम हुआ करती है, क्योंकि इस दशामें दूसरों पर डाले जानेवाले दुःखोंकी तीव्रता लोगोंकी समझमें आने लगती है। इसी प्रकार अपराधोंकी गंभीरता भी समयानुसार न्यूनाधिक हुआ करती है। पारलौकिक यातनाओंके विषयमें मध्ययुग, सोलहवीं सदी और सत्रहवीं सदीके अधिक भागमें दिये जानेवाले लौकिक उपदेशोंका स्वाभाविक परिणाम क्या हुआ, यह ऊपर दिखलाया जा चुका है। प्राचीन धर्म्मश्रद्धा भी इस समय दूर हो गई थी। चिरकालिक अग्नि और अनंत यातनाओंके भयंकर चित्रोंकी जगह लोगोंके मन पर अब केवल नरक विषयक कुछ अस्पष्ट बातें ही शेष रह गई थीं। इस तरह बड़ी बड़ी नैतिक कठिनाइयोंवाले सिद्धान्तोंकी जगह अब स्वाभाविक-रीतिसे नैतिक समझसे उत्पन्न होनेवाले और प्रत्येक सच्चे नीति-विशिष्ट धर्म्मके मूलतत्त्व-स्वरूप सिद्धान्तोंका शान्ति-पूर्वक प्रचार हो गया।

लोकमतके इस धीमे और शान्त परिवर्तनका मुख्य कारण साम्प्रदायिक उपदेशोंको एक ओर ताकमें रख कर अपनी विवेक-बुद्धिके अनुसार बौद्धिक और नैतिक सत्योंके खोजनेकी प्रवृत्ति है। डेकार्ड्स जिसे नीतिशास्त्रका मुख्य उद्धारक कह सकते हैं इस प्रवृत्तिका मूल प्रवर्त्तक था; क्योंकि उसने सत्यान्वेषणकी जो पद्धति निकाली थी वह शीघ्र ही (जाने या अनजानेमें) नैतिक विषयोंके लिए भी लागू हो गई। इस कारण सत्यासत्यका अन्वेषण करते समय लोग धर्म्माचार्योंकी पुस्तकोंके बदले अपनी समझसे काम लेने लगे। इसके सिवा लौकिक विषयोंके उत्कर्षसे नित्यप्रति होनेवाले नये नये

शोधोंके कारण धर्म्माचार्य्य भी वर्तमान समयके दबावमें आ गये।

इसके सिवा एक और छोटी प्रवृत्तिके प्रचारका यश भी डेकार्डसको प्राप्त है। वह प्रवृत्ति आत्माके शुद्ध चैतन्य-स्वरूपके विषयमें थी। प्राचीन लोगों और उनमें भी विशेष करके अध्यात्मवादी संस्थाओंका मत था कि आत्मा अतींद्रिय, सूक्ष्मप्रवाही अथवा शरीरसे बिलकुल भिन्न पदार्थसे बनी हुई है। ऐसा ही साधारण मत था और डेकार्डस तथा उसके पश्चात् बहुत वर्षों तक प्रचलित रहनेवाले विचारोंके अनुसार भी उक्त तत्त्वकी अत्यन्त सूक्ष्मता चैतन्य-रूप गिनी जाती थी; कारण कि आत्माका स्वरूप आसपासकी वस्तुओंसे बिलकुल जुदा, निरवयव, अविच्छेद्य और स्थूल-वस्तुओंके नियमोंसे परे है। कई एक प्लेटोमतवादी भी 'आत्माका स्वरूप शुद्ध विचारात्मक है' इस आधुनिक खयालके समीप पहुँच गये थे। परन्तु साधारण-मत ऊपर कहे अनुसार ही था। प्राचीन लोग आत्माके अमरत्वका प्रमाण उसके स्वरूपकी भिन्नता तथा चैतन्यता बतलाते थे। जो मनो-व्यापार केवल जड़-धर्म्म हो और विचार-शक्ति केवल मस्तिष्कका स्थूल परिणाम हो तो शरीर-पातके पश्चात् व्यक्तित्वका नाश हो जाना चाहिए। परन्तु मनुष्य-हृदयमें भावी-जीवनके विषयमें ऐसी एक स्वाभाविक प्रेरणा हुआ करती है कि मरनेके पश्चात् हमें एक ऐसी जगह जाना है जहाँ इस जन्ममें किये हुए समस्त अन्यायोंका बदला भोगना पड़ता है और जहाँ मृत्युकी तोड़ी हुई प्रेम-शृङ्खला फिर जुड़ जाती है। यह प्रेरणा हमारी नैतिक-प्रकृतिके साथ ऐसी मिल गई है कि जड़वादके बारंबार प्रबल धक्के लगने पर भी वह उससे पृथक् नहीं होती है। मनुष्य-देहसे बिलकुल भिन्न, परन्तु उससे संलग्न और

अविच्छेद्य कोई तत्त्व है, इस विषय पर साक्रेतीसने अपने जीवनकी अन्तिम घड़ीमें और सिसरोने बृद्धावस्थामें विवेचन किया था। इसी भेदके आधार पर प्लेटोवादके समस्त सिद्धान्त रचे गये थे। उसकी अलंकारिक-भाषामें—मनुष्य जड़मय जगत्से चिन्मय-जगत्की भेंट करानेवाली क्षितिजरेखा है। आत्माका उन्नत बन कर देवत्व प्राप्त करना या देहके वशमें होकर उसके दबावसे पशुभाव पाना—दोनों बातें मनुष्यके अधीन हैं। एक स्थितिको त्याग कर दूसरी स्थितिमें जाना ही आत्माकी नियति है। उसका समग्र ज्ञानस्मृतिरूप है, और उसकी भावी-स्थितिका अनुमान उसकी वर्तमान प्रवृत्ति परसे बाँधा जाता है। जो मनुष्य केवल सद्गुणोंकी ओर प्रीति रखता है और सांसारिक विषयोंको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखता है, वह अंतमें प्रकृतिके बंधनसे मुक्त हो जाता है और अदृश्य तथा स्वतंत्र दशामें ज्ञानके परिपाकके द्वारा परमानन्दको प्राप्त होता है; और जो मनुष्य निरंतर दैहिक सुख भोगमें तत्पर रहता है वह मृत्युके पश्चात् नवीन शरीर पाकर दैहिक दुःखोंके द्वारा शासित होता है या वह मनुष्य-दृष्टिसे दिखाई देनेवाले प्रेतरूपको पाकर जीवित मनुष्योंके आनन्दमें बाधा पहुंचाता है।

प्राचीन तत्त्ववेत्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ आत्मवादी प्लेटो-पंथियों-का मत ऊपर लिखे अनुसार था। ईसाई-धर्म्मका प्रारंभिक झुकाव भी इन्हीं विचारोंकी ओर था, परंतु उसके दो सिद्धान्त उल्टा असर पैदा करनेवाले थे। मूर्त्तिपूजक आत्माको निरा-कार कहते थे क्योंकि उनको विश्वास था कि शरीर नितान्त नाशवान् है। परंतु कुछ ईसाई इस दूसरी बातको स्वीकार नहीं करते थे। अग्निदाहकी यातनाके विषयमें दृढ़ आस्था और उक्त सिद्धान्तके महत्वकी वृद्धिसे जड़वादको प्रश्रय

मिलता था । इस विषयमें प्रारंभ-गुरुओंमें मत-भेद था । उनमेंसे कुछ तो कहते थे कि मनुष्यमें निराकार आत्मा अवश्य है, परंतु उसका कोमल, तरल, शीघ्रग्राही और चर्मचक्षुगोचर शरीर होना आवश्यकीय है । इसमें आरिगनका मत था कि जड़-सम्बन्ध-रहित केवल परम-चैतन्य-स्वरूप परमेश्वर ही हो सकता है—अन्य नहीं । दूसरी संस्थामें टरट्यूलियन मुख्य था । इसके अनुयायी कहते थे कि मनुष्यमें शुद्ध चैतन्यमय तत्त्व हो ही नहीं सकता है, और आत्मा केवल मनुष्यका दूसरा शरीर है । यह मत ईसाई-धर्म्ममें वर्णित नारकीय-यातनाओंके सिद्धान्तके आधार पर प्रतिष्ठित हुआ था । यह सिद्धान्त ऐसा प्रबल था कि उसने सर्वसाधारणकी कल्पनाको बेतरह जकड़ रक्खा था ; प्रत्येक धर्ममंदिरमें ऐसे बहुसंख्यक चित्र बने रहते थे कि जिनमें मृत आत्माओंके धधकती हुई अग्निमें भयंकर रीतिसे तड़फनेके दृश्य दरशाये जाते थे । इन दोनों सिद्धान्तोंमें बहुत समानता थी और दोनों एक दूसरेके सहायक थे । जो लोग आत्माको स्थूल मानते थे वे यातनाओं-को भी स्थूल माननेके लिए तैयार थे । परन्तु धर्म्मक्रान्तिके पहले कितने ही लोगोंके मनमें आत्मा-सम्बन्धी विचारोंका शुद्ध निर्णय प्राप्त करनेकी उत्कट इच्छा मालूम पड़ती थी । अवे-रोजकी संस्थाके सर्वेश्वर-वाद सम्बन्धी (विराट्मतधारी) ग्रन्थों से जड़ और चेतन सृष्टिके बीच क्या सम्बन्ध है ? इस प्रश्नकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ । जो सर्वव्यापक आत्मा पत्थरमें सुषुप्त अवस्थामें है, पशु-पक्षी आदि जीवधारियोंमें अर्धनिद्रित अवस्थामें है और मनुष्यमें जाग्रत अवस्थामें है ; जो गूढ़ जीवन-तत्त्व विविध आकृतियोंको निर्माण करता है वह उन सबमें व्याप्त रहनेवाले ईश्वरीय-तत्त्वका स्फुरण-मात्र है ।—यह विश्वास जिसका कि प्राचीन तत्त्वज्ञानमें बहुत

ऊँचा आसन था, फिर पुनरुज्जीवित हुआ, जिससे सब ेणीके धर्म-विवेचकों पर नया असर पड़ा। इसके परिणाम-से यह चर्चा होने लगी कि जड़-वस्तुओंमें चैतन्यका प्रवेश कैसे हुआ? इस प्रश्नके उत्तरमें यदृच्छोद्भव सिद्धान्तका नाम ज़ोरके साथ लिया जाने लगा। इस सिद्धान्तके आधार पर ल्युक्रेशियसने अपनी तत्त्वविवेचन पद्धतिका बहुत बड़ा भाग तैयार किया और अठारहवीं शताब्दीके अधिकांश तत्त्वचिन्तकोंने उसके आगे अपना सिर नवाया। इसी सिद्धान्तके सहारे जीवोत्पत्ति जैसे गहन विषय पर इतना अधिक मिथ्या पाण्डित्य दरशाया जाता था कि जिसे पढ़कर हंसी आये बिना नहीं रह सकती है; जीवोत्पत्तिके प्रश्न परसे स्वभावतः जीवनके स्वरूपके विषयमें भी चर्चा उठी। इस प्रश्नका निराकरण करनेके लिए प्राचीन लेखकोंकी मददसे उसकी शोध सच्चे दिलके साथ होने लगी और इसके फलसे भिन्न भिन्न मत-वाले जिस निर्णय पर पहुँचे उसका प्रभाव उनके धर्म्म-सम्बन्धी विचारों पर बहुत गहरा पड़ा। अंतमें जब डेकार्ड्सने ज़ाहिर किया कि आत्माका मुख्यतत्त्व विचार है, और विचार करनेवाला तत्त्वदेहसे इतना अधिक पृथक् है कि उसके स्वरूपकी यत्किञ्चित् कल्पना भी जड़-प्रकृतिके किसी स्वरूप अथवा गुण-धर्म्मसे नहीं की जा सकती है—तब उससे ऐसी मानसिक प्रवृत्ति उत्पन्न हुई कि जिससे भूत-प्रेत, दिखाई देनेवाले राक्षस और (स्वर्ग-प्रवेशके लिए) अग्निशुद्धि इत्यादि बातों परसे लोगोंका बिलकुल विश्वास उठ गया। इस प्रकार डेकार्ड्सके सिद्धान्तसे भीतरी शरीर या लिंगदेह-सम्बन्धी प्राचीन कल्पना सदैवके लिए बिदा हो गई, और उसी समयसे नरकाग्निका सिद्धान्त भी क्षीण होने लगा। १७वीं तथा १८वीं सदीके नास्तिक लोग इस सिद्धान्तकी ओर

बहुत घृणाकी दृष्टिसे देखा करते थे। १८वीं सदीके अंतमें यह सिद्धान्त बिलकुल लुप्त हो गया और साधारण लोक-शिक्षासे भी वह निकल गया।

इस उद्वेगजनक सिद्धान्तके विषयमें इतना अधिक विस्तार करनेका कारण यह है कि उसने भूतकालकी विचार-सारणी और आचरणों पर बहुत गहरा प्रभाव डाला था। इस सिद्धान्तके अवश्यम्भावी परिणामने सदयता और सहानुभूतिके भावोंकी कैसी निर्दयताके साथ हत्याकी, दूसरोंको दुःख देनेके लिए लोगोंको कैसा उत्तेजित किया और मानवी-सुधारोंके प्रवाहमें कैसी भारी अड़चनें डालीं, यह दिखलानेका इस लेखमें प्रयास किया गया है। साम्प्रत ये सिद्धान्त बिलकुल लुप्त हो चुके हैं। प्राचीन समयके क्रोधी, निर्दय धर्मनिरक्षकों तथा भीषण-यातनाओंकी निरंतर खोज करनेवाले, इस विषय पर बड़े बड़े ग्रन्थ लिखनेवाले, महाभयंकर युद्धोंको खड़ा करनेवाले और देश देशमें निर्दोष मनुष्योंके रक्तकी नदियाँ बहानेवाले प्राचीन धर्म्माचार्य्योंके बदले अब स्त्री-सुलभ कोमल मनोवृत्ति और दंड देनेमें खेद-युक्त अप्रसन्नता प्रकट करनेवाले धर्म्माचार्य्य दिखाई देने लगे। इस समय ईसाई धर्मका मुख्य लक्षण निःसीम औदार्य्य है। मध्ययुगमें तपोवृत्ति और १६वीं तथा १७वीं सदीमें धार्मिक वाद-विवादोंका जो महत्त्व था, वही आज भूत-दशाका है।

इस प्रवृत्तिके कारण दंडोंका स्वरूप बहुत सौम्य हो गया। इस विषयमें सबसे पहले पैर बढ़ानेवाला हावर्ड था। समस्त दुनियाँके इतिहासमें उसके समान निष्कलंक और सफल परोपकारका दूसरा दृष्टान्त मिलना कठिन है। उसने दया और परोपकारके कामोंके लिए चालीस हज़ार मीलका प्रवास किया था और अंतमें इसी पवित्र कार्य्यको करते करते उसने

विदेश हीमें अपनी जीवन-लीला समाप्तकी थी। उसके श्रमसे केवल इंग्लेण्डमें ही नहीं, वरन समस्त यूरोप भरमें जेलखानों-की स्थितिकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ था, जिसके परिणामसे उनके नियमों और दंडोंमें बहुत भारी हेरफेर हुआ। इसी कारण शीघ्र ही दंड-नियमोंमें बहुत कोमलता आ गई और न्यायाधीश लोग इस कार्यमें बहुत उदारतासे काम लेने लगे। पहले इंग्लेण्डमें बहुत सख्ती हुआ करती थी, वहाँ यूरोपके अन्य देशोंकी अपेक्षा लूटमार और डाँके अधिक पड़ा करते थे और इसी कारण वहाँ अन्य देशोंकी अपेक्षा फाँसीकी सजा भी बहुत अधिक संख्यामें दी जाती थी। छट्ठे हेनरीके समयका एक फार्टस्कू नामक मुख्य न्यायाधीश अपने देशके लोगोंकी बहादुरीके विषयमें बड़ाई करता हुआ कहता है—"फ्रान्समें सात वर्षोंमें जितने लोगोंको फाँसीकी सजा दी जाती है, इङ्गलेण्डमें एक वर्षमें ही उससे अधिक लोग फाँसी पर लटकाये जाते हैं, इसका कारण यह है कि इंग्लेण्डके लोग बहुत कड़ी छातीके हैं। स्काच लोगोंमें लूटमार करने या डाँका डालनेका साहस नहीं है, वे केवल घर फोड़ कर या अन्य रीतिसे साधारण चोरी करना ही जानते हैं।" आठवें हेनरीके राजत्वकालमें इंग्लेण्डमें धर्म्ममंदिरोंके नष्ट किये जाने पर उनके आश्रित रहनेवाले लाखों गरीबोंकी जीविकाका साधन बन्द हो गया और इस कारण वे लोग लूटमारका धंदा करने लगे। उस समय इस लूटमारके अपराधमें कितने मनुष्योंको देहान्त दण्ड दिया गया था इसका अनुमान होलिंगशेड नामक एक लेखकने किया है। वह लिखता है कि ३५ वर्षके भीतर ७२ हज़ार मनुष्य फाँसी पर लटकाये गये थे! अर्थात् प्रतिवर्ष प्रायः २,००० की औसत पड़ी। हेलिंगशेडने शायद इस अनु-मानमें अतिशयोक्तिसे काम लिया हो, परंतु एलिजवेथके

राजत्त्व-कालमें जब कि गरीबों और अनाथोंकी रक्षाके लिए कानून बन गया था, प्रतिवर्ष ४०० मनुष्य फाँसी पर लटकाये जा ते थे इसके कुछ समय पहले थामसमोरके प्रतिपादित प्रमाणों और क्रेमबेलके एक भाषणके आधार पर धर्माध्यक्ष वार्कलीने देहान्त-दंडके वदले अन्य दंड देनेके विषयमें अपना मत प्रकट किया था। परन्तु तीसरे जार्जके समयमें दण्ड देनेमें फिर सख्तीसे काम लिया जाने लगा और यह सख्ती आगे यहाँ तक बढ़ी कि रोमिलीके समयमें प्रतिवर्ष मृत्युदण्ड पानेवालोंकी संख्या २३० से कम नहीं होती थी। परन्तु १८वीं सदीके अंत और १९वीं सदीके प्रारंभमें यह स्थिति बदल गई। इंग्लेण्ड तथा यूरोपके दूसरे भागोंमें जो सुधार हुए वे वाल्टरकी संस्थाके प्रयत्नसे हुए थे। बेकेरियाको इस पंशका प्रतिनिधि कह सकते हैं, क्योंकि उसकी लिखी हुई 'अपराध और दण्ड' नामक पुस्तकके प्रचारसे सारे यूरोप भरमें बड़ेसे बड़े अपराधोंके लिए कम सजा देनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। मृत्युदंड बन्द करानेके आन्दोलनमें बेकेरियाका नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस आन्दोलनमें तत्त्व-शोधक वेन्थामका भी हाथ था और उसका सारे यूरोप पर अच्छा प्रभाव पड़ा। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि रोमिली, मेकिन्टोश, विलवरफोर्स और ब्रुहामको राजसभामें अपने इष्ट-सुधार पास करानेमें प्रजाकी ओरसे जो प्रोत्साहन मिला था, उसको उत्पन्न करनेवाले प्रायः पादरी ही थे। वे अपराधियोंके प्रति महान् उदारता और क्षमा दरशाते, तथा परोपकारी कामोंमें निरंतर लगे रहते थे। यही कारण है कि उक्त महापुरुषोंको अपने काममें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई थी। प्राचीन-दंड-विधिके निंद्य और क्रूर स्वरूपको नष्ट करनेवाले इन धर्माधिकारियों और क्रूर सजाओंकी नित्य नई नई रीतें

निकालनेवाले मध्यकालीन धर्माधिकारियोंमें कितना भारी अंतर है! पंथाभिमानी लोग इसमें केवल प्रतिस्पर्धी धर्म-संस्थाओंके बीचका भेद देखेंगे, परन्तु शुद्धहृदय ऐतिहासिकोंको दिखाई देगा कि मानवी सुधारोंके द्वारा आचरणका आदर्श कितना अधिक बदल जाता है।

ऐसा भी कहा जाता है कि वर्तमान-कालिक धार्मिक विचारोंका झुकाव एकमार्गी—अर्थात् बाइबिल और अंतःकरण इन दोनोंके मध्य ऐक्य स्थापित करनेवाला है। इस विषयमें किसीको खेद प्रतीत हो तो भले हो, परंतु उसकी सत्यताको कोई इन्कार नहीं कर सकता है। नैतिक-शक्तिका सामर्थ्य दिन पर दिन अधिक स्वतंत्र होता जाता है इस कारण उससे विरुद्ध रहनेवाले सिद्धान्त क्षीण होकर लुप्तप्राय हो गये और धर्म-साहित्यके कई अंगोंने नवीन रूप धारण किया। उसके प्राचीन शब्द तो ज्योंके त्यों रहे परन्तु उनमें पहलेके समान असर पैदा करनेकी ताकत नहीं रही। समस्त विचार-प्रणाली और उससे उत्पन्न होनेवाला सदाचारका आदर्श बिलकुल बदल गया। सारा मानसिक वातावरण, जीवनका उद्देश्य, प्रचलित आवेश और कल्पनाकी तरंगें—ये सब बदल गईं। नियमित कायदोंके असरसे मानवीबुद्धिका प्रवाह आगे बढ़ता है, और प्रत्येक जमानेमें वे विश्वास ही सफल होते हैं जो उस समयकी बौद्धिक-स्थितिके अनुकूल हुआ करते हैं।
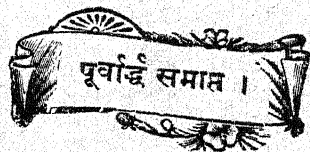
शुद्धिपत्र ।

अध्याय	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध		शुद्ध
उपोद्.	१३	१२	अक्षरशः	...	अक्षरशः सत्य
	१४	६	सनम	...	समय
	१४	१५	पराकष्टा	...	पराकाष्ठा
	१४	२३	सर्वत्र और धनवान		सर्वत्र धनवान्
	२४	११	जाने	...	जाते
	२६	१६	चुम्बकाकर्कण,	...	चुम्बकाकर्षण
१ला अ.	२४	२७	काभाकरती क्षुब्ध है,		[क्षुब्ध होकर 'भूतोंक
	४३	६	मनुय्यों	...	मनुष्यों
	४६	२७	ऐसा	...	ऐसी
	५३	२३	,,	...	,,
	६०	१४	स्त्वीजाति	...	स्त्रीजाति
	६४	२७	भारी	...	भारी अपमा
	६५	२५	बदला	...	बदल
	६७	१७	इलमें	...	इसमें
	६९	३	सिखता	...	सिखाता
	७३	५	भेड़िय	...	भेड़िया
	८२	२१	दिन पर	...	दिन पर दिन
२रा अ	९५	१८	करती	...	करता
	९५	२४	खेदकी	...	खेदकी बात
	१०६	१३	मनुष्यको	...	मनुष्यके
	१०७	२५	सब सब	...	सब
३रा अ.	१३१	२०	जड़े कट मई	...	जड़ें कट गई
	१३१	२६	शताब्डियों	...	शताब्दियों
	१३५	८	यूरोमें	...	यूरोपमें
	१३८	१६	समाज	...	समाज
	१४२	१९	प्रवृत्त	...	प्रवृत्ति